महाबल मलयासुंदरी चरित्र

: अनुवादक :

श्रीयुत तिलकविजयजी (पंजाबी)

* संपादक *

प. पू. आचार्य श्री जयानंदसूरीश्वरजी महाराजा



।। श्री आदिनाथाय नमः ।।

।। प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी गुरुभ्यो नमः ।।

श्री महाबल मलयासुंदरी चरित्र

: आशीर्वाद :

श्री मद्विजयविद्याचंद्रसूरीश्वरजी

मुनिराजश्रीरामचंद्रविजयजी

: अनुवादक :

श्रीयुत तिलकविजयजी (पंजाबी)

: संपादक :

प. पू. आचार्य श्री जयानंदसूरिश्वरजी महाराजा

प्रकाशक :

श्री. गुरू रामचन्द्र प्रकाशन समिति - भीनमाल

मुख्य संरक्षक

श्री संभवनाथ राजेन्द्रसूरिश्वर. श्वे. ट्रस्ट

कडुलावारी स्ट्रीट, विजयवाडा.

मुनि. श्री. जयानंद विजयजी आदि ठाणा की
निश्रा में २०६५ में पालीताना में चातुर्मास एवं
उपधान करवाया उस निमित्ते....

लेहर कुंदन ग्रुप

श्रीमती गेरोदेवी जेठमलजी बालगोता परिवार

मेंगलवा, मुंबई, दिल्ली, चेन्नई, हरियाणा

एक सद्गृहस्थ, भीनमाल.

R.T.Shah & Co.

संघवी उत्तमकुमार, सन्तोषदेवी, कुणाल, मेघा बेटा पोता

रीखबचन्दजी ताराजी नागौत्रा सोलंकी परिवार, बाकरा (राज.)

1, सांबयार स्टीट, जार्ज टाउन, चेनई - 600 001

संरक्षक

1. सुमेरमल केवलजी नाहर, भीनमाल, राज. के. एस. नाहर
   201 सुमेर टॉवर्स, लवलेन, मझगाँव, मुम्बई-10
2. मीलियन ग्रुप, सूराणा, राज. मुंबई, दिल्ली, विजयवाडा
3. एम.आर. इम्पेक्स, 16-ए हनुमान टेरेस, दूसरा माला, तारा टेम्पल लेन
   लेमीग्टन रोड, मुंबई-7. फोन- 2380 1086.
4. श्री शांतिदेवी बाबुलालजी बाफना चेरीटेबल ट्रस्ट, मुंबई,
   महाविदेह भीनमालधाम, पालीताना, 364270
5. संघवी जुगराज, कांतिलाल, महेन्द्र, सुरेन्द्र, दिलीप, धीरज, संदीप, राज, जैनम, अक्षत बेटा पोता कुंदनमलजी भुताजी श्री श्रीमाळ वर्धमान गौत्रीय आहोर (राज.) कल्पतरु ज्वेलर्स, 305 स्टेशन रोड, संघवी भवन, थाना, (5) महाराष्ट्र
6. विजुबेन चिमनलाल, शांतिभाई डाहयालाल, मोंघीबेन अमृतलाल दोशी के स्मरणार्थे अनीलभाई, निकिताबेन ए, नैनाबेन डी, शिल्पाबेन एन के मासक्षमण एवं दीपकभाई, निलांगभाई, नैनाबेन, भव्याकुमारी के वर्षीतप अनुमोदनार्थे अमृतलाल चिमनलाल दोशी पांचशो वोरा परिवार, थराद (मुम्बई)।
7. शत्रुंजय तीर्थे नव्वाणुं यात्रा के आयोजन निमित्ते शा. जेठमल, लक्ष्मणराज, पृथ्वीराज, प्रेमचन्द, गौतमचंद, गणपतराज, ललीतकुमार, विक्रमकुमार, पुष्पक, विमल, प्रदीप, चिराग, नितेष बेटा-पोता कीनाजी संकलेचा परिवार मेंगलवा, फर्म-अरिहन्त नोवेल्हटी, जी.एफ-3 आरती शोपींग सेन्टर, कालुपुर टंकशाला रोड, अहमदाबाद.
8. थराद निवासी भणशाळी मधुबेन कांतिलाल अमुलख भाई परिवार
9. शा कांतिलाल केवलजी गांधी सियाना निवासी द्वारा 2062 में पालीताना में उपधान करवाया उस निमित्ते।
10. लहेर कुंदन ग्रुप, शा जेठमलजी कुंदनमलजी मेंगलवा (जालोर)

11. 2063 में चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस समय पद्मावती सुनाने के उपलक्ष में शा चंपालाल, जयंतिलाल, सुरेशकुमार, भरतकुमार प्रिन्केश, केनित, दर्शित, चुन्नीलालजी मकाजी कासम गौत्र त्वर परिवार गुड़ा बालोतान्
'जय चिंतामणी' 10-543 संतापेट नेल्लूर (आ.प्र.)
12. पू. पिताश्री पूनमचंदजी मातुश्री भुरीबाई के स्मरणार्थे पुत्र पुखराज, पुत्रवधु लीलाबाई पौत्र फुटरमल, महेन्द्रकुमार, राजेन्द्रकुमार अशोक कुमार, मिथुन, संकेश, सोमील,बेटा पोता परपोता शा पूनमचंदजी भीमाजी रामाणी गुडाबालोतान्
नाकोडा गोल्ड, 70 कंसारा चाल, बीजा माले रुम नं. 67, कालबादेवी मुंबई
13. शा सुमेरमल, मुकेशकुमार, नितीन, अमीत, मनीषा, खुशबु बेटा पोता पेराजमलजी प्रतापजी रतनपुरा बोहरा परिवार, मोदरा (राज.)
राजरतन गोल्ड प्रोड., के.वी.एस. कोम्पलेक्ष, 3/1 अरुंडलपेट, गुन्टूर.
14. एक सद् गृहस्थ, धाणसा
15. गुलाबचंद डॉ.राजकुमार, निखिलकुमार बेटा पोता परपोता छगनलालजी प्रेमाजी कोठारी अमेरीका, आहोर (राज.) 4341 स्कैलेन्ड ड्रीव, अट्लांटा, जोर्जीया, U.S.A - 30342. Ph. : 404-432-3086, 678-521-1150
16. शांतिरुपचंद रवीन्द्रचंद्र, मुकेश, संजेश, ऋषभ, लक्षित, यश, ध्रुव, अक्षय बेटा पोता मिलापचंदजी मेहता, जालोर-बेंगलोर.
17. वि. सं. 2063 में आहोर में उपधान तप आराधना करवायी एवं पद्मावती श्रवण के उपलक्ष में पिताश्री थानमलजी मातुश्री सुखीदेवी, भंवरलाल, घेवरचंद, शांतिलाल, प्रवीणकुमार, मनीष, निखिल, मित्तुल,आशीष, हर्ष, विनय, विवेक बेटा पोता कनाजी हकमाजीमुथा
शा. शांतिलाल प्रवीणकुमार एण्ड को. राम गोपाल स्टीट,विजयवाडा
18. बाफना वाडी में जिन मन्दिर निर्माण के उपलक्ष में मातुश्री प्रकाशदेवी चंपालालजी की भावनानुसार पृथ्वीराज, जितेन्द्रकुमार, राजेशकुमार, रमेशकुमार, वंश, जैनम,राजवीर, बेटा-पोता चंपालालज सांवलचन्दजी बाफना, भीनमाल. नवकार टाइम, 59,नाकोडा स्टेट न्यू बोहरा बिल्डींग, मुंबई - 3.
19. शा शांतिलाल, दीलीपकुमार, संजयकुमार, अमनकुमार, अखीलकुमार बेटा पोता मूलचंदजी उमाजी तलावत आहोर (राज.)
राजेन्द्र मार्केटींग, पो.बो. नं. 108, विजयवाडा.
20. श्रीमती सकुदेवी सांकलचंदजी नेथीजी हुकमाणी परिवार, पांथेडी, राज.
राजेन्द्र ज्वेलर्स, 4 रहेमान भाई बि.एस.जी. मार्ग, ताडदेव, मुंबई-34.

21. पुज्य पिताजी श्री सुमेरमलजी की स्मृति में मातुश्री जेठीबाई की प्रेरणा से जयन्तिलाल,महावीरचंद,दर्शनकुमार, बेटा-पोता सुमेरमल वरदीचंदजी वाणीगोता परिवार आहोर, चेन्नई । जे.जी. इम्पेक्स प्रा. लि. 55 नारायण मुदली स्ट्रीट चेन्नई 79.

22. स्व. हस्तीमलजी भलाजी नागोत्रा सोलंकी स्मृति में हस्ते परिवार बाकरा(राज.)

23. मु. श्री जयानंद विजयजी आदि की निश्रा में चातुर्मास एवं उपधान शत्रुंजय तीर्थेकरवाया लहेर कुंदन ग्रुप श्रीमती गेरोदेवी जेठमलजी बालगोता परिवार मेंगलवा निवासी ने उस समय आराधक एवं भक्त जनों की साधारण की राशी में से सवं2065.

24. मातुश्री मोहनीदेवी पिताश्री सोवलचन्दजी कि पुण्य स्मृति में शा. पारसमल, सुरेशकुमार, दिनेशकुमार, कैलाशकुमार, जयंतकुमार, बिलेष, श्रीकेष, दिक्षित, प्रीष, कबीर, बेटा-पोता सोवलचन्दजी कुंदनमलजी मेंगलवा (राज.)
फर्म: फाईब्रोस कुंदन ग्रुप, 35 पेरुमाल मुदाली स्ट्रीट, साहुकारपेट, चेन्नई

25.शा. सुमेरमलजी नरसाजी - मेंगलवा, मेटल एण्ड मेटल,
नं. 136, गोविन्दापा नायकन स्ट्रीट, चेन्नई.

26.शा दूधमल, नरेन्द्रकुमार,रमेशकुमार बेटा बोता लालचंदजी मांडोत परिवार बाकरा (राज.) मंगल आर्ट, दोशी बिल्डींग 3-भोईवाडा,भूलेश्वर,मुंबई - 2.

27. कटारीया संघवी लालचंद, रमेशकुमार, गोतमचंद, दिनेशकुमार, महेन्द्रकुमार, रवीन्द्रकुमार बेटा पोता सोनाजी भेराजी धाणसा (राज.)
श्री सुपर स्पेअर्स, 11-32-3 ए पार्क रोड, विजयवाडा, सिकन्द्रबाद.

28.शा नरपतराज, ललीतकुमार महेन्द्र, शैलेष, निलेष, कल्पेश, राजेश, महीपाल, दिक्षीत, आशीष, केतन, अश्वीन, सींकेश, यश बेटा पोता खीमराजजी थानाजी कटारीया संघवी आहोर (राज.) कलांजली ज्वेलर्स, 4/2, ब्राडी पेठ, गुन्टूर-2.

29.शा लक्ष्मीचंद, शेषमल, राजकुमार, महावीरकुमार, प्रवीणकुमार, दीलीपकुमार, रमेशकुमार बेटा पोता प्रतापचंदजी कालुजी कांकरीया, मोदरा (राज.) गुन्टूर.

30. एक सद् गृहस्थ (खाचरौद)

31. श्रीमती सुआदेवी घेवरचंदजी के उपधान निमित्ते चंपालाल, दिनेशकुमार, धर्मेन्द्रकुमार, हितेशकुमार, दिलीप, रोशन, नीखील, हर्ष, जैनम, दिवेश बेटा पोता घेवरचंदजी सरेमलजी दुर्गाणी बाकरा. हितेन्द्र मार्केटींग, 11-X-1 काशी चेटी लेन, सत्तर शाला कोम्प्लेक्स, पहला माला, चेन्नई-89.

32. मंजुलाबेन प्रवीणकुमार पटीयात के मासक्षमण एवं स्व. श्री मंवरलालजी की स्मृति में प्रवीणमुकार, जीतेशकुमार, चेतन, चिराग, कुणाल, बेटा पोता तिलोकचंदजी धर्माजी पटियात धाणसा - मुंबई
पी.टी. जैन, रोयल सम्राट, 406-सी वींग, गोरेगांव (वेस्ट) मुंबई-62.

33. गोल्ड मेडल इन्डस्ट्रीस प्रा. ली., रेवतडा, मुम्बई, विजयवाडा, दिल्ली जुगराज ओटमलजी, ए 301/302, वास्तु पार्क, मलाड (वे), मुंबई.

34. राज राजेन्द्रा टेक्सटाईल्स एक्सपोर्टस लिमीटेड 101, राजभवन, दौलतनगर, बोरीवली (ईस्ट), मुम्बई, मोधरा निवासी.

35. प्र.शा.दी.सा.श्री मुक्ति श्रीजी की शिष्या वि.सा. श्री मुक्तिसर्शिता श्रीजी की प्रेरणा से स्व. पिताजी दानमलजी, मातुश्री तीजोदेवी की पुण्य स्मृति में चंपालाल, मोहनलाल, महेन्द्रकुमार, मनोजकुमार, जितेन्द्रकुमार, विकासकुमार, रविकुमार, रिषभ, मिलन, हितिक, आहोर (राज.)
कोठारी मार्केटींग 10/11, चितुरी कोम्प्लेक्ष, विजयवाडा-1.

36. पिताजी श्री सोनराजजी, मातुश्री मदनबाई कटारिया संघवी परिवार आयोजित सम्मेत शिखर यात्रा प्रवास एवं जीवित महोत्सव निमित्ते दीपचंद,उत्तमचंद, अशोककुमार, प्रकाशकुमार, राजेशकुमार, संजयकुमार, विजयकुमार, बेटा-पोता सोनराजजी मेघाजी-धाणसा - पुना. अलका स्टील, 858, भवानी पेठ, पुना-52

37. मु. श्री जयानंद विजयजी आदि ठाणा की निश्रा में 2062 में पालीताणा में चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमित्ते श्रीमती हंजादेवी सुमेरमलजी नागोरी,शांतिलाल, बाबुलाल, मोहनलाल, अशोककुमार, विजयकुमार आहोर/बेंगलोर

38. मु. श्री जयानंद विजयजी आदि ठाणा की निश्रा में 2066 में तीर्थेन्द्र नगर बाकरारोड में चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमीत्ते श्रीमती मेतीदेवी पेराजमलजी रतनपुरा बोहरा परिवार, मोधरा/गुंटूर.

39. संघवी कान्तीलाल, जयंतीलाल, राजकुमार, राहुलकुमार एवं समस्थ श्री श्री श्रीमाल गुडाल गोत्र फुआनी परिवार आलासण (राज)
संघवी इलेक्ट्रीक कंपनी 85, नारायण मुदाली स्ट्रीट, चेन्नई - 79.

40. संघवी भंवरलाल, मांगीलाल, महावीर, नीलेश, बन्टी बेटा- पोता हरकचंदजी
श्री श्रीमाल परिवार, आलासन
राजेश इलेक्ट्रीकल्स, 48 राजा बिल्डींग, तिरुनेलवेली -627 001.

41. शा. कान्तीलालजी मंगलचन्दजी हरण, दाँसपा, सी 103/104,
वास्तु पार्क, एवर साइन नगर, मलाड (वे), मुंबई-64.

42. शा. भंवरलाल, सुरेशकुमार, शैलेषकुमार, राहुल बेटा-पोता तेजराजजी संघवी
कोमतावाला भीनमाल (राज). राजरतन इलेकट्रीकल्स, के.सी.आई.वायर्स प्रा.लि.
162, गोवीन्दाप्पा नायकन स्ट्रीट, चेन्नई - 600 001.

43. शा समरथमल, सुकराज, मोहनलाल महावीरकुमार, विकासकुमार,
कमलेश, अनिल,विमल, श्रीपाल, भरत फोला मुथा परिवार सायला (राज.)
अरुण एन्टरप्राईजेस, 4 लेन, ब्राडी पेठ, गुन्टूर-2.

44. शा.गजराज,बाबुलाल,मीठालाल,भरत,महेन्द्र,मुकेश,शैलेष,गौतम,
नीखील, मनीष, हनी बेटा पोता, रतनचंदजी, नागोत्रा सोलंकी साँथू (राज)
फूलचंद भंवरलाल, 108 गोवींदप्पा नायक स्ट्रीट, चेन्नई-1.

45. भंसाली भंवरलाल, अशोकुमार,कांतिलाल,गोतमचंद, राजेशकुमार, राहुल,
आशीष, नमन, आकाश, योगेश, बेटा पोता लीलाजी कसनाजी मु. सरत.
मंगल मोती सेन्डीकेट, 14/15 एस. एस. जैन मार्केट,
एम.पी. लेन चीकपेट क्रोस, बेंगलोर - 53.

46. बल्लु गगलदास वीरचंदभाई परिवार थराद / मुंबई.

47. श्रीमती मंजुलादेवी भोगीलाल वेलचन्द संघवी धानेरा
फेन्सी डाइमण्ड 11, श्रीजी आरकाड, प्रसाद चेम्बर्स नी पाछल
टाटा रोड, नं. 1-2, ओपेरा हाउस, मुंबई-4.

48. देसाइ शांतिलाल, उत्तमचन्द, विनोदभाई, धीरजभाई, सेवंतिभाई, थराद-मुंबई

49. बन्दामुथा शांतिलाल, ललितकुमार, धर्मेश, मितेश बेटा पोता मेघराजजी फूसाजी
नं. 43, आइदाप्पा, नामकन स्ट्रीट साहुकारपेट, चेन्नई-79.

50. श्रीमतीबदामीदेवी दीपचन्दजी गेनाजी मांडवला (राज.)
चेन्नई निवासी के प्रथम उपधान तप निमीते हस्ते सह परिवार

51. आहोर से आबू देलवाडा तीर्थ का 6 रि पालित संघ निमीत्ते एवं सुपुत्र महेंद्रकुमार की स्मृति में संघवी मुथा मेघराज, कैलाशकुमार, राजेशकुमार, प्रकाशकुमार, दिनेशकुमार, कुमारपाल, करण, शुभम, मिलन, मेहुल, मानव, बेटा-पोता सुगालचन्दजी लालचन्दजी लुंकड परिवार, आहोर (राज.)
फर्म: मैसुर पेपर सप्लायर्स, नं 5, श्रीनाथ बिल्डींग, सुलतानपेट सर्कल, बेंगलोर-53.

52. एक सदग्रहस्थ, बाकरा (राज.)

53. स्व. पिताश्री हिराचंदजी स्व. मातृश्री कुसुमबाई स्व. ज्येष्ठ भ्राताश्री पृथ्वीराजजी, श्री तेजराजजी के आत्मश्रेयार्थे मुथा चुन्निलाल, चन्द्रकुमार, किशोरकुमार, पारसमल, प्रकाशकुमार, जितेन्द्रकुमार, दिनेशकुमार, विकाशकुमार, कमलेश, राकेश, सन्नि,अशिष, नीलेश, अंकुश, पुनीत, अभिषेक, मोन्टु, नितिन, आतिश, निल, महावीर, जैनंम, परम,तनमै,प्रनै,बेटा पोता परपोता लडपोता हिराचन्दजी चमनाजी दांतेवाडिया परिवार, मरुधर मे आहोर (राज.) हीरा नोवेल्टीस, फ्लवर स्ट्रीट,बल्लारी

54. थराद निवासी मुमुक्षु दिनेश भाई हालचन्द भाई अदाणी ना दीक्षा निमिते आवेल बहुमान नी राशी मां थी हस्ते हालचन्द भाई वीरचन्दभाई अदाणी एवं समस्त परिवार

55. माईनॉक्स मेट्ल प्रा.लि. नं. 7, पी.सी लेन, एस.पी रोड क्रॉस, बेंगलोर-मरुधर मे सायला (राज) बेंगलोर, मुम्बई, चेन्नई, अहमदाबाद

56. श्रीमती प्यारी देवी भेरमलजी जेठाजी श्री श्री श्रीमाल अग्नीगोता परिवार अमरसर (सरत) राज.बाकरा रोड में चातुर्मास एवं उपधान तप निमिते हस्ते संघवी भवरलाल, अमीचन्द, अशोककुमार, दिनेशकुमार। फर्म: अम्बीका ग्रूप, विजयवाडा (ए.पी)

57. सुआबाई ताराचंदजी, वाणीगोता परिवार, बागोडा (राज)
फर्म : बी-ताराचंद एण्ड को. ए-18, भारत नगर, ग्रान्ट रोड, मुंबई - 7

58. २०६९ मे मुनि श्री जयानंदविजयजी की निश्रा में श्री बदामीबाई,तेजराजजी आहोर श्री इन्द्रादेवी रमेशकुमारजी गुडा बालोतान एवं श्री मुलीबाई पूनमचंदजी, साँथू तीनो ने पृथक-पृथक नव्वाणु यात्रा करवायी, उस समय आयोजक एवं आराधकों की और से नव्वाणुं यात्रा की राशी में से (पालीताणा)

59. शा जुगराज फुलचंदजी एवं अ.सौ.कमलादेवी जुगराजजी श्री श्री श्रीमाल चंद्रावण गोत्र के जीवित महोत्सव एवं पद्मावती सुनाई के प्रसंगे पुत्र किर्तीकुमार,महेन्द्रकुमार, निरंजनकुमार, राजेशकुमार, पौत्र अमित, कलपेश, परेश, मेहुल,वंश एवं समस्थ श्री श्री श्रीमाल चंद्रावण परिवार आहोर (राज.)
फर्म : महावीर पेपर एण्ड जनरल स्टोर्स 22-2-6, क्लोथ बजार, गुंटुर (ए.पी)

60. शा जुगराज, छगनलाल, भंवरलाल, दुरगचन्द, धेवरचन्द, दिनेशकुमार, विजयराज, महावीरचंद, विक्रमकुमार, विकाशकुमार, सुरेशकुमार, गौतमचंद, नितेष, विशाल,ध्रुव पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र मातृश्री सुखीबाई मिश्रीमलजी सालेचा परिवार, धाणसा (राज.)
फर्म : श्री राजेन्द्रा होजरी सेन्ट्रर, न. 11, बी. बी. टी. स्ट्रीट, मामुलपेट, बेंगलोर -53

61. श्री तीर्थेनन्द्र नगर तीर्थे 2070 वर्षे श्री पंचमंगल महा श्रुत स्कंघ उपघान तप आराधना निमिते संघवी श्रीमती पातीदेवी भारतमलजी भगाजी वेदमुथा सुपुत्र माँगीलाल, गणपतचन्द, रमेशकुमार, कैलाशकुमार, सुपौत्र ललित, मुकेश, निर्मल, दिनेश, प्रवीण, राजेश, संजय, अरविंद, विक्रम, युवराज, जितेश परिवार, रेवतडा - बेंगलोर.
फर्म : शा. सुमेरमल मांगीलाल, मामुलपेट, बेंगलोर - 560 053.

62. स्व. श्रीमति सुमटीबाई घेवरचन्दजी शेषमलजी श्री श्री श्रीमाल चन्द्रावण गौत्र के स्व. द्रव्य से पारणा मंदिर की प्रतिष्ठा निमिते आहोर (कल्याण).

63. श्रीमति भवरीबाई एंव कान्तीलालजी शेषमलजी श्री श्री श्रीमाल चन्द्रावण गौत्र के जीवित महोत्सव निमिते (आहोर) फर्म: कान्ती ज्वर्ल्स एवं आर फन सिटी घेला देवजी चौक, कल्याण, जिला : थाणा (महा.)

64. स्व. विक्रमकुमार नेणचन्दजी घेवरचन्दजी क्षत्रिया बोहरा की स्मृति में, सुराणा राज. (मदुराई)

65. एक सदगृहस्थ, जालोर.

66. श्रीमति कमलाबाई भूरमलजी खीमराजजी कटारिया संघवी परिवार द्धारा श्री समेत शिखरजी पंच तीर्थी संघ यात्रा प्रसंगें शा. महेन्द्रकुमार, शैलेषकुमार, निलेशकुमार, अश्विनकुमार, रींकेश, यश, मित, कृत बेटा पोता शा. भूरमलजी खीमराजजी कटारिया संघवी परिवार आहोर (राज.) फर्म : कावेरी ज्वेलर्स, गुन्दूर- 522002 (आ.प्र.)

67. गटमल, कमलकुमार, ध्रुव, प्रणव, बेटा-पोता कपुरचन्दजी पन्नाजी क्षत्रिया बोहरा परिवार, बाकरा (राज.) फर्म: रूप मिलन सरिज, अेस. अेस. जैन मार्केट, एम. पी. लेन चिकपेट क्रास , बेंगलोर - 560 053.

68. श्रीमति सुबटीबाई W/o. छगनराजजी कंकुचौपडा जालोर व उनके पुत्र-पौत्र शान्तिलाल, रायचन्द, कानराज, उसबराज, मुकेशकुमार, रविन्द्रकुमार, चंदन, मनीष, दीपक, सुमीत, मयंक, पीयूष, यश कंकुचौपडा परिवार.
फर्म : मरुधर अपेरल, लाल बिल्डींग, बेंगलोर, मदुराई, कोइमबतुर, जालोर.

: सह संरक्षक :

1. शा तीलोकचंद मयाचंद एन्ड कं. 116, गुलालवाडी, मुंबई - 4.
2. स्व. मातृश्री मोहनदेवी पिताजी श्री गुमानमलजी की स्मृति में
   पुत्र कांतिलाल, जयन्तिलाल, सुरेश, राजेश सोलंकी, जालोर
   प्रविण एण्ड कं. 15-8-110/2, बेगम बाजार, हैदराबाद - 12.
3. मेहता सुबोधभाई उत्तमलाल, धानेरा / कोलकत्ता
4. पूज्य पिताजी ओटमलजी एवं मातृश्री अतीयो बाई एवं धर्मपत्नि पवनी देवी के
   आत्म श्रेयार्थ किशोरमल, प्रवीणकुमार (राजु), अनिल, विकास, राहुल, संयम,
   ऋषभ, डोसी चौपडा परिवार, आहोर फर्म : श्री राजेन्द्र स्टील हाउस- गुंटूर- ए.पी
5. पूज्य पिताजी शा प्रेमचन्दजी छोगाजी कि स्मृति में मातुश्री पुष्पादेवी
   सुपुत्र दिलीप, सुरेश, अशोक, संजय वेदमुथा, रेवतडा (राज.)
   श्री राजेंद्र टॉवर्स, नं 13, समुद्र मुदाली स्ट्रीट, चेन्नई
6. गाँधी मुथा स्व. मातृश्री पानीबाई एवं पुज्य पिताश्री पुखराजजी की स्मृती में पुत्र
   गोरमल,भागचन्द, निलेश, महावीर, वीकेन, मिथुन, रिषभ, योनिक बेटा पोता
   पुखराजजी समनाजी गेनाजी, सायला (राज.)
   फर्म : वैभव ए टू जेड डॉलर शॉप, वास्वी महल रोड, चित्रदुर्गा 577 501. कर्नाटका
7. शांतीदेवी मोहनलालजी के उपधान वर्षीतप आदि तपश्चर्या निमिते हस्ते मोहनलाल,
   विकास, राकेश, धन्या बेटा पोता गणपतचन्दजी सोलंकी, जालोर (राज.)
   फर्म : शांती इम्पोर्ट्स 11-54-42 नंदी पाटीवारी स्ट्रीट, विजयवाडा (ए.पी)
8. पूज्य पिताजी मनोहरमलजी के आत्म श्रेयार्थे मातृश्री पानीदेवी के उपधान तप निमिते
   हस्ते सुरेशकुमार, दिलीपकुमार, मुकेशकुमार, ललितकुमार श्री श्री श्रीमाल
   गुडाल गोत्र नेथाजी परिवार, आलासन (राज.)
   फर्म : एम.के लाईट्स, 897 अविनाशी रोड, कोईम्बटूर -641 018.
9. स्व. पूज्य पिताजी श्री मानमलजी भीमाजी क्षत्रिया बोहरा कि स्मृति में
   हस्ते मातृश्री सुआबाई सुपुत्र मदनराज, महेन्द्रकुमार, भरतकुमार, नितिन,
   स्लोक, सयंम, दर्शन एवं समस्त क्षत्रिया बोहरा परिवार, सुराणा (राज.)
   कोईमबटूर/मुम्बई।
10. शा. ताराचन्द भोनाजी आहोर
    फर्म : मेहता नरेशकुमार एन्ड कुं. पहला भोईवाडा लेन, मुंबई - 400 002.

11. 1992 मे बस यात्रा प्रवास, 1995 में अट्ठाई महोत्सव एवं संघवी सोनमलजी के आत्मश्रेयार्थे नाणेशा परिवार के प्रथम सम्मेलन के लाभ के उपलक्ष में संघवी भबुतमल, जयंतिलाल, प्रकाशकुमार, प्रविणकुमार, नवीन, राहुल, अंकुश, रितेष एवं समस्थ नाणेशा परिवार, सियाणा (राज) फर्म : प्रकाश नोवेलटीज्, सुंदर फर्नीचर्स, नं. 714, सदाशीव पेठ, बाजीराव रोड, पूना - 411 030

12. स्व. पू पिताजी श्री पीरचंदजी एवं स्व भाई श्री कान्तिलालजी की स्मृति में माताजी पातीदेवी पीरचंदजी पुत्र हस्तीमल, महावीरकुमार, संदीप प्रदीप, विक्रम, निलेष, अभीषेक, अमीत, हार्दिक, मानू, तनिश, यश, पक्षाल, नीरव, बेटा पोता परपोता पीरचंदजी केवलजी भडांरी-बागरा (राज) फर्म : पीरचंद महावीरकुमार मैन बाजार गुंटूर (ए.पी)

13. सियाणा से बसो द्वारा शत्रुंजय - शंखेश्वर, छ रि पालित यात्रा संघ 2065 हस्ते संघवी प्रतापचंद, मूलचंद, दिनेशकुमार, हितेशकुमार, निखील, पक्षाल बेटा पोता पुखराजजी बालगोता सियाणा (राज) फर्म : जैन इन्ट्रनेशनल, नं. 95 गोवींदाप्पा नायकन स्ट्रीट, चैनई (टी.एन)

14. स्व. पू. पि. शांतिलाल चीमनलाल बलु मातुश्री मधुबेन शांतिलाल, अशोकभाई, सुरेखाबेन आदीकुमार, थराद. अशोकभाई शांतिलाल शाह, नं. 201',कोश मोश आपार्टमेंट, भाटीया स्कूल के सामने, साई बाबा नगर, बोरीवली(प), मुम्बई-400072

15. शा. जीतमलजी अन्नाजी, मु.पो. नासोली, वाया : भीनमाल, जिला : जालोर (राज.) दादर / मुम्बई. फर्म : अशोका गोल्ड, '7' काका साहेब गाडगील मार्ग, खेड गली, प्रभादेवी, मुम्बई - 400025.

16. हिम्मतराज, सुरेश, अरविन्द, तनेश, दि्त्यम कटारीया संघवी बेटापोता गणेशमलजी कनाजी, सांचौर (राज.) फर्म : एम्पायर मेटल्स इन्डिया, मुंबई

17. श्रीमति पूज्य मातुश्री विमलाबाई एवं पिताश्री मिश्रीमलजी की पावन स्मृति में पुत्र राजेशकुमार मिश्रीमलजी मगाजी सालेचा, मोधरा (राज.) फर्म : राजगुरु इन्टरप्राईज, चैनई (टी.एन)

18. श्रीमति जमनादेवी भोमचंदजी भंसाली - भीनमाल, 904, बी, प्रतिक्षा टॉवर, आर. एस. निमकर मार्ग, मुंबई - 8.

19. श्रीमति त्रिशलादेवी जयन्तीलाल बाफना के भीनमालनगर में प्रथम उपधान तप निमिते, गिरधारीलाल,पारसमल,बाबुलाल,जयन्तीलाल,विनोदकुमार,किशोरकुमार ,सुरेशकुमार, बेटा-पोता स्व. सुखराजजी, स्व. नथमलजी, पूनमचंदजी बाफना मरूधर में उम्मेदाबाद (गोल)

प्राप्ति स्थान

शा. देवीचंद छगनलालजी
सुमति दर्शन, नेहरू पार्क के सामने,
माघ कोलोनी, भीनमल-343 029 (राज)
फोन : (02969) 220 387

श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन पेढी
साँथू - 343 026
जिला : जालोर (राज.)
फोन : 02973 - 254 221

महाविदेह भीनमाल धाम
तलेटी हस्तिगिरि, लिंक रोड,
पालीताणा - 364 270
फोन : (02848) 243 018

श्री विमलनाथ जैन पेढी
बाकरा गाँव- 343 025 (राज.)
फोन : 02973 - 251 122
/ 94134 65068

श्री सीमंधर जिन राजेन्द्र सूरि मंदिर
शंखेश्वर तीर्थ मंदिरजी के सामने,
शंखेश्वर, जि. पाटण (गुजरात)

श्री तीर्थेन्द्र सूरि स्मारक संघ ट्रस्ट
तीर्थेन्द्र नगर, बाकरा रोड - 343 025
जिला-जालोर (राजस्थान)
फोन : 02973 251 144

अनुक्रमणीका

कथा का नाम		पृष्ट
१.	आगन्तुक - युवक	१
२.	धर्म - प्रभाव	९
३.	बन्धन मुक्ति	१४
४.	दुःख की पराकाष्ठा	२९
५.	शोक में हर्ष	३७
६.	सफल वरदान	४६
७.	रंग में भंग	५०
८.	विचित्र घटना	५७
९.	रहस्योद्घाटन	६९
१०.	विचित्र स्वयंवर	८५
११.	कठिन परीक्षा	११२
१२.	सुख के दिन	१३४
१३.	निर्वासित जीवन	१४८
१४.	दुःख में वियोगी मिलन	१६४
१५.	दुःखों का अन्त	१७७
१६.	स्वजन - मिलाप	१९४
१७.	पूर्वभव वृत्तान्त	२०६
१८.	वैराग्य और संयम	२२७
१९.	निर्वाण - प्राप्ति	२३४
२०.	मलयासुंदरी का उपदेश	२३८
२१.	स्वर्ग गमन और उपसंहार	२४३



श्री आदिनाथ भगवान



श्री पार्श्वनाथ भगवान

-: द्रव्य सहायक :-

श्री आदिनाथ श्री पार्श्वनाथ आदि जिन बिंब
श्री पुंडरिकस्वामी श्री गौतमस्वामी
श्री राजेन्द्रसूरि गुरु मूर्तिकी प्रतिष्ठा

आचार्य **श्री जयंतसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के आज्ञा.
मुनिराज **श्री जयानंदविजयजी** आदि ठाणा
की निश्रा में

संवत् २०५० वैशाख सुदि ६ को संपन्न हुई
उसके आलंबनमें

श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन पेढी

साँथू - ३४३ ०२६

जैनम् जयति शासनम्

सवंत् : २०७२ प्रत: १०००

।। प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरायनमः ।।

।। श्री महारबल मलयासुन्दरी चरित्र् ।।

आगन्तुक - युवक

महाराज वीरधवल अपने राजप्रसाद के ऊपरी दालान में बैठे हुए थे । संध्या का सुहावना समय था । वासरमणि सूर्य अपनी सुदूरवर्त्ती किरणों को समेटकर अपने निवास स्थान की ओर प्रस्थान कर रहे थे । दिनभर अथक परिश्रम करने वाली मनुष्य जाति अपने - अपने घर पर आ विश्राँति में मग्न थी। पक्षीगण अपने अपने घोंसलों में जाकर शांति में लीन हो रहे थे । सृष्टिदेवी पर निस्तब्धता छायी हुई थी । आकाश मण्डल धुंधले रंग में प्रकाशहीन पर अतीव शोभायमान दिख रहा था । राजमहल के भव्य द्वार पर प्रतिहारी रात्रि का आगमन होने के कारण सावधान हो संरक्षण की भावना से पहरा दे रहे थे । विशाल राजमहल के गगन चुंबी शिखरों पर धीरे - धीरे अंधकार का साम्राज्य फैल रहा था । राजप्रसाद के समस्त कर्मचारी अपने अपने नियत कार्य पर लग चुके थे । सृष्टिदेवी शांत, स्निग्ध, हृदय से निद्रा की आराधना कर रही थी ।

जिसने असंख्य आशाओं की, अपरिमित लालसाओं की पूर्ति का समय अपनी आँखों से देख लिया है, जिसने राजैश्वर्य का दुष्प्राय सुख भोग लिया है, ऐसे महाराज वीरधवल सभा विसर्जनकर रात्रि के प्रशांत समय में राजमहल के ऊपर के एक भाग में बैठे थे । सारी प्रजा उनके राजनियंत्रण की दयामय स्थिति से संतुष्ट थी । महाराज वीरधवल जहां पर बैठे हुए थे वहाँ से राजनगरी का मनोरम दृश्य दिख रहा था ।

ऐसे सुहावने समय में नीचे के द्वार पर किसी की आहट आयी । समुद्र की लहरें शांत हो जाने पर जैसे समुद्र शांत दिखता है, उसी तरह राजमहल गंभीर शांतता में विलीन था । राजमहल के महाद्वार पर प्रतिहारिओं के पास एक नवयुवक आकर खड़ा हुआ । युवक गठीले शरीर का आरोग्य संपन्न था ।

उसके चेहरे पर उत्साह और नवचैतन्य की उमंगें नाच रही थीं । उसकी बड़ी - बड़ी आंखों में नवतेजोमय उत्साह छलक रहा था । उसके विस्तीर्ण ललाट पर पसीने के बिन्दु चमकते थे और आंखों में वीरश्री का उज्ज्वल पानी झलक रहा था । युवक ने महाद्वार के प्रतिहारी को अत्यन्त विनीत भाव से प्रणाम किया और धीमे स्वर में कहा ''मैं महाराज की मुलाकात के लिए आया हूँ।'' बस! इतना ही कहकर वह युवक चुप हो गया । आत्मगौरव की भावनाओं से उसका मुख मंडल निमेष मात्र के लिए प्रसन्न हो गया था ।

''नहीं इस समय आप राजमहल में नहीं जा सकेंगे ।'' द्वारपाल ने युवक के चेहरे को निहारकर उत्तर दिया । ''आपसे महाराज का इस वक्त मिलना असंभव है । आप फिर भी ..'' द्वारपाल की बात काटकर युवक ने अदम्य उत्साह से विनम्र भावयुत होकर फिर कहा - नहीं मुझे इसी वक्त महाराज से मिलने की आवश्यकता है । आपसे कहने तक का भी समय नहीं, मुझे जल्दी ही जाने दो । आप किसी तरह की शंका न रखें । महाराज मुझे देखते ही नाराज होने के बदले प्रसन्न होंगे ।

महाराज वीरधवल एकांत चित्त से दीपकों के प्रकाश में राजनगर का सौन्दर्य निरीक्षण कर रहे थे । अस्तगामी सूर्य की अस्पष्ट लालिमा भी अब अदृश्य हो चुकी थी । चारों तरफ अंधकार ने अपना अधिकार जमा लिया था। महाराज की नजर महाद्वार पर गयी । द्वार पर खड़े युवक को देखते ही वे प्रसन्न हो गये । महाराज ने प्रौढ़ और गंभीर आवाज से पुकारा - द्वारपाल!''

महाराज की पुकार सुनते ही हाथ जोड़ प्रणामकर द्वारपाल ने कहा - ''आज्ञा सरकार'' ''उन्हें हमारे पास भेज दो ।'' महाराज वीरधवल का यह वाक्य पूरा भी न होने पाया था, महाद्वार खोला गया और अपने पीछे पीछे उस युवक को लेकर वह प्रतिहारी राजा के समीप आया, फिर तीन वक्त प्रणामकर द्वारपाल वहां से बाहर निकल गया । महाराज ने उस युवक को देखकर विचार किया इस वक्त संध्या समय में मेरे पास आनेवाले मनुष्य को अवश्य ही कोई महान् प्रयोजन होगा । राजा को चाहिए हर एक प्रजाजन के दुःख को हर समय

सुनने के लिए तत्पर रहे और चाहे जैसे प्रयत्न से प्रजा को दुःख से मुक्त करनी चाहिए । बहुत से अधिकारी प्रजा के दुःख की उपेक्षा करते हैं, नियमित समय के सिवाय प्रजाजनों की फरियाद नहीं सुनते । इससे प्रजा को बहुत बार कष्ट उठाना पड़ता है । इस प्रकार प्रजा की पुकार पर उपेक्षा करने वाला अधिकारी या राजा वास्तव में उस पद के योग्य ही नहीं होता । मुझे अपनी प्रजा की फरियाद हर वक्त सुननी चाहिए और शक्य प्रयत्नों द्वारा उसे सुखी करनी चाहिए । राजा प्रजा के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होता है । प्रजा के सुख पर ही राजा के राजैश्वर्य का आधार है, यह बात हमें हर वक्त याद रखनी चाहिए । प्रजा की यातनाभरी कराहनी राजा को निर्वशकर भिखारी बना देती है । इत्यादि विचारों में मग्न होते हुए महाराज के सन्मुख आगंतुक युवक आ उपस्थित हुआ । उसने महाराज के सन्मुख उपहार रखकर विनीत भाव से गर्दन झुका चरणों में नमस्कार किया ।

प्राचीन साहित्य में विशाल भारत भूमि आर्य देश के नाम से प्रसिद्ध है। उसके दक्षिण देश में चन्द्रावती नगरी उसकी शोभा में और भी अधिक वृद्धि कर रही थी । इसी चन्द्रावती नगरी के पूर्ववर्ति विशाल काय महान् मलयाचल पर्वत अपने ससुगंध मन्द पवन से नगरी के लोगों को नित्य ही आनंदित करता था । राजा के महल, धनाढ्य व्यापारियों के गगनचुंबी मकान, जिनेश्वरदेव के मंदिर और धर्मसाधन करने के पवित्र स्थान ये उस नगरी की मुख्य शोभा बढ़ा रहे थे । शहर के चारों तरफ सुंदर किला था । शहर की दक्षिण दिशा में महान् विस्तार वाली गोला नदी कल - कल निनाद करती हुई बह रही थी । शीतल और चमत्कारिक तरंगों से देखने वालों के मन को आनंदित करती थी । नदी के किनारे का हरियाला प्रदेश, शहर के चारों तरफ के बगीचे और छोटे - छोटे सुंदर पहाड़ों पर खड़े हुए वृक्षों के निकुंज ग्रीष्म ऋतु में प्रचंड आताप से मनुष्यों को शांति देने के लिए पर्याप्त थे । इसी रमणीय चंद्रावती नगरी के स्वामी पूर्वोक्त महाराज वीरधवल है ।

महाराज के साथ बातचीतकर उस युवक के गये बाद महाराज वीरधवल के चेहरे पर कुछ उदासीन भाव ने अपना प्रभाव डाला । मुख पर चमकता हुआ

राजतेज निस्तेज सा हो गया, उसके हृदय में चिंता ने स्थान जमा लिया और मुख से उष्ण तथा दीर्घ निश्वास निकलने लगा । अर्थात् महाराज किसी गूढ़ चिंता के कारण शोक समुद्र में निमग्न हो गये । ठीक इसी समय पर महारानी चंपक माला और द्वितीया रानी कनकवती महाराज के पास आ पहुँची । महारानी चंपकमाला अतिसुंदर रूप लावण्य के उपरांत शीलादि अलंकारों से सुशोभित होने के कारण सारे राजकुटुम्ब पर अपना महारानी पन का अद्वितीय प्रभाव रखती थी । इसीसे महाराज ने उसे पट्टरानी की पदवी से विभूषित किया था । कनकवती भी रूप लवण्य में कुछ कम न थी । इसीलिए वह भी महाराज वीरधवल की प्रिय पत्नी थी । दोनों रानियों के वहां आ जाने पर भी ध्यानमग्न योगी के समान चिंता में एकाग्र हुए महाराज वीरधवल ने उसकी तरफ गर्दन उठाकर देखा तक नहीं । अपने प्रिय पति की ओर से हमेशा की तरह आज कुछ भी आदर मान न मिलने के कारण दोनों रानी घबरा सी गयी । वे व्यग्र चित्त से विचारने लगी कि आज महाराज की हम पर सदा के समान कृपादृष्टि न होने का क्या कारण है? क्या अज्ञानता में हम से पति देव का कोई अपराध हुआ है? आज महाराज हमारी तरफ देखते भी नहीं । इस प्रकार के संकल्प विकल्प की उलझन में उलझी हुई वल्लभाएँ महाराज के नजदीक आयी और द्रवित हृदय तथा नम्र वचन से पतिदेव को प्रार्थना करने लगीं । नाथ! क्या आज हम दासियों से अज्ञानता में आपका कोई अपराध हुआ है? आप इतने उदास क्यों है? थोड़ी देर पहले तो आप दीवानखाने के बरामदे में आनंद से फिर रहे थे और चंद्रावती नगरी की शोभा देख रहे थे । इतने थोड़े ही समय में आप इतने उदास क्यों बने? अगर यह बात इन अपनी सहचारिणियों को मालूम करने लायक हो तो कृपाकर हमें भी अपने दुःख में शामिल करें ।

अपनी प्रिय वल्लभाओं का शब्द कान में पड़ते ही महाराज की विचार श्रेणी भंग हुई और वे प्रेमगर्भित शब्दों से बोले प्रियवल्लभाओं! आज मैं एक ऐसी चिंता में निमग्न हो गया हूँ कि तुम्हारा आगमन भी मुझे मालूम न हुआ । परंतु इस चिंता का कारण जुदा ही है और तुम्हें भी इसमें हिस्सा लेना होगा । हमारे ही शहर में रहनेवाले एक वणिक पुत्र गुणवर्मा ने अभी मेरे पास आकर

अपने घर का जो इतिहास सुनाया है सिर्फ वही मेरी चिंता का कारण है । इतना कहकर महाराज वीरधवल फिर शांत हो गये ।

महारानी चंपक माला हाथ जोड़कर नम्रता से बोली महाराज! आपकी चिंता का कारण हम सहचरियों को अवश्य सुनाना चाहिए । हम आपके ही सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होनेवाली है । आपके कथनानुसार इस चिंता में हम खुशी से हिस्सा लेगी ।

प्रिया का अत्याग्रह देख महाराज वीरधवल अपनी उदासीनता का कारणरूपी गुणवर्मा द्वारा कहा हुआ वृत्तान्त सुनाने लगे ।

प्रिय वल्लभाओ! हमारी इस चंद्रावती नगरी में लोभाकर और लोभानन्दी नाम के दो वणिक रहते हैं । वे अपने नामानुसार ही गुणनिष्पन्न है। सहोदर होने के कारण उन दोनों भाईयों में परस्पर प्रेमभाव भी है । वे लोहे आदि का व्यापार करके धन उपार्जन करते हुए सुख से दिन व्यतीत करते हैं । समय क्रम से लोभाकर को गुणवर्मा नामक पुत्र हुआ । परंतु अनेक स्त्रियों के साथ पाणिग्रहण करने पर भी लोभानंदी को कोई संतान न हुई । सचमुच पुत्र पुत्री आदि संतति रूपी फल भी पूर्वोपर्जित शुभाशुभ कर्म बीजानुसार ही मिला करता है ।

एक दिन वे दोनों भाई दुकान पर बैठे थे । उस समय एक सुंदर आकृति वाला अपरिचित युवा पुरुष वहां आया । सांसारिक व्यवहार में एवं अधिकतया वणिक कला में प्रवीण इन वणिकों ने उसकी आकृति पर से उसे धनवान समझकर आसनादि देकर उसकी अच्छी भक्ति की । कितने एक दिन के बाद उन वणिकों की बनावटी प्रीति और भक्ति से विश्वास प्राप्त करनेवाले उस युवान पुरुष ने अपने पास रहा हुआ एक तूम्बा कुछ दिन के लिए धरोहर के तौर पर उन्हें सौंप दिया और खुद किसी एक गाँव को चला गया । उन्होंने उस तूंबे को दुकान में किसी एक खूंटी पर लटका दिया। एक दिन आताप की गर्मी से पिघले हुए रस के बिंदु उस तूंबे में से गिरकर नीचे पड़ी हुई लोहे की एक खुदाली पर पड़ी और उस रस के स्पर्श मात्र से सुवर्णमय बन गयी । यह देखकर

उन बनियों ने अच्छी तरह समझ लिया कि उस तूंबे में सिद्धरस है । इस कारण उन लोभांध वणिकों ने रस सहित तूंबे को किसी गुप्त स्थान में छिपा लिया ।

कितने एक दिन के बाद वह युवक फिर वापिस चन्द्रावती में आया और माने हुए प्रमाणिक उन वणिकों के पास से उसने अपना तूंबा वापिस मांगा । उन दंभी व्यापारियों ने जवाब दिया कि आपका तूंबा चूहों ने डोरी काट देने के कारण नीचे पड़कर फूट गया और उसमें रहा हुआ रस तमाम जमीन पर बह गया! इस प्रकार जवाब देकर किसी अन्य तूंबे के टुकड़े लाकर उसे दिखलाये। टुकड़े देख उस युवा पुरुष ने समझ लिया कि मेरे तूंबे में रहे हुए लोह भेदक रस को इन्होंने किसी न किसी प्रकार जान लिया है । इसी कारण ये मेरे तूंबे को छिपाते हैं । युवा पुरुष बोला- सेठ! मेरा तूंबा मुझे वापिस दे दो, ये टुकड़े मेरे तूंबे के नहीं हैं । कपट से आप मुझे झूठा उत्तर मत दो । आप न्यायवान् हैं, मैंने आपको प्रमाणिक और विश्वासु समझकर ही आपके पास रक्षण के लिए तूंबा रखा है । यदि आप मेरे साथ विश्वासघात करेंगे तो आपके लिए भी महान् अनर्थ होगा । मैं किसी तरह भी विश्वासघात का बदला लिये बिना न रहूंगा । इत्यादि अनेक प्रकार से उन दोनों व्यापारियों को समझाया, परंतु लोभ के वशीभूत हो; उन वणिकों ने उसके कथन की बिलकुल परवाह नहीं की । युवक ने विचारा कि अगर यह बात मैं राजा से जाकर कहुं तो यह ऐसी वस्तु है कि इसे राजा खुद ले लेगा । क्योंकि लक्ष्मी को देखकर किसका मन नहीं ललचाता? दूसरी तरफ ये लोभांध व्यापारी भी मुझे सरलता से मेरे पास का तूंबा वापिस दे यह असंभवित है । मुझे अभी बहुत दूर जाना है । अतः समय खोना भी ठीक नहीं । मुझे अब अंतिम उपाय का ही आश्रय लेना चाहिए । *"शठं प्रति शाठ्यं कूर्यात्"* शठ के साथ शठता ही करना, धूर्तों के साथ धूर्त बनना और सरल मनुष्यों के साथ सरलता का व्यवहार करना योग्य है" इस प्रकार विचारकर उसके पास जो स्तंभनकारी विद्या थी, उस विद्या के प्रभाव से उस युवक ने दोनों भाइयों को स्तंभित कर दिया और अपने किये का फल पाओ! यह कहकर वह वहाँ से अन्यत्र चला गया।

उस विद्या के योग से वे दोनों भाई ऐसे स्तंभित हो गये कि उनके अंगोपांग

भी हिल डुल नहीं सके । परंतु स्तंभ की माफक स्थिर हो वे दोनों खड़े ही रह गये । थोड़े ही समय में उन दोनों की सन्धियें टूटने लगीं । इससे पीड़ा के कारण वे जोर से चिल्लाने लगे । ***मूर्ख लोग किसी भी काम को करते समय जरा भी सोच विचार नहीं करते, पामर जीवों का यही लक्षण है ।***

इस संसार में अज्ञानी जीव कर्म करते समय आगामी परिणाम का बिलकुल खयाल नहीं करते, वे वर्तमान काल को ही देखते हैं । परंतु वर्तमान में किये हुए पापकर्मों का जब कड़वा फल भोगना पड़ता है तब उससे छुटकारा पाने की वे अनेक विध कोशिश करते हैं और छुटकारा न पाने से दयाजनक आर्त्त स्वर से रुदन करते हैं । प्राणी जिस प्रकार के परिणाम से जो कर्म बांधता है उसका विपाकोदय आने पर वैसा ही मंद या तीव्र फल अवश्य भोगना पड़ता है । इसीलिए दुःख से उकताने वाले मनुष्यों को या दुःख को न पसंद करने वाले मनुष्यों को कर्म करते समय ही सावधान रहना चाहिए । जिससे कि उन्हें कड़वा फल भोगने का समय न आवे ।

विश्वासघात महा पाप है और विश्वासघात करने वाले अधोगति में जाकर भयंकर कष्ट भोगते हैं । इन वणिकों को अपने किये हुए विश्वासघात - पाप करने का इस वक्त पश्चात्ताप हुआ। परंतु समय बीते बाद कर्म का परिणाम उदय होने पर पश्चात्ताप करना बेकार होता है । इस समय वह युवा पुरुष निःस्पृह मनुष्य के समान अपनी धरोहर की आशा छोड़कर बहुत दूर निकल गया था। यह बात शहर के बड़े -बड़े हिस्सों में फैल गयी । जगह - जगह इस बात की चर्चा होने लगी और नगर के विचारशील मनुष्य उन दोनों भाइयों को फिटकारने लगे । बहुत से मनुष्य यह समझकर कि उग्र कर्म का फल इसी भव में मिल जाता है, ऐसे घोर अकृत्यों का परित्याग करने लगे ।

इस समय लोभाकर का पुत्र गुणवर्मा किसी कार्य के लिए कितने एक दिन से शहर से बाहर किसी गांव को गया हुआ था । किसी मनुष्य के द्वारा इस बात को सुनकर वह शीघ्र ही घर आया। अपने पिता व चाचा की ऐसी अधम दशा देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ । गुणवर्मा उदार दिल, निर्लोभी और विचारशील युवक था । लोगों में होने वाली इस कृति की निन्दा उससे सहन

न हो सकी । दूसरी तरफ अपने बुजुर्गों को निरंतर दुःखी अवस्था में देखना यह भी उसे उचित न लगा। उसने तुरंत ही अनेक मंत्रवादी बुलवाये और अपने बुजुर्गों का दुःख दूर करने के लिए खूब द्रव्य व्यय करना शुरू किया । अनेक तरह के उपाय किये गये, अनेक मांत्रिक तांत्रिकों ने अपने प्रयोग किये परंतु अपने आपसे किये हुए कर्म का कटुफल भोगे बिना किस तरह मुक्ति हो सकती थी । पानी पर किये हुए प्रहार के माफक उन लोगों के किये हुए अनेक उपाय सब निष्फल गये । इतना ही नहीं किन्तु धीरे - धीरे उनका कष्ट और भी बढ़ता गया । गुणवर्मा निराश हो गया ।

लक्ष्मी की प्राप्ति के साथ दुःखियों के दुःख श्रवण करने की शक्ति नष्ट हो जाती है, दुःखी के लिए सांतवना के शब्द बोलने पर तो गोदरेज का ताला लग जाता है । दीन दुःखियोंके दुःख दूर करने हेतु पैरों पर बेड़ियाँ लग जाती हैं, दीन - दुःखियों के दर्द से विमुख बनाने वाली लक्ष्मी को मानव भव में अग्रस्थान देरक तूंने अपना कौन - सा हित किया है? अवश्य चिंतन करना । - जयानंद

धर्म - प्रभाव

चतुरंगो जयत्यर्हन् दिशन् धर्मचतुर्विधं,
चतुष्काष्टासु प्रसृतां, जेतुं मोहचमूमिमाम् ।

चारों दिशाओं में फैली हुई मोहराजा की सेना को जितने के लिए ही मानो चार शरीर को धारणकर चार प्रकार के धर्म का उपदेश करते हुए अरिहंत भगवंत जय को प्राप्त करते हैं ।

संसार में धर्म सर्वोत्कृष्ट मंगल है । समृद्धि को देने वाला, अनेक प्रकार की सुख प्राप्ति करानेवाला, संतान को तारनेवाला, पूर्वजों को पवित्र करनेवाला, अपकीर्ति को हरनेवाला और जगत में कीर्ति की वृद्धि करनेवाला, एक मात्र धर्म ही है । संपत्ति की इच्छा करनेवालों को संपत्ति देनेवाला, भोगों की तृष्णा वालों को भोग देनेवाला, सौभाग्य के अर्थियों को सौभाग्य प्राप्त करानेवाला, पुत्रार्थियों को पुत्र और राज्यार्थियों को राज्य ऋद्धि प्राप्त करानेवाला भी सिर्फ धर्म ही है । विशेष क्या कहा जाय जगत में एक भी ऐसी वस्तु नहीं कि जो धर्म के द्वारा धर्मकर्ता को प्राप्त न हो सके । अर्थात् स्वर्ग और अपवर्ग - मुक्ति की प्राप्ति भी धर्म से ही होती है ।

धर्म का प्रभाव कथन या श्रद्धाभाव से ही नहीं है, किन्तु विचारक मनुष्य संसार की विषमता का विचार करके इसका भली प्रकार निर्णय कर सकते हैं । प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि संसार में एक मनुष्य सुखी, दूसरा दुःखी, एक मूर्ख, दूसरा ज्ञानी, एक आरोग्य प्राप्त, दूसरा रोगी, एक धनवान तो दूसरा निर्धन, एक दाता दूसरा भिक्षु, एक मनुष्य अन्य लाखों मनुष्यों का पूज्य और दूसरा मनुष्य लाखों मनुष्यों का तिरस्कार पात्र । इत्यादि अनेक प्रकार की विचित्रता का अनुभव क्यों होता है? मनुष्यता समान होने पर भी इस तरह का भेद क्यों देखा जाता है? एक ही कार्य के लिए सब तरह के साधनों द्वारा समान

प्रयत्न करने पर भी एक की उस कार्य में विजय और दूसरे की पराजय दिख पड़ती है। समान साधन और समान ही प्रयत्न करने पर विजय और पराजय का कारण क्या? विचारक मनुष्य विचार द्वारा इस कारण को शोधते हुए स्वयं निश्चय कर सकता है कि इन तमाम बातों में कारण भूत मात्र एक धर्म ही है। धर्म का विषय बहुत गहन है। उसके कार्य और कारण के नियमों का अभ्यास बहुत सूक्ष्मता से करना चाहिए। धार्मिक सूक्ष्म ज्ञान के सिवा मनुष्य बहुत बार गंभीर भूल कर बैठता है और उससे अपनी धार्मिक श्रद्धा को शिथिल कर लेता है।

दृष्टांत के तौर पर धर्म श्रद्धा के शिथिल होने का बहुत बार यह कारण बनता है, पाप वृत्ति से आजीविका करनेवाले कपट प्रपंच रचने वाले और पाप में अधिक प्रवृत्ति करने वाले बहुत से मनुष्य सुखी दिखाई देते हैं। व्यवहारिक कार्य प्रपंच में भी कदाचित उन्हें सफलता प्राप्त होती दिखाई देती है। इत्यादि प्रत्यक्ष कारणों को देखकर बहुत से मनुष्य अपने दिल में शंकाशील बनते हैं कि धर्म है या नहीं? धर्म का फल मिलता है या नहीं? पापी लोग सुखी क्यों है? धर्म करनेवाले दुःखी क्यों दिखाई देते हैं? इत्यादि शंका की नजर से धर्म तथा उसके फल को देखते हैं। सच पूछो तो इस प्रकार की शंका करने वाले मनुष्यों को धर्म और उसके कार्य कारण के नियमों का पूर्ण परिज्ञान ही नहीं होता, इसी से बाह्य व्यवहार को देखकर उनके दिल में शंकायें पैदा होती हैं, परंतु उन्हें सोचना चाहिए कि संसार में कोई - सा भी कार्य, कारण के बगैर निष्पन्न नहीं होता।

जमीन में बीज बोये बाद हवा, पानी और खाद आदि निमित्त सर्वथा अनुकूल हों तो वह बीज अल्प समय में ही अंकुरित हो शाखायें, पत्तियें वगैरह उत्पन्न कर एक वृक्ष के रूप में नजर आता है, और समय पर फल भी देने में समर्थ होता है परंतु पर्याप्त अनुकूल साधन होने पर भी वह बीज एक ही दिन में महान वृक्ष के रूप में नहीं दीख सकता। क्योंकि कारण को कार्य के रूप में आने के लिए कुछ भी समयान्तर या व्यवधान की जरूरत होती है। एवं पाप रूपी वृक्ष के कड़वे फलों के साथ भी इस व्यवधान की समानता समझ लेना

चाहिए । जिस प्रकार वृक्ष की वृद्धि में और उसके शीघ्र फल देने में अनुकूल कारणों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार उग्र पुण्य और उग्र पाप वाले कर्मों का फल भी थोड़े ही समय में तीव्र मिलता है । ऐसे ही मंद परिणाम से किये हुए पाप वाले कर्मों का फल भी कालान्तर में सुख - दुःख नियमित रूप से मिलता है ।

उपरोक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि जो पाप वृत्ति करने वाले प्रपंची मनुष्य इस समय सुखी देख पड़ते है और व्यवहार में सफलता प्राप्त करते हैं, यह उनके पूर्व कर्मों का फल है । उनका पूर्व कर्म जो इस समय पापाचरण करते हुए भी उन्हें सुख और सफलता दे रहा है वह शुभ था । इस समय के अशुभ कर्मों के फलों के बीच पूर्व के शुभ कर्मों का व्यवधान पड़ा हुआ है । यह व्यवधान या अंतर पूर्ण होने पर अर्थात् पूर्वकृत शुभ कर्म का फल समाप्त होने पर और वर्तमान काल के या पूर्वकाल के अशुभ कर्म उदय होने पर इस समय सुखी दिखाई देते मनुष्यों के तीव्र या मंद पाप परिणाम के प्रमाण में दुःख की न्यूनाधिकता अवश्य परिवर्तन हो जाती है।

क्रिया अच्छी हो या बुरी उसका फल अवश्य मिलता है । अच्छी क्रिया का अच्छा फल और खराब क्रिया का खराब फल प्राप्त होता है । इसको साबित करने के लिए अनेक दृष्टांत नजर के सामने मौजूद हैं इसलिए धर्म सत्य है और उसका फल अवश्य ही मिलता है । मनुष्यों के लिए धर्म की परमावश्यकता है और वह धर्म इस मनुष्य जिंदगी में ही प्राप्त हो सकता है । ज्यों छाछ में मक्खन, कीचड़ में से कमल, बांस में से मुक्तामणि सारभूत होने के कारण ग्रहण करने योग्य हैं, त्यों मनुष्य जन्म से सारभूत धर्म ग्रहण करने योग्य है ।

दुर्गति में पड़ते प्राणियों को धारण करने वाला होने से और सद्गति प्राप्त कराने वाला अर्थात् जन्ममरण के भयंकर दुःखों से मुक्त कराने वाला होने के कारण यह धर्म कहलाता है । ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीनों में पूर्वोक्त

सामर्थ्य होने से रत्नत्रय ही धर्म है ।

जिससे जीवाजीवादि तत्त्वों का बोध होता है, उसे महान् पुरुष सम्यग् ज्ञान कहते हैं । आत्मा और उससे भिन्न अजीव, ये दो मुख्य वस्तु हैं । इन दोनों मुख्य तत्त्वों में संसार के सर्व दृश्य और अदृश्य पदार्थों का समावेश हो जाता है । जड़ पदार्थों के साथ जो आत्मा की आसक्ति है उसके कारण ही वह सर्व प्रपंच दिखाई देता है । आत्मा और जड़ पदार्थ का जो संमिश्रण है, वही नाना प्रकार के देह धारण करने का कारण है । इष्टानिष्ट जड़ पदार्थों की प्राप्ति से उत्पन्न होने वाला हर्ष शोक ही इस संमिश्रण का कारण है, जड़ पदार्थों के लिए उत्पन्न होते हुए राग द्वेष से कर्म का आगमन होता है । ये कर्म अनेक रूप में विभाजित होकर आत्मा के शुद्ध गुणों को आच्छादित करते हैं (दबाते हैं) । उस कर्म आवरणों के द्वारा यह आत्मा चतुर्गतिरूपी संसार में परिभ्रमण करती हुई अनेक प्रकार की यातनाओं, पीड़ाओं का अनुभव करती है । संसार की अनेक विध पीड़ाओं की शांति का मुख्य कारण मात्र ज्ञान है । ज्ञान से सत्यासत्य का, नित्यानित्य का, हिताहित का और स्वरूप का बोध होता है । वस्तु का वस्तु के रूप में बोध होने से सत्य और हितकारी वस्तु की ओर प्रीति पैदा होती है । वही सुख दायी है ऐसी श्रद्धा उत्पन्न होती है । यह श्रद्धा प्राप्त होने पर तदनुसार आचरण करने की रुचि होती है और उस प्रकार वर्तन करने से आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकती है । तात्पर्य यह है कि सद्ज्ञान से सत्य वस्तु मालूम होती है, सद् दर्शन से उसमें श्रद्धा पैदा होती है और चारित्र से तदनुसार वर्तन किया जाता है । या यों कहें कि सत्य वस्तु जानने को सत् ज्ञान, उसके निश्चय को सद् दर्शन और जैसा जाना तथा जैसी श्रद्धा वैसा ही आचरण करना वह चारित्र । ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीनों में ज्ञान की मुख्यता है । क्योंकि इसके वगैर पिछले दोनों अंग प्राप्त नहीं होते ।

अदृष्टार्थ का प्रकाशक ज्ञान तीसरे नेत्र के समान है । गाढ़ अज्ञान अंधकार को दूर करने वाला ज्ञान सूर्यबिम्ब के समान है । ज्ञान निष्कारण बन्धु है । ज्ञान मनुष्यों के लिए संसार रूपी समुद्र में जहाज के समान है । कर्म के

सिद्धान्तों के ज्ञान का अधिकतर मनन करना चाहिए और उसे हर एक प्रसंग पर क्रिया में उपयुक्त करना चाहिए । दुःखदायी प्रसंगों में अपना दुःख कम करने के वास्ते उसे अवश्य ही सन्मुख लेना और धैर्य से दुःख के प्रसंगों को पार करना चाहिए जिस प्रकार एक श्लोक के अर्थ की विचारना से राजकुमारी मलया सुंदरी ने दुःख के महान् समुद्र को पार किया ।

❀

◆ *एक वृक्ष स्व स्वार्थ को तजकर हम पर कितना उपकार कर रहा है । हमसे कैसी मित्रता निभा रहा है । बिना किसी भेदभाव, छाया दे रहा है, पत्थर मारनेवाले को भी फल देता है, पत्ते एवं जड़े, औषधि के रूप में उपयोगी है । उसी के काष्ठ से बने स्टूल, कुर्सी, द्वार, खिड़किया स्तंभादि कितने जीवनोपयोगी साधन हैं । अरे वह साथ में जलकर राख बनने में भी काम आ जाता है, अंतिम समय तक मित्रता को बनाये रखता है ।*

❀

◆ *जैन शासन को समझने वाला आत्मा बाहरी दृश्यों को देखने की अपेक्षा आत्म दर्शन की ओर विशेष प्रयत्न शील रहता है । और जो आत्मा आत्म दर्शन करना चाहता है वही आत्मा आत्म दर्शन कर अति निकट में अपने घर में निवास करता है ।*

– जयानंद

बन्धन मुक्ति

धन धान्य से परिपूर्ण और मनुष्यों से शून्य एक शहर के दरवाजे पर खड़ा हुआ एक युवा पुरुष विचार कर रहा है ''अब मैं कहां जाऊँ? उस अनजान पुरुष की किस तरह शोध करूँ? मैं खुद तो उसे पहचानता ही नहीं । उसे पहचानने वाला साथ में आया हुआ मनुष्य भी बीमार होने के कारण वापिस चला गया । मैं तो उसका नाम ठाम या आकृति वगैरह कुछ भी नहीं जानता। अब तो अनेक शहर, गाँव, आश्रम वगैरह फिर फिर कर थक गया । परंतु खोये हुए धन के समान उस मनुष्य का कुछ भी पता न लगा । अगर वह कहीं नजदीक में ही हो और मुझे मिल भी जाय तो पहले देखे वगैर मैं उसे किस तरह पहचान सकूंगा? इत्यादि विचारों और रास्ते के परिश्रम से खिन्न हुआ वह युवक विश्रांति के लिए इस शून्य शहर में प्रवेश करता है । आगे चलने पर उसे अपने सन्मुख आता हुआ सुंदर आकृतिवाला एक पुरुष दिखाई दिया । उस पुरुष को शहर में प्रवेश करते हुए इस युवक की कुछ आवश्यकता हो ऐसा उसके चेहरे पर से मालूम होता था। शहर में प्रवेश करने वाले उस थके हुए युवक को देखकर शहर में से आता हुआ पुरुष बोल उठा– हे वीर पुरुष! आप कौन हैं? और कहाँ से आये हैं? यह सुन कर शहर में प्रवेश करनेवाले युवक ने उत्तर दिया, ''भाई मैं एक पथिक हूँ' देशाटन करते हुए रास्ते के परिश्रम से थक कर विश्रांति के लिए इस शहर में प्रवेश कर रहा हूं ।'

''आप स्वयं कौन हैं? इस शहर में आप अकेले ही क्यों दिख पड़ते हैं? यह शहर ऋद्धि सिद्धि से पूर्ण होने पर भी मनुष्यों से शून्य क्यों है? और इस नगर का नाम क्या है!

पथिक के ऐसे विनय भरे वचन सुनकर खुश हो वह कहने लगा ''हे भद्र! यह कुशवर्धन नामक शहर है । वीरपुरुषों में अग्रेसर शूर नामक राजा यहाँ राज्य करता था । उसके जयचंद्र और विजयचंद्र नाम के हम दो पुत्र थे । आयुष्य पूर्ण होने पर मेरे पिता इस फानी दुनिया को त्याग कर देवलोक में जा

बसे । सचमुच ही संसार में तमाम वस्तु नाशवान है । देहधारी जीवों का चाहे जितना लंबा आयुष्य हो तथापि उसका अंत अवश्य है । मेरे पिता की मृत्यु के बाद मेरा बड़ा भाई जयचंद्र राज्यासन पर आरूढ़ हुआ । उसने मुझे राज्य का हिस्सा न दिया इससे मैं अपना अपमान समझकर इस राजधानी को छोड़कर अन्यत्र चला गया । मैं चंद्रावती नगरी में पहुंचा वहाँ जाकर उस नगरी के बाहर उद्यान में एक विद्यासिद्ध पुरुष को मैंने देखा, परंतु वह सिद्ध पुरुष अतिसार रोग से ऐसा दुःख भोग रहा था कि जिससे ना तो उससे चला ही जाता था न बोला जाता था । उसकी ऐसी दशा देखकर मेरे हृदय में दयासंचार हुआ । दुःखी मनुष्यों को देखकर जिसके हृदय में निःस्वार्थ दया का संचार नहीं होता वह मनुष्य मनुष्य नाम धारण करने के योग्य नहीं । मनुष्य जब खुद दुःखी होता है तब वह दुःख से मुक्त होने के लिए दूसरे मनुष्यों की सहायता मांगता है, ऐसी दुःखी अवस्था में यदि कोई थोड़ी भी सहायता दे तो वह बहुत खुश होता है। इस तरह का स्वयं अनुभव होने पर भी यदि वह मनुष्य दुःखी अवस्था में पड़े हुए दूसरे मनुष्य को सहायता न दे तो उस विचार शून्य मनुष्य को सचमुच ही नरपशु समझना चाहिए । ऐसे मनुष्य पृथ्वी पर भारभूत होते हैं । जहाँ पर अपनेपन की और स्वार्थपन की वृत्तियाँ होती हैं वहाँ पर परमार्थ वृत्तियाँ और धार्मिक भावनाएं टिक नहीं सकतीं । ज्ञानी पुरुष पुकारकर कहते हैं कि अगर तुम्हें सुखी होना है तो दूसरों को निःस्वार्थ बुद्धि से सुखी करो । जहाँ पर स्वार्थ सिद्धि होने की आशा होती है वहाँ सहाय करने वाले अधम मनुष्यों की दुनियाँ में कमी नहीं है । परंतु अपने स्वार्थ की आशा न रखकर बल्कि जिससे जान पहचान तक भी न हो ऐसे दुःखी मनुष्यों को सहाय देकर सुखी करनेवाले वीर पुरुष इस संसार में विरल ही होते हैं ।

किसी भी वस्तु की इच्छा न रखकर हृदय में संचारित दया की प्रेरणा से मैंने उस सिद्ध पुरुष की ऐसी सेवा शुश्रुषा और उपचार से सहाय की जिससे वह थोड़े ही दिनों में सर्वथा निरोगी हो गया । आरोग्य प्राप्त करके उस सिद्ध पुरुष ने मेरा नाम ठाम पूछा । संक्षेप से मैंने अपने ऊपर बीती हुई सब घटना कह सुनायी ।

प्रसन्न होकर उस सिद्ध पुरुष ने मुझे पाठ – सिद्ध बोलने से अपने गुण को प्रकट करने वाली एक स्तंभनकारी और दूसरी वशी – करण वश करने वाली दो विद्याएँ दीं । इसके उपरांत एक रस का भरा हुआ तूंबा देकर उसने कहा कि भद्र इस तूंबे का अच्छी तरह से रक्षण करना । यह रस मैंने बड़े कष्ट से प्राप्त किया है । यह लोह भेदी रस है जिसके एक बिन्दु के स्पर्श मात्र से लोहे का स्वर्ण बन जाता है । मेरी दुःखी अवस्था में तूंने बड़ी सहाय की है । तूं मुझे बिल्कुल नहीं पहचानता, एवं मेरी तरफ से तुझे किसी तरह की आशा भी न थी क्योंकि धनवान के समान मेरे पास वैसा कोई भी आडम्बर नहीं । इसलिए तूंने निःस्वार्थ बुद्धि से मेरी सहायता की है, इसीसे तेरी उत्तमता और सत्कुलीनता का पता लगता है । मैं जो तुझे प्रत्युपकार में ये दो विद्याएँ और एक सुवर्ण सिद्धरस का तूंबा दे रहा हूँ इनके द्वारा तूं एक महान् राज्यसंपदा प्राप्त कर सकेगा परमात्मा तेरे श्रेष्ठ कर्तव्यों का तुझे बदला दे और तेरे मनोरथों का सिद्ध करें । इत्यादि शिक्षा और आशीर्वाद देकर वह सिद्ध पुरुष गिरनार पहाड़ की तरफ चला गया ।

सिद्ध पुरुष ने अपने ऊपर उपकार करनेवाले मनुष्य पर अपनी शक्ति के अनुसार प्रत्युपकार किया । किये हुए उपकार को भूल जानेवाले, शक्ति होने पर भी और अवसर मिलने पर भी प्रत्युपकार न करने वाले मनुष्य धिक्कार के पात्र हैं । इस प्रकार के कृतघ्न मनुष्य उपकार को भले ही भूल जायँ, बदला न दें, तथापि परिणाम की विशुद्धि पूर्वक निःस्वार्थ बुद्धि से किया हुआ परोपकार उसे अपने मीठे फल अवश्य चखाता है ।

सिद्ध पुरुष की शिक्षा को स्वीकार कर मैं चंद्रावती नगरी में फिरने गया। वहाँ फिरते हुए मैं लोभाकर और लोभानन्दी नामक व्यापारियों की दुकान पर पहुंचा । व्यापार निपुण एवं कपट प्रपंच में भी निपुण उन बनियों ने मेरा बहुत ही आदर सत्कार किया, उनकी दिखलायी हुई शिष्टता के कारण मैं प्रसन्न होकर उनके स्वाधीन हो गया । अतः विश्वास पाकर उस रस के तूंबे को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें सौंपकर मैं कुछ दिन के लिए आगे दूसरे गाँव चला गया ।

कितनेक दिन लक्ष्मीपुर में रहकर माता से मिलने की उत्कंटा से मैं स्वदेश जाने को पीछे लौटा । रास्ते में चंद्रावती में रस का तूंबा लेने के लिए सेठ की दुकान पर गया, परंतु न जाने किस तरह मेरे तूंबे में रहे हुए लोह वेधक रस का लोभाकर को पता लगने से उसने उसे छिपा लिया और मुझे असत्य उत्तर दिया । बहुत कुछ समझाने बुझाने पर भी उन लोभांध व्यापारियों ने मेरा रस का तूंबा मुझे न दिया । तब अंत में कर्तव्य के अनुसार उन्हें शिक्षा देकर मैं वहाँ से अपने शहर की तरफ चल दिया । जब मैं वहाँ से देश विदेश फिरता हुआ यहां आया तब धनधान्य परिपूर्ण और प्रजा से शून्य अपने पिता की राजधानी को इस हालत में पाया कि जैसा तुम खुद इस वक्त देख रहे हो ।

पाठकों को याद होगा कि अपने पिता और चाचा को बंधन मुक्त कराने के लिए गुणवर्मा के किये हुए अनेक उपाय निष्फल गये । उस वक्त निराश होकर वह महान चिंता में पड़ा था। अंत में विचारकर उसने यह निर्णय किया कि जिसके द्वारा यह दुःखाग्नि प्रकट हुई है उसी से शांत भी होगी । अब उसी की शरण लिये बिना किसी तरह छुटकारा न होगा । यह निश्चयकर वह उस मनुष्य को पहचानने वाले एक अपने नौकर को साथ लेकर उस युवक की खोज में चंद्रावती से निकल पड़ा था । उस सहायक को बीमार होने से रास्ते में ही छोड़कर गुणवर्मा स्वयं ही थका पका आज इस शून्य नगर में आ पहुंचा है, और अपने बुजुर्गों के दुःख से दुःखित होकर वह जिस मनुष्य की तलाश में फिरता था आज वही इस शून्य नगर में प्रवेश करते हुए सन्मुख आ मिला। पाठक यह भी समझ गये होंगे कि शून्यनगर में गुणवर्मा को मिलने वाला युवक कुशवर्धनपुर के राजा शूरचंद्र का विजयचंद्र नामक कुमार है ।

मेरे पिता और चाचा को स्तंभन करनेवाला और जिसे ढूंढने के लिए मैं वन, उपवन, ग्राम और नगर भटकता फिरता हूँ, वह महाशय यह स्वयं ही है। यह जानकर गुणवर्मा को हिम्मत आयी । जब तक विजयचंद्र के संपूर्ण इतिहास से मैं वाकिफ न हो जाऊँ तब तक अपना उद्देश इसके सामने प्रकट करना सर्वथा उचित नहीं । यह निर्णयकर गुणवर्मा ने विजयचंद्र से कहा ''भाई! पूरा वृत्तान्त

सुनाओ; इस नगर के शून्य होने का क्या कारण है?

विजयचंद्र बोला इस नगर को मनुष्यों से शून्य देख कर मुझे बड़ा दुःख हुआ । देव ऋद्धिसमान शहर को आज श्मशान सरीखा देखकर मैं सहसा स्तब्ध हो गया । अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प उठे; परंतु मन का समाधान न हुआ । अंत में उत्साह और हिम्मत का सहारा ले मैंने अपने नगर के उज्जड़ होने का कारण जानने का निर्णय किया । मैं नगर के चारों तरफ फिरने लगा, तथापि मुझे अपने सिवाय कोई मनुष्य नजर नहीं आया । फिर मैंने राज महल में प्रवेश किया, वहाँ पर मेरे बड़े भाई जयचंद्र की विजया नामक पत्नी अकेली नजर आयी । मुझे देखते ही वह गद् गद् हो उठी और दौड़ी हुई मेरे सन्मुख चली आयी । मुझे बैठने के लिए आसन देकर वह अश्रुपूर्ण नेत्रों से रोने लगी । मैंने उसे धीरज दे नगर के उज्जड़ होने का कारण पूछा ।

विजया ने कहा – ''कुछ समय पहले लाल वस्त्र धारक और एक एक मास के उपवास करने वाला यहाँ पर एक तपस्वी आया था । उसके तप के कारण शहर जनों की उस पर खूब भक्ति हो गयी । आपके बड़े भाई ने एक दिन महीने के उपवास का पारणा करने के लिए उसे निमंत्रण दिया, वह भी राज निमंत्रण को स्वीकारकर महल में जीमने के लिए आया । उसके पारणे की सर्व सामग्री तैयार करके उसे जीमने बैठाया गया और महाराज की आज्ञा से उसे भोजन करते समय मैं पंखा करने लगी । नवीन यौवन, सुंदर रूप और शृंगारित मेरे शरीर को देखकर उस पाखंडी तपस्वी का मन विचलित हो गया।

सचमुच ही तपस्वियों का मन भी सुरूपा स्त्रियों को देखकर चलायमान हो जाता है, इसी कारण वीतराग देव ने योगी पुरुषों को स्त्रियों के सहवास से दूर रहने का फरमान किया है । यद्यपि यह बात एकान्त नहीं है कि योगी और तपस्वियों का मन विचलित हो ही जाय, तथापि तत्त्व ज्ञान में पूर्णतया प्रवेश न करने वाले, अज्ञान कष्ट करने में ही आत्मकल्याण समझने वाले या उस मार्ग में प्रथम ही आनेवाले अज्ञानी मनुष्यों के लिए ऐसा बनाव बनना सुलभ है । ***सत्ता में रहे हुए कितनेक कर्मों का ऐसा स्वभाव है कि निमित्त पाकर उदय***

मेंआ जाय, उस समय आत्म ज्ञान में प्रमादी और स्वरूप को भूले हुए अभ्यासी प्रबल कर्म के उदय को रोकने में असमर्थ हो तन, मन पर काबू न रखकर अकार्य में प्रवृत्त होते हैं । इसीलिए आत्मस्वरूप प्रकट करने वाले मनुष्यों को ऐसे निमित्तों से दूर ही रहना चाहिए ।

वह तपस्वी भोजन करते समय अपने आपको भूल गया । तपस्या से ग्लानि को प्राप्त हुए शरीर में कामदेव ने प्रबल जोश किया, जिससे उसका दुर्बल शरीर भी सबल मालूम होने लगा। उस वक्त तो वह भोजन करके अपने स्थान पर चला गया, परंतु रात्रि में कामांध होकर वह तपस्वी गोधा के प्रयोग से मेरे महल में आ घुसा और मेरे पास आकर विषय की याचना करने लगा । जब मैंने उसका कहना मंजूर न किया तब मुझे साम, दाम, दंड और भेद के नीति वचनों से डराकर अपनी कार्य सिद्धि के लिए प्रेरित करने लगा, यह तपस्वी है इसीलिए इसे जानसे मरवाना ठीक नहीं यह समझकर मैंने भी उसे साम, दाम, दंड भेद की नीति द्वारा उसका मन स्थिर करने के लिए उसे बहुत कुछ समझाया तथापि उसकी विषयान्धता का अनुराग जरा भी कम न हुआ । इस प्रकार हम दोनों में झगड़ा चल रहा था, इतने में ही शयन करने का समय हो जाने से आपके बड़े भाई महाराज जयचन्द्र शयन गृह के दरवाजे पर आ पहुंचे और हममें होते हुए गुप्त वार्तालाप को उन्होंने द्वार के पीछे छिप कर सुन लिया । तपस्वी का बोल सुनते ही वे तत्काल क्रोधातुर हो गये और उस तपस्वी को सिपाहियों द्वारा बंधवा लिया । प्रातः काल होते ही उसके दुष्कर्मों की वार्ता मनुष्यों में इस तरह पसर गयी जैसे पानी में तेल का बिंदु । उसके भक्तों में भी उसके प्रति तिरस्कार की भावनाएँ प्रबल हो उठीं और सब लोग उसकी निन्दा करने लगे । राजा ने उसे बुरी मृत्यु से यमराज का अतिथि बना दिया ।

मरते समय कुछ शुभ भाव के परिणाम से तथा कुछ अज्ञान तपस्या के पुण्य से वह तपस्वी मरकर राक्षस जाति के देवों में राक्षस रूप से पैदा हो गया। तपस्वी के भव में हुए अपने अपमान को याद करके राजा और प्रजा पर वैरभाव धारणकर वह वहाँ आया। ''मैं वही तपस्वी हूं जिसे राजा ने मरवा दिया था ।

मैं अपने वैर का बदला लूंगा । राजा और प्रजा को यों कहकर उसने आपके भाई को शीघ्र ही मार डाला और क्रम से प्रजा का संहार करने लगा । मृत्यु के भय से डरकर प्रजा अपनी जान बचाने के लिए जिधर को भागा गया उधर को पलायन कर गयी और बहुत से मनुष्यों को इसने जान से मार डाला । बस इसी कारण समृद्धि से परिपूर्ण भी यह शहर मनुष्यों से शून्य हो गया है । मैं भी भय के मारे भाग निकली थी परंतु उस समय मुझे इस राक्षस (ने) पकड़ लिया और मुझ से बोला कि भद्रे! तेरे लिये तो मैंने यह सब प्रयास ही किया है । अगर तूं यहां से कहीं भाग भी जायगी तो मैं फिर तुझे जहां होगी वहां से यहां ले आऊँगा । इसलिए तुझे इस राजमहल को छोड़कर कहीं भी नहीं जाना है और तुझे किसी भी तरह का भय न रखना है मैं सब तरह से तेरी रक्षा करूंगा । इस प्रकार कहकर उस राक्षस ने मुझे यहां पर रखा हुआ है । वह दिन के समय न जाने कहां चला जाता है, परंतु दीये बत्ती के समय वह रात को यहां ही आ जाता है । इस तरह मेरे दुःख में दिन व्यतीत हो रहे हैं ।

''हे पथिक! यह इतिहास सुनकर मैंने विजया रानी से कहा – कि भाभी! जो तूं इस राक्षस की कुछ भी मर्म बात बतलावे तो मैं इसे निग्रह करने का उपाय करूँ और तुझे इसके फंदे से छुड़ाकर इससे अपने भाई का बदला लूं ।

विजया ने कहा – ''जब यह राक्षस आकर सोता है तब इसके पैर के तलिये घी से मर्दन किये जायँ तो वह बहुत जल्दी अचेतन के समान देर तक महानिद्रा में पड़ा रहता है । उस समय अगर आप कुछ कर सकते हैं तो अपनी शक्ति को अजमाना चाहिए । इसके सिवा इस राक्षस को निग्रह करने का अन्य कोई उपाय नहीं है । इसमें एक यह भी बात है स्त्री के हाथ से तलिये मर्दन करने से उसे वैसी निद्रा नही आती जैसी कि पुरुष के हाथ से मसलने से आती है । परंतु चरण स्पर्श करने से पहले अगर उसे यह मालूम हो जाय कि यह पुरुष है तो वह अपना पैर भी न छूने देगा और जान से मार डालेगा ।

इस प्रकार शहर के उज्जड़ होने का कारण अपनी भाभी के मुख से सुनकर मैं किसी उत्तम साधक की खोज में फिरता था । इतने में ही अकस्मात्

आपके ही मुझे दर्शन हुए हैं । ''उत्तम पुरुष! अगर तूं मेरा सहायक बने तो मैं उस राक्षस को स्वाधीन कर सकता हूं । आपके जैसे भद्राकृति वाले पुरुष पृथ्वी पर परोपकारी ही होते हैं । सज्जन पुरुष अपना काम छोड़कर भी परकार्य करने के लिए उद्यम करते हैं । देखो यह चंद्रमा चांदनी से अपने भीतर रहे हुए मृगलांछन को दूर न करते हुए संसार भर को धवलित करता है । जगत के वृक्ष सूर्य का ताप सहनकर प्राणियों को छाया देते हैं । सूर्य परोपकारार्थ ही आकाश में पर्यटन करता है । समुद्र नाव, जहाज आदि के क्षोभ को सहन करता है । मेघ परार्थ ही वृष्टि करता है । पृथ्वी तमाम जीवों को आश्रय देती है । यह सब परोपकर के लिए ही कष्ट सहन करते हैं । नदियाँ अपने पानी को स्वयं आप नहीं पीतीं । वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते । बारिस क्या धान्य भक्षण करती है? इन सब का परिश्रम मात्र परोपकार के लिए ही है । हे नरोत्तम! मैं तेरी सहायता से अपने उज्जड़े हुए शहर को फिर से पूर्व स्थिति में बसा सकता हूं। इससे इस कार्य में कारण भूत होने से तेरा जगत में कीर्ति और यश व्याप्त होगा। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मेरे इस महान् कार्य में प्राणप्रण से सहायक बनें ।

रात्रिदेवी ने पृथ्वी पर अपनी काली चादर बिछा दी है । अंधकार ने चारों दिशाओं में अपना साम्राज्य जमा लिया है । इस समय शून्य नगर में मनुष्य तो क्या परंतु पशुओं का भी शब्द सुनायी नहीं देता । शहर के तमाम हिस्सों में सन्नाटा छा रहा है ऐसे प्रशांत समय में जयचंद्र राजा के महल में दो युवक पुरुष कुछ आवश्यक सामग्री लेकर एक गुप्त स्थान में खड़े हैं । या तो कार्य सिद्ध करेंगे या शरीर का नाश होगा बस यही भावना उन दोनों युवकों के अंतःकरण में रम रही है ।

पाठक महाशय भ्रान्ति में न पड़े, ये दोनों युवक वर्तमान परिच्छेद के नायक विजयचन्द्र और गुणवर्मा ही हैं । परोपकार करने में तत्पर वणिक – पुत्र गुणवर्मा ने विचार किया कि मेरे किये हुए उपकार से वश होकर विजयचंद्र अपने क्रोध को शांत कर मेरे पिता और चाचा को बंधन मुक्त कर देगा । क्योंकि इसी ने उन्हें स्तंभित किया है ।

अहा! पुत्र का कैसा पितृवात्सल्य! कैसी भक्ति! कैसा प्रेम! पिता को दुःख से मुक्त करने के लिए ऐसे दुष्ट राक्षस के पंजे में फसने के दुःसाध्य कार्य को भी उसने स्वीकार किया। क्योंकि इस समय राक्षस के घी से चरण तलिए मर्दन करने का भयानक काम उसने अपने जिम्मे लिया है।

विजयचंद्र ने कहा – गुण वर्मा! जब तुम राक्षस के चरण तलिए घीसे मर्दन करने का काम करोगे उस वक्त मैं स्तंभनी विद्या के एक हजार जाप द्वारा अंतर्मुहूर्त में उसे स्तंभितकर स्वाधीन कर लूंगा। इस प्रकार परस्पर संकेतकर वे दोनों युवक घोरांधकार में अपने उद्देश को सिद्ध करने की धुन में सावधान हो छिपकर खड़े हैं। ठीक इसी समय भयानक रूप में उस राक्षस ने महल में प्रवेश किया। वह आते ही बोलने लगा अरे! आज इस महल में मनुष्य की बू कहाँ से आ रही है? विजया! क्या महल में आज कोई मनुष्य आया है? तुझे मालूम हो तो बतला, मैं अभी उसको शिक्षा दूंगा।''

विजया ने कहा – ''मैं खुद ही मनुष्य हूं, आपके भय से यहां पर मनुष्य किस तरह आ सकता है? यह उत्तर सुनकर विश्वासकर वह राक्षस एक पलंग पर सो गया। उसे कुछ निद्रित होता देख विजया तत्काल वहां से उठकर एक तरफ हो गयी, उसके बदले स्त्री वेश में गुणवर्मा वहां आ उपस्थित हुआ और साहस धारणकर धीरे से राक्षस के पैर के तलिए मर्दन करने लगा इधर विजयचंद्र भी सावधान रहकर स्तंभिनी और वशकारिणी विद्या का जाप प्रारंभ कर दिया। मनुष्य गंध आने से राक्षस वारंवार पलंग से उठता है परंतु उस वक्त गुणवर्मा द्वारा चरण मर्दन की क्रिया झड़प से होने के कारण वह मूर्छित सा हो निद्रालू होकर फिर शय्या में लेट जाता है। इस तरह मंत्र जाप पूरा होने पर विजयचंद्र के इशारे से गुणवर्मा ने चरण मर्दन करने की क्रिया बंद कर दी और वे दोनों जने राक्षस के सन्मुख आ खड़े हुए। जागृत हो उन युवकों को अपने सन्मुख खड़े देख उस राक्षस ने क्रोधायमान हो उन्हें मारने के लिए उपक्रम किया। परंतु मंत्र के प्रभाव से वह उठने तक के लिए भी समर्थ न हो सका। अंत में जब उसका कुछ भी जोर न चला तब शांत होकर बोला – मंत्रबल

द्वारा मंत्रित करने से आज मैं आप लोगों का दास बन चुका हूं। इसलिए आप मुझे आज्ञा करें कि मैं आपकी क्या सेवा करूं।

राक्षस को स्वाधीन हुआ देख विजयचंद्र ने कहा - हे राक्षसेन्द्र! अबसे तूं इस नगरी के प्रति वैरभाव को छोड़ और नगर की पूर्ववत् शोभा कर तथा भंडारों को धन - धान्य से परिपूर्ण कर। विजयचंद्र के कथनानुसार राक्षस ने तमाम बातें मंजूर कर लीं और अपनी दिव्य शक्ति से उसने थोड़े ही समय में नगर की पूर्ववत् शोभा बढ़ा दी। विजयचंद्र ने तित्तर वित्तर होकर अपनी भागी हुई प्रजा को जहां तहां से पीछे बुला लिया पहले के ही मंत्री को उसने प्रधान पद समर्पित किया। प्रधान आदि राज पुरुषों और प्रजा समुदाय ने मिलकर विजयचंद्र को राज्यासन पर विराजमान किया। विजयचंद्र भी संतान की भांति प्रजा पालन करने लगा। उसने अपने प्रचंड प्रताप से और नीति निपुणता से पहले से भी अधिक अपनी राजधानी की शोभा बढ़ा दी। गुणवर्मा को अर्धासन पर बैठाकर कृतज्ञ राजा विजयचंद्र ने नम्रता से कहा - "गुणवर्मा! यह तमाम राज्य ऋद्धि तेरी सहायता से प्राप्त की है इसलिए इस राज्य में से इच्छानुसार ग्रहणकर मुझ पर किये हुए उपकार से मुझे अनुग्रहित करो।

समय देख बड़ी नम्रता के साथ गुणवर्मा ने कहा - "महाराज विजयचंद्र? मुझे राज्य या राज्य की किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, परंतु यदि आप इस उपकार का बदला देना ही चाहते हैं तो चंद्रावती नगरी में जो आप लोभाकर और लोभानंदी को स्तंभितकर आये हैं वे मेरे पुज्य पिता और चाचा है, उनका अपराध क्षमाकर उन्हें बंधन मुक्त कीजिए।"

यह बात सुनते ही विजयचंद्र आश्चर्यचकित हो गया अहा! विष वृक्ष से अमृत फल की उत्पत्ति! गुणवर्मा! क्या आप सच कहते हैं? क्या सचमुच ही वे आपके पिता और चाचा थे? ओहो! उनका ऐसा आचरण और आपका यह परोपकारी स्वभाव! अहा! परमात्मा ने कैसी विचित्र सृष्टि की रचना की है!"

गुणवर्मा ने गर्दन झुकाकर जवाब दिया हाँ, महाराज! वे मेरे पिताश्री और चाचा साहब है। महाराज! कर्मों की विचित्र गति है। आप कृपाकर उन्हें शीघ्र

ही बंधन मुक्त करें ।

विजयचंद्र – ''गुणवर्मा! क्या कहते हो! मुझ पर किये हुए आपके उपकार के सामने यह कार्य कुछ बड़ी बात नहीं । मैं इससे भी अधिक आपका कार्य करने के लिए तैयार हूं । परंतु इतनी बात है कि यह कार्य विशेषतः तुम्हारे खुद के ही स्वाधीन है । इसका कारण मैं आपको बतलाता हूं । आप सावधान होकर सुने।

''इस शहर के नजदीक जो यह एकशृंग नामक पर्वत दिखाई देता है इसकी गुफा में देवता अधिष्ठित एक सुगुप्त कूपिका है । उसका मुखद्वार नेत्र पुट के समान वारंवार विकसित होकर बंद होता है । उस कूपिका में से स्तंभित हुए मनुष्य का पुत्र पानी लेकर यदि अपने पिता पर तीन दफे छिड़के तो वह तुरंत ही बंधन मुक्त हो सकता है । परंतु यदि पानी ग्रहण करते हुए डर जाय तो पानी लेनेवाले की मृत्यु हो जाती है । गुणवर्मा! पिता को बंधन मुक्त करने के लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है ।

पितृभक्त, साहसिक, गुणवर्मा ने कहा – ''महाराजा! मैं यह काम करके भी पिता को बंधन मुक्त करूंगा आप इस कार्य में मेरी सहायता करें ।

गुणवर्मा की अलौकिक पितृभक्ति देख विजयचंद्र बहुत खुश हुआ । उपकारी पर प्रत्युपकार करने के लिए पानी ग्रहण करने की सर्व सामग्री को तैयार कर विजयचन्द्र गुणवर्मा को साथ ले उस कूपिका के पास गया । विकसित हुई उस कूपिका में पानी लेने के लिए विजय चंद्र की सहायता से मंचिका पर बैठ गुणवर्मा अंदर उतरकर निर्भयता से उसमें से जलपात्र भर गुणवर्मा ने रस्सा हिलाया, सावधान हो शीघ्रता से विजयचन्द्र ने गुणवर्मा को कूंपिका में से ऊपर खींच लिया । मंत्र प्रभाव से सेवक रूप बने हुए राक्षस ने घोड़े का रूपधारण किया । उस पर सवार होकर दोनों जने क्षणमात्र में चंद्रावती पहुंचे । देवता अधिष्ठित लाया हुआ पानी गुणवर्मा द्वारा लोभाकर पर तीन वक्त छिड़कने से वह बंधन मुक्त हो गया । परंतु लोभानंदी अपुत्रीय होने के कारण पूर्ववत् ही दुःखित रहा । क्योंकि उस मंत्र के कल्प के अनुसार अपने पुत्र के सिवा अन्य किसी से उनका दुःख दूर होना असंभव था ।

अपने परम उपकारी और मित्र गुणवर्मा को विजयचंद्र ने प्रधान पद की मुद्रा और कुछ देश आदि देने के लिए अति आग्रह किया तथापि निर्लोभी गुणवर्मा ने उसका बिलकुल स्वीकार न किया । बल्कि उल्टा विजयचंद्र का विशेष सत्कार करके उसके रस का तूंबा उसे वापिस दिया। कृतज्ञ विजयचन्द्र ने वह रस का तूंबा अति आग्रहपूर्वक गुणवर्मा को ही वापिस दे दिया । गुणवर्मा ने भी विजयचंद्र के विशेष आग्रह से उस रसायन रस को ग्रहण किया । इस प्रकार उन दोनों की मित्रता में अधिक वृद्धि हुई । यद्यपि ऐसे परोपकारी नररत्न और मित्र का वियोग सहन करना दुःसह्य था । तथापि राज्यादि कार्य भार की चिन्ता से विजयचंद्र को वापिस स्वदेश जाना पड़ा।

महाराज वीरधवल कहते हैं ''देवी! यह वृत्तान्त अभी थोड़ी देर पहले स्वयं गुणवर्मा ने मेरे पास आकर मुझे सुनाया है । मेरे राज्य में उसके पिता और चाचा ने किये हुए विश्वासघात के महान् अपराध की उसने वारंवार क्षमा याचना की, गुणवर्मा की पितृभक्ति, परोपकारता, निर्लोभता, उदारता, निड़रता और गंभीरतादि गुणों से मुझे बड़ा संतोष हुआ, इस कारण उसके पिता और चाचा के किये हुए अपराध को मैंने क्षमा कर दिया । अभी कुछ देर पहले ही गुणवर्मा मुझसे मिलकर अपने घर गया है । प्रिये! जब से मैंने गुणवर्मा और विजयचंद्र का इतिहास सुना है तब से मेरे मन में अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प पैदा हो रहे हैं । मेरी शांत वृत्तियाँ अशांत हो उठी है और मुझे बिलकुल चैन नहीं पड़ती । प्यारी! अब तुम मेरी चिंता का कारण भली प्रकार समझ गयी होंगी । शूरचन्द्र राजा के पुत्र विजयचन्द्र ने अपने गये हुए राज्य को फिर से प्राप्त किया और भाई के दुश्मन से बदला लिया । गुणवर्मा ने मृत्यु के समान आपत्ति को स्वीकारकर संकटरूपी समुद्र में डूबते हुए पिता का उद्धार किया ।

''प्रिय देवी! जिनके पुत्र हैं, वे मनुष्य धन्य हैं । अभी तक हमारे घर एक भी पुत्र – पुत्री का जन्म नहीं हुआ; यह मेरी चिंता का मूल कारण है । प्रिय कोमलांगी! मेरे बाद मेरे कुल में देवगुरु की पूजा कौन करेगा? धर्मस्थानों का उद्धार कौन करेगा? और कौन मेरे वंश को धारण करेगा? प्रिय सुलोचने! मेरे से ही मेरे पूर्वजों के वंश – वृक्ष का उच्छेद होगा । यही चिंताग्नि मेरे हृदय मंदिर

में प्रज्वलित हो रही है । बस इसके सिवा मेरे इस महान् शोक का और कोई कारण नहीं ।

पति के दुःख से दुःखित हुई चंपकमाला ने नम्रतापूर्वक मीठे वचन से कहा - "प्राणनाथ! यह दुःसह्य दुःख आपको और मुझे समान ही है । किसी - किसी भाग्यवान मनुष्यों की गोद में उत्तम बालक सोते हैं, क्रीड़ा करते हैं, मुग्धवचन बोलते हैं और कदम - कदम पर स्खलना पाते हुए माता पिता से आ चिपटते हैं । सचमुच संसार में वे ही मनुष्य धन्य हैं, जिनके घर में पैरों में घुंगरुओं के रणझणाट करते हुए दो - चार बच्चे क्रीड़ा करते हों उनके जन्मकृतार्थ हैं । *जिन्होंने सद्गुणसंपन्नकुलदीपक उत्तम पुत्रों को जन्म दिया है,* उनको धन्य है । इस प्रकार बोलते हुए अपत्यमोह से मोहित होने के कारण रानी का हृदय गद्गद् हो गया और उसके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी । परंतु कार्यकारण भाव को समझने वाली रानी चंपकमाला थोड़े ही समय में मेरे दुःख से महाराज अधिक दुःखित न हो जाय वह समझकर सावधान हो गयी और स्वयं धीरज धारणकर संतान के मोह में विशेष मोहित हुए पति को धीरज देने लगी ।

प्रिय देव! पुत्रादि संतति पुण्य के प्रभाव से मिल सकती है, मात्र मनोरथ करके बैठे रहने से और पुण्य कार्य में उद्यम न करने से क्या कभी कार्य की सिद्धि हो सकती है? इसलिए हमें आज से ही पुण्यवृद्धि करने का प्रयत्न करना चाहिए । जो कार्य सत्ता या धन से सिद्ध नहीं हो सकता उस कार्य के लिए चतुर मनुष्यों को सोच नहीं करना चाहिए । परंतु उस कार्यसिद्धि में रुकावट करनेवाले विघ्नों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए । इसलिए हे प्राणेश्वर! चिंता का परित्याग करो । चिंता से विक्षिप्त चित्तवाला मनुष्य अपने इच्छित कार्य में सफलता नहीं पा सकता । हे प्राणवल्लभ! मुझे इस समय एक उपाय सूझता है और वह यह है पुत्र प्राप्ति के लिए हम दोनों को किसी देव की आराधना करनी चाहिए ।

महारानी चंपकमाला के समयसूचक, धैर्य गर्भित वचनों से महाराज

वीरधवल को अतिहर्ष पैदा हुआ । अतः वे प्रसन्न होकर बोले - प्यारी - चंपकमाला! तुम्हारे समान ही उत्तम सहचारिणी पति के दुःख में हिस्सा लेनेवाली और ऐसे समय धीरज देनेवाली पतिसुखपरायणता सती स्त्रियाँ होती हैं । इस बात का मुझे पूर्ण विश्वास है । प्रिये! तुम्हारे जैसी सद्गुणसंपन्ना और श्रेष्ठ बुद्धि देनेवाली पत्नी को पाकर मैं आज अपने आपको कृतार्थ समझता हूं ।

प्यारी मृगाक्षी! आज तुमने पुत्रप्राप्ति के लिए जो पुण्यवृद्धि करने का उत्तम रास्ता बतलाया है, वह सचमुच ही प्रशंसनीय है । कारण बिना कार्य की निष्पत्ति नहीं होती । संसार के तमाम प्रसंगों में इस बात का अनुभव होता है, तब फिर यह भी एक सांसारिक ही प्रसंग है । इसलिए पुण्योपार्जन करने की मुख्य आवश्यकता है । पुण्योपार्जन के निमित्त उत्तम ज्ञानवानों को, संसार से विरक्त, त्यागी आत्माओं को एवं दुःखी जीवों को, उनकी आवश्यकतानुसार दान देना, मन, वचन और शरीर की शुद्धिपूर्वक शील पालन करना, देवपूजन करना, जाप करना, तपश्चरण करना इत्यादि महापुरुषों के बतलाये हुए उपायों का सेवन करना चाहिए । अतः प्रियदेवी! पुण्योपार्जन के वास्ते हमें अभी से सावधान होना चाहिए । पुण्य की प्रबलता से एवं देवाराधन करने से अंतरायकर्म दूर होने पर हमें संतान की प्राप्ति होगी इस बात पर मुझे संशय रहित विश्वास है । तो फिर प्यारी! हमें किस देव की आराधना करनी होगी?

रानी चंपकमाला - ''प्राणवल्लभ! आपने यह प्रश्न क्यों किया? देवाधिदेव परमपूज्य ऋषभदेव प्रभु हमारे इष्ट देव हैं हीं क्या उन्हें आप नहीं जानते?

महाराज वीरधवल - ''प्राणप्यारी! मैं अपने परम पूज्य देवाधिदेव ऋषभ प्रभु को भली भाँति जानता हूं तथापि वे लोकोत्तर देव होने से वीतराग देव हैं । ***सांसारिक कार्य के निमित्त लोकोत्तर देव की आराधना करने से सम्यक्त्व में मलीनता आती है ।*** यह बात हमने पहले सद्गुरु के मुख से सुनी थी तथा ***वे रागद्वेष रहित होने के कारण हमें संतति सुख किस तरह देंगे?*** इसी कारण मैंने

यह प्रश्न किया है ।

चंपकमाला – ''स्वामिन्! आपकी यह शंका योग्य ही है, तथापि संतति प्राप्ति के निमित्त *अन्तराय कर्म को क्षय करने के लिए देव की आराधना की जाय तो मिथ्यात्व प्राप्ति का या सम्यक्त्व दूषित होने का संभव नहीं ।* प्रिय देव, वीतराग देव संतति सुख किस तरह दे सकते हैं, इस बात का निराकरण मैंने गुरु महाराज के मुख से सुना हुआ है कि प्रत्यक्ष वीतराग देव कुछ नहीं देते, तथापि *जो वस्तु मिलती है वह पुण्योदय या अंतराय कर्म के क्षय होने से प्राप्त होती है यह पुण्योदय करने या अंतरायकर्म को क्षय करने में जिनेन्द्र देव का पूजन, स्मरण या आराधना कारण रूप है।*

रानी चंपकमाला के पूर्वोक्त गंभीर और सारगर्भित वाक्य सुनकर महाराज वीरधवल बहुत ही खुश हुए । रानी की बुद्धिमत्ता देखकर उनके अंतः करण में उसके प्रति और भी अधिक प्रेम और सन्मान ने स्थान प्राप्त किया । उन्होंने उसी दिन से जिनेन्द्र देव की आराधना करनी शुरू कर दी । अब वे अपना समय सुख से व्यतीत करने लगे ।

◆ *हर आत्मा स्व दया, पर दया, द्रव्य दया, भाव दया आदि के भेदों को सुगुरु/गीतार्थ गुरु भगवंतों से समझकर वर्तन करे, तब आत्महित होगा ।*

◆ *धर्मकथानुयोग आ-बालवृद्ध सभी के लिए अत्यंत उपयोगी साधन है । जो आत्मा इन कथाओं को पढ़कर अपनी ओर लक्ष्य देता है और आत्म निरीक्षण करता है तो अवश्य आत्मा के ज्ञान – दर्शन गुण को प्रकट करता है।*

– जयानंद

दुःख की पराकाष्ठा

शयनागार में महाराज वीरधवल और महारानी चंपक माला सुखपूर्वक बैठे आपस में विनोद से बातचीत कर रहे थे । इतने ही में अकस्मात् दीन मुख करके रानी चंपक माला बोल उठी महाराज! आज मेरा दाहिना नेत्र फड़क रहा है । न मालूम इस अमंगल निमित्त से मुझे क्या कष्ट पड़ेगा । क्या मुझ पर बिजली पड़ेगी? क्या मेरा सर्वस्व लुट जायगा? या कोई भयंकर बिमारी आयगी? मुझे इस समय न जाने क्या हो गया? हृदय बिल्कुल अशांत है ।

महाराज वीरधवल बोले - प्यारी! स्त्रियों का दाहिना नेत्र फड़कना अमंगल सूचक माना गया है । तथापि तुम बिलकुल निर्भय रहो । किसी प्रकार के अमंगल की शंका मत करो । जिस तरह सूर्य के उदय में अंधकार नहीं आ सकता उसी प्रकार तेरे साथ ही मुझे भी अग्नि का शरण होगा, इत्यादि शब्दों से महारानी को धीरज देकर महाराज वीरधवल राजसभा में जाकर राज्यकार्य में प्रवृत्त हो गये ।

इधर ज्यों ज्यों रानी का दाहिना नेत्र विशेष फड़कने लगा त्यों त्यों उसे महल में, उद्यान में और बगीचे में कहीं पर भी शांति न मिली । वह उदासीन वृत्ति से मध्याह्न समय महल में अपने पलंग पर लेट गयी और धीरे धीरे निद्रा देवी के आधीन हो गयी ।

थोड़ी देर के बाद दासी वेगवती हाथों से मस्तक पीटती हुई, कदम कदम पर स्खलना प्राप्त करती और आँसुओं से हृदय को भिगोती हुई राजसभा में आयी और हाथ जोड़कर कहने लगी - "महाराज! महारानी चंपक माला को...." यह अर्ध वाक्य सुनते ही शोकार्त दासी को देखकर भयभ्रांत के समान महाराज वीरधवल सहसा बोल उठे - हा - देवी! दैववशात् क्या तुझे अमंगल हुआ? क्या तेरा फड़कता हुआ दाहिना नेत्र सचमुच ही सफल हुआ? अरे वेगवती जल्दी बोल! रानी चंपक माला को क्या हुआ? मेरा स्नेही हृदय विलम्ब नहीं सहन कर सकता।

रूद्ध कंठवाली वेगवती ने रूदन करते हुए जवाब दिया – ''हे धीर वीर शिरोमणि! महाराज! यह समाचार सुनने के लिए अपने कान और हृदय को वज्र समान कठिन कर लो। महारानी का जब दाहिना नेत्र विशेष फड़कने लगा तब उसे महल में बिल्कुल शांति न मिली, इससे हम सब शहर के बाहर उद्यान में गये, परंतु बाग बगीचे वगैरह विश्रान्ति के अनेक स्थानों में फिरते हुए भी महारानी के चित्त को चैन न पड़ा, तब फिर हम सब वापिस महल में आयी महारानी शयनगृह में जाकर पलंग पर सो गयी और मुझे उन्होंने बगीचे से पुष्प और पत्ते लाने के लिए भेज दिया। महारानी को निद्राधीन हुई देखकर तमाम परिवार खाने पीने आदि के कार्य में लग गया। मैं थोड़े ही समय में बगीचे से उनके उपयोगी पत्ते और पुष्प लेकर वापिस आयी। शयन गृह में जाकर देखा तो महारानी के प्राण रोग या विषप्रयोग या अन्य किसी महान् दुःख से गये हैं! हलाहल जहर के समान दासी के मुख से पूर्वोक्त अमंगल वचन सुनते ही राजा वीरधवल सहसा मूर्च्छित हो जमीन पर गिर पड़े। पास में रहे हुए मंत्रीमंडल द्वारा शीतल वायु और द्रवित चंदन के सिंचन करने से कुछ देर बाद महाराज होश में आये। जागृत अवस्था में आते ही महाराज वीरधवल रानी के वियोग से व्याकुल हो निम्न प्रकार विलाप करने लगे।

''अरे निर्दय दैव! तूंने मुझे प्रथम क्यों न मार डाला, जिससे रानी के अमंगल की बात मुझे अपने कानों से सुनने का प्रसंग न आता। अरे दुर्दैव! तूंने छिपकली की पूंछ के समान तड़फती हुई मेरी अर्धआत्मा को छेदन कर डाला! हे दक्षदेवी! दाहिना नेत्र फड़कने के बहाने से तूंने अपना मृत्यु प्रथम ही बतलाया था तथापि मैं तेरा रक्षण न कर सका! तेरे सिर पर आनेवाली विपत्ति को जानते हुए भी मैं उसका प्रतिकार न कर सका इसलिए मैं महा अज्ञानी बुद्धिहीन और घोर पापी हूं। अगर ऐसा न होता तो मैं तेरी बात पर विश्वास रखकर प्रथम से ही तेरे रक्षण का कुछ उपाय अवश्य करता। इस प्रकार अपने आपकी निन्दा करते हुए और नेत्रजल से जमीन को सिंचन करते हुए राजा ने तमाम राजपरिवार को रुलाया। इस समय राजा वीरधवल की शोकातुर अवस्था में रानी के वियोग से पागल की तरह हालत हो गयी। राजा की यह स्थिति

देखकर स्वामी के दुःख से दुःखित हुआ मंत्रीमंडल गद् – गद् कंठ से हाथ जोड़ राजा को विनति करने लगा । ''महाराज धैर्य धारण करो और शीघ्र ही महल में चलकर महारानी को देखो कि उसके शरीर की अवस्था कैसी है । जहर के प्रयोग से भी मनुष्य श्वासोच्छ्वास रहित हो जाता है, क्योंकि उसके प्राण, दिमाग या नाभी में संस्थित हो जाते हैं । उन्हें चलकर देखना चाहिए कि रानी की ऐसी ही हालत तो नहीं हो गयी है । मंत्रीमंडल की प्रेरणा से कदम कदम पर स्खलना प्राप्त करता हुआ राजा रानी के महल में आया । वहाँ आकर देखा तो सचमुच ही पाषाण मूर्तिवत् रानी का निश्चेष्ट कलेवर पड़ा है । रानी को ऐसी स्थिति में देखते ही उस पर अति रागवान् राजा नेत्राश्रुपूर्ण होकर मूर्च्छित हो जमीन पर गिर पड़ा । ठंडे पानी के प्रयोग से कुछ देर बाद नेत्र खोलकर राजा बैठा हुआ । परंतु सामने ही रानी की वैसी अवस्था देख फिर मूर्च्छित हो गया । इस तरह बार – बार मूर्छा से उठना और फिर मूर्छित हो जाना, राजा ऐसी भयंकर अवस्था का अनुभव करने लगा । राजकुल के मनुष्यों ने रानी के तमाम शरीर को अच्छी तरह देखा परंतु उसके शरीर में कही पर भी सर्प आदि जहरी जानवर का डंस मालूम न दिया और न ही कोई विषप्रयोग जानने में आया ।

मित्रों! रानी का सारा शरीर सर्वथा अक्षत है, जहर का प्रयोग भी मालूम नहीं होता तो क्या रानी के प्राण किसी हृदय दुःख से या किसी दुष्ट देव के कोप से निकल गये होंगे? अगर ऐसा न हो तो तमाम शरीर सर्वथा अक्षत न होना चाहिए । रानी के मोह से मोहित होकर महाराज अवश्य मृत्यु प्राप्त करेंगे और राजा की मृत्यु से इस राज्य का सर्वनाश हो जायगा क्योंकि राज्य की धुराधारण करनेवाला एक भी राजकुमार नहीं है ।

सुबुद्धि नामक प्रधान मंत्री ने अपने आश्रित राज्यकर्मचारीयों के समक्ष पूर्वोक्त कथन कर सेनापति से कहा इसी वक्त हमें किसी भी प्रयोग से महाराज की ऐसी स्थिति में उन्हें धैर्य दिलाने के लिए समय व्यतीत करना चाहिए क्योंकि समय व्यतीत होने से हमें राजा को बचा लेने का कोई भी उपाय मिल जायगा। सेनापति बोला – '' महानुभाव! ऐसी हालत में किस तरह समय व्यतीत किया जाय? सुबुद्धि बोला – ''राजा से हमें कहना चाहिए कि रानी को जहर चढ़ गया

है और वह अभी जीवित है, उसके प्राण नाभी में संस्थित है । इसलिए मणिमंत्र औषधादि के द्वारा उसके जहर उतारने का प्रयोग करना चाहिए । इस विचार से सबकी सम्मति मिलने से प्रधान मंत्री राजा के पास आकर बोला - महाराज! महारानी अभी जीवित है । उसे जहर चढ़ा हुआ है उसके प्राण नाभी में रहे हुए हैं ।

यह वाक्य सुनते ही राजा मानों अमृत से सिंचन किया गया हो वैसे उश्वास प्राप्तकर निन्द्रा से जागृत होकर बोला - ''अरे सेवको! जल्दी दौड़ो; विष उतारने वाले मनुष्यों को और भंडार में से जड़ी बूंटी लाओ! विष दूर करने वाले मणि लाओ । शहर में जितने मंत्रवादी हों उन सबको बुलाओ और रानी को जल्दी विष रहित करो ।

राजाज्ञा मिलते ही जड़ी बूटी, मणि और मंत्रवादी तमाम सामग्री उपस्थित हो गयी । प्रधानमंत्री की आज्ञानुसार रानी को एकान्त में स्थापन कर शीघ्र ही मंत्र वादियों ने मंत्र प्रयोग प्रारंभ किये । अब राजा विचार करता है रानी अब श्वास लेगी, उसकी अभी आंखें खुलेगी; वह अभी करवट बदलेगी, वह अभी बैठी होकर मुझ से बात करेगी । इस प्रकार मोह से व्याकुल राजा को विचार करते हुए आधा दिन और कुछ कष्ट से सारी रात व्यतीत हो गयी । बुद्धिमान् मंत्रीमण्डल ने अपनी बुद्धि के प्रयोग से इतना समय तो व्यतीत करा दिया, परंतु रानी के शरीर पर किये हुए प्रयोगों की कुछ भी असर नहीं हुई । प्रातःकाल होने पर तमाम मंत्रीमंडल निरुपाय हो विचार करने लगा, अब हम राजा को किस प्रकार मृत्यु से बचा सकते हैं! रानी के स्नेहबन्धन में बंधा हुआ राजा अवश्य ही अपने प्राण खोयेगा । सच्चा प्रेम करनेवालों के लिए प्रेमी का सदा के लिए वियोग होने पर मृत्यु के सिवा अन्य कोई उपाय नहीं । हा! हा! राजा की मृत्यु से यह राज्य, राष्ट्र, कोष, चार प्रकार की सेना तमाम प्रजा और हम अनाथ हो जायेंगे! इस चिंता समुद्र में डूबे हुए राज्य के तमाम प्रधान पुरुष राजा के प्राण बचाने में निरुपाय हो गये ।

पूर्ववत् अपनी वल्लभा को चेष्टा रहित देखकर राजा का फिर से हृदय

भर आया और वह गद्‌गद् स्वर से विलाप करने लगा । 'हे देवी! तुझे सचेतन करने के ये तमाम प्रयोग निष्फल हो गये । अब तूं किस उपाय से जीवित होगी! हे प्रिये! इतने समय से इतने सारे उपाय करने पर भी तूं क्यों नहीं बोलती! मैं तो समझता हूँ कि तूं मुझे यहां अकेला छोड़ परलोक चली गयी है । प्यारी! तेरे बिना यहां पर मेरी एक घड़ी एक महीने के समान बीत रही है और दिन वर्ष के समान मालूम हो रहा है, तब फिर मेरा शेष आयुष्य किस तरह व्यतीत होगा! हे मृगाक्षी! मेरी शक्ति धिक्कार के पात्र है, क्योंकि तुझ पर आनेवाली इस घोर आपत्ति का पता लगने पर भी मैं तेरे रक्षण के लिए कुछ भी न कर सका । प्यारी! तूं कहां चली गयी? एक दफे आकर तूं मुझे अपना स्थान तो बता जा, जिससे मैं तेरा मुखकमल देखकर सुखी बनूं । इस तरह विलाप करते हुए दुःखित राजा को फिर से पूर्ववत् मूर्छा आ गयी । शीतोपचार करने से जागृति में आया हुआ राजा मंत्रियों से बोला –

'हे मंत्रिवरो! आप लोग सावधान होकर मेरी बात सुनो । इतना लंबा समय बीतने पर भी आप लोग रानी को जीवित नहीं कर सके । मैंने रानी के साथ ही मरना निश्चित किया है । रानी के वियोग में मेरे प्राण देह धारण करने के लिए सर्वथा असमर्थ हैं । मंत्रीश्वरो! अब विलंब न करो, गोला नदी के किनारे पर काष्ठ की एक चिता जल्दी तैयार करो कि जिससे रानी के वियोग में दग्ध हुई अपनी आत्मा को चिता में प्रवेश करके शांति दूं ।

आँसुओं से पृथ्वी को भिगोते हुए मंत्री लोग बोले ''हा, हा! महाराज! आज हम सबके सब जीते हुए भी मृतक समान हो रहे हैं । सूर्य अस्त होने पर क्या कभी कमलाकर विकसित रह सकते हैं? पिता के मरने पर निराधार बच्चों की क्या दशा होगी? पानी बिना ज्यों मछलियाँ तड़फ तड़फकर प्राण खोती है, वैसे ही हे नाथ! आपके बिना पुण्य रहित अनाथ के समान हमारी *क्या दशा होगी? कृपालू? हम पर प्रसन्न होकर आप इस मोह को कम करो* और अपने किये हुए निश्चय को स्थगित करो । अर्थात् मरने का विचार छोड़कर चिरकाल तक राज्य पालन करो । आपके बाद शत्रु लोग इस राज्य को

ग्रहण कर लेंगे । प्रजा निराधार होकर संकट में पड़ जायगी । महाराज! विचार करो, आप जैसे वीर पुरुष भी यदि धैर्य का त्याग करेंगे तो निराधार होकर धैर्यता किसका आश्रय लेगी । आप यह भली प्रकार जानते हैं कि रानी के प्राण रहित होने में कर्म ही कारण भूत है । इससे संसार की असारता प्रकटतया मालूम होती है, संसार की कोई भी वस्तु चिरकाल तक एक ही स्वरूप में नहीं रह सकती। इसलिए महापुरुषों का कथन है –

राजनः खेचरेन्द्राश्च केशवाश्चक्रवर्तिनः ।
देवेन्द्रावीतरागाश्च, मुच्यते नैव कर्मणा ।।

राजा, विद्याधर, वासुदेव, चक्रवर्ती, देवेन्द्र और वीतरागों को भी कर्म नहीं छोड़ता । अहा! ऐसे सामर्थ्य वाले महापुरुषों को भी किये हुए कर्म का फल भोगना पड़ता है, तब फिर अन्य पुरुषों की बात ही क्या! महाराज! आप स्वयं इस कर्म के सिद्धान्त को जानते हैं, तथापि इस प्रकार पतंग के समान अज्ञान मृत्यु से मरना यह आप जैसे विवेकी पुरुषों के लिए योग्य नहीं है ।

मंत्री के वचन सुनकर शोक से कुंठित और विचार शून्य हृदयवान् राजा ने उत्तर दिया –"मेरे हितेच्छु मंत्रीश्वरो! आप मुझे जो बोध दे रहे हैं, कर्म की परिणति, संसार की असारता और अनित्यता जानते हो यह सब कुछ मैं जानता हूँ, परंतु मोह की दशा विचित्र है । रानी के मोह से मोहित आत्मा मैं इस समय युक्तायुक्त कुछ भी नहीं विचार सकता । तथा जब रानी का दाहिना नेत्र फड़क रहा था और उसने मुझे अपने भावी अनिष्ट की सूचना दी थी तब मैंने उसके साथ ही अग्निशरण होने का उसे वचन दिया है । अपने मुख से बोला हुआ सुलभ कार्य भी अगर मुझसे न हो सके तो असत्यवादी मनुष्यों की श्रेणि में मेरा सबसे पहला नाम होगा । तुम्हें मालूम होगा कि जन्म से लेकर आज तक मेरा कोई भी वचन कभी अन्यथा नहीं हुआ । अगर इस समय मैं अपने वचन के अनुसार रानी के सात अग्निशरण होकर न मरूँ तो मेरा सत्यव्रत किस तरह रह सकता है? इसलिए प्यारे मंत्रीवरो! मेरे और रानी के शव के लिए एक बड़ी

चिता तैयार कराओ, कि जिसमें मैं तमाम दुःखों को भस्मीभूत करूँ । महाराजा को अनेक प्रकार से समझाया गया परंतु वह अपने मरण के निश्चय से जरा भी शिथिल न हुआ, तब तमाम मंत्री मंडल मौन धारण कर उदासीनता से एक तरफ खड़ा रहा । महाराज फिर से बोले – ''मंत्रिश्वरो! उदास होकर क्यों खड़े हो? तुम भी इस प्रकार निष्ठुर क्यों बनते हो? मैं कदापि जीवित न रहूंगा । समय बिताकर मुझे विशेष कष्ट क्यों पहुँचाते हो? राजा के यह वचन सुनकर कुछ भी उत्तर न देते हुए सारा ही मंत्री मंडल जमीन पर दृष्टि लगाये नतमस्तक होकर ज्यों का त्यों खड़ा रहा ।

चिता तैयार कराने के लिए मंत्रीमंडल की उपेक्षा देख राजा ने अपने दूसरे मनुष्यों को उस कार्य करने की प्रेरणा की । उन मनुष्यों ने निरुपाय होकर रानी के मृतक शरीर को स्नान कराकर, पुष्पादिक से अर्चनकर शिबिका में स्थापन किया । तमाम परिवार सहित राजा उस शिबिका के साथ राज महल को सूना छोड़ गोलानदी की तरफ चल पड़ा ।

यह घटना शहर में चारों तरफ बड़ी शीघ्रता से पसर गयी । रानी के विरह दुःख से दुःखित हो आज महाराज वीरधवल अग्नि में प्रवेशकर मरने के लिए जा रहे हैं । यह समाचार सुनते ही नगर के अबालवृद्ध तमाम मनुष्य हर एक जगह करुण स्वर से विलाप करने लगे । उस दिन नगर के तमाम मनुष्यों ने अन्न तो क्या किन्तु जलपान तक भी न किया । तमाम शहर में इस दुर्घटित घटना के समाचार से शोक की घनघटा छा गयी । नगर निवासी राजा के शोक से श्याम मुख वाले देख पड़ते थे । किसी भी मनुष्य के चेहरे पर प्रसन्नता दिख नहीं रही थी । उस रोज सर्वस्व खो गये हुए मनुष्य के समान सारे शहर के मनुष्य शून्य हृदयवाले मालूम होते थे । निरुपाय बने हुए मंत्रीमंडल के शोक का कुछ पार ही न था । ज्यादा क्या लिखें उस दिन राजकुल के सहित तमाम स्त्रीपुरुषों में दुर्दिन के समान उदासीनता ने भयंकर रूप धारण किया था ।

नगर के बड़े से बड़े प्रजाजनों ने महाराज के चरणों में पड़कर उन्हें अपने निश्चय से पीछे हटने की प्रार्थना की । परंतु उन्होंने किसी की प्रार्थना पर लक्ष्य

न दिया । मंत्रीमंडल और प्रजाजन के रुदन करते हुए रानी की शिबिका के साथ महाराज वीरधवल अपने निश्चय को पूरा करने के लिए गोला नदी के किनारे आ पहुंचे ।

रानी के शव की पालकी एक तरह रखकर उन मनुष्यों ने चिता की लकड़ियों को ठीक करना शुरू किया । इधर राजा ने स्नान करने के लिए गोला नदी में प्रवेश किया । इस समय राजा के चेहरे पर पूर्ण उत्साह और उत्सुकता दिख पड़ती थी । वे मन में विचार कर रहे थे । चिता जल्दी जल उठे तो मैं स्नानकर शीघ्र ही उसमें प्रवेश करूंगा । इन्हीं विचारों के दरम्यान स्नानकर राजा बाहर आया । ठीक इसी समय गोला नदी के प्रवाह में बहता हुआ एक बड़ा भारी सूखा हुआ काष्ठस्तंभ आ रहा था । उस सूखे हुए काष्ठस्तंभ को उन्होंने बाहर निकाल लिया । किनारे पर लाये हुए उस काष्ठस्तंभ जो बहुत से मजबूत बंधनों से चारों तरफ से बंधा हुआ था उसको देखने के लिए महाराज वीरधवल भी उसके समीप आये ।

◆ *पथ का पथिक पथ भूलकर परिभ्रमण कर रहा हो, भयानक वन में/अरण्य में, चोरों ने लूट लिया हो,नंगे बदन हो,क्षुधा-प्यास से व्याकुल हो, ऐसे समय में उसे देवी भोजन, शीतल जल एवं वस्त्राभरण की प्राप्ति भाग्य योग से हो जाय तो उसे कितनी आनंदाभूति होगी । उससे कई गुना अधिक जिन बिंब एवं जिनागम की प्राप्ति से जिन आत्माओं को आनंदानुभूति होती हो, वे ही आत्माएँ सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ सकते हैं ।* *-जयानंद*

शोक में हर्ष

इस काष्ठ को चारों तरफ से इस प्रकार मजबूत जकड़कर बांधने का क्या कारण होगा? क्या यह अंदर से थोता तो नहीं होगा? इसे गोला नदी में किसने बहा दिया होगा? क्या इतना बड़ा काष्ठस्तंभ अपने आप ही बह आया होगा? इत्यादि अनेक प्रकार के मनोगत तर्क वितर्क करते हुए राजा वीरधवल ने अपने सेवकों को उसके बंधन तोड़ डालने का हुक्म दिया। बंधन तोड़ते ही उस काष्ठ के सीप संपुट के समान दो भाग मालूम हुए। ऊपरी भाग दूर करने पर उसके बीच में रही हुई अर्द्धजागृत अवस्था में रानी चंपकमाला सब लोगों को अकस्मात् प्रत्यक्ष देखने में आयी। उसके शरीर पर चंदन विलेपन का परिमल महक रहा था। उसके कंठ में सच्चे मोतियों का अमूल्य और सुंदर हार शोभ रहा था और नेत्रों में निद्रा छायी हुई थी।

अकस्मात् उस काष्ठ विवर के अंदर निद्रालु अवस्था में महारानी चंपकमाला को देख महाराज वीरधवल और तमाम प्रधान पुरुषों के मुख से एकदम हर्षध्वनि हो उठी। अहा! रानी चंपकमाला यहां! क्या देख रहे हैं? सबके चेहेरे विकसित हो उठे। और वहाँ पर रहे हुए तमाम स्त्री-पुरुषों में जो शोक की प्रचंड घटा छायी हुई थी, वह नष्ट होकर हर्ष और आनंद का प्रचंड भानु प्रकाशित हो उठा। इस हर्ष के साथ ही महाराज वीरधल विचार में पड़े कि जिस रानी के मृतक को शिविका में डालकर यहां लाये हैं, वह असली रानी है या यह? या मैं यह स्वप्न देख रहा हूं' अथवा वही जीवित रानी डर के कारण इस काष्ठ विवर में आ घुसी है? परंतु यह तमाम बातें असंभव सी प्रतीत होती हैं। इसमें वास्तविक सत्य क्या है यह जानने के लिए महाराज वीरधवल ने तुरंत ही अपने सेवकों को आज्ञा दी कि जल्दी शिबिका को देखो उसमें रानी का मृतक है या नहीं? राजा का हुक्म पाते ही राजपुरुष शिविका देखने के लिए दौड़े। इतने ही में शिबिका में रहा हुआ शव हाथ से हाथ मसलता हुआ, दांतों से दांत पीसता हुआ, 'अरे! मैं ठगा गया' इस प्रकार शब्द बोलता हुआ तमाम जनता के प्रत्यक्ष देखते हुए आकाश में उड़ गया।

यह घटना देखते ही तमाम लोग भयभीत हो कांपने लगे विस्मय और आनंद से पूर्ण हृदय वाला राजा जनता को आश्वासन देते हुए बोला - ''सज्जनो! इस वृत्तान्त के वास्तविक रहस्य को हमारे अंदर से कोई भी नहीं जानता, परंतु काष्ठस्तंभ में रही हुई रानी शायद इस रहस्य को प्रकट करेगी । यों कहकर उन्होंने रानी की तरफ देख यह प्रश्न किया । प्रिये! यह क्या घटना है? क्या इस रहस्य को बताकर तुम हम सबकी शंका दूर करोगी?

राजा के पूर्वोक्त वचन कान में पड़ते ही रानी चंपकमाला अर्धनिद्रा में से जागृत हो महाराज को अपने सन्मुख खड़ा देख उनके मुखमंडल की तरफ एक टक देखने लगी । नजर से नजर मिलते ही रानी के नेत्रों से अश्रु की धारा बहने लगी । इस समय दोनों दंपती को जो आनंद प्राप्त हुआ वह अकथनीय था । कुछ देर तक निर्निमेष दृष्टि से देखकर हर्ष के आंसुओं से विरह की अग्नि को बुझाते हुए रानी स्वयं राजा से पूछने लगी । स्वामिन्! आज इस नदी के किनारे पर आप किसलिए पधारे हैं? पानी टपकते हुए ये भीगे वस्त्र आपने क्यों पहने हैं? ये तमाम लोग यहां पर किस लिये इकट्ठे हुए हैं? वह सामने चिता किसके लिए बनायी गयी है? यह मृतक को उठानेवाली शिविका देख पड़ती है, क्या कोई मनुष्य मर गया है?

राजा अधीर होकर बोला - ''देवी! तुम्हारे पूछे हुए तमाम प्रश्नों का मैं बाद में उत्तर दूंगा। पहले तुम मुझे अपना संपूर्ण वृत्तान्त सुनाओ । तुम कहाँ चली गयी थीं । इतने समय तक कहां रही? घूण के समान इस काष्ठस्तंभ में किस तरह घुसी? यह कंठ में रहा हुआ हार तुम्हें किसने दिया! और इस नदी के प्रवाह में किस तरह बह आयी? यह सब वृत्तान्त सुनाकर हमारी उत्सुकता को दूर करो ।

रानी ने मधुस्वर से कहा - 'अगर आपको प्रथम मेरा ही वृत्तान्त सुनना है तो उस नजदिक वाले बड़ के वृक्ष की शीतल छाया में चलो । वहां जरा विश्रांति लेकर मैं शांत चित से इस घटना का सर्व वृत्तान्त सुनाऊँगी । रानी के इस उत्तर से वहां रही हुई तमाम जनता को बड़ा हर्ष हुआ और राजा रानी सहित

सब लोग नजदीक में रहे हुए उस वट वृक्ष की छाया में यथोचित स्थान पर जा बैठे तथा इस दुर्घटना का वृत्तान्त सुनने के लिए उत्सुक हो रानी के मुखमंडल की और देखने लगे ।

''प्रियदेव! यह बात तो आपको मालूम ही थी कि मेरा दाहिना नेत्र फड़कता था । उस अशुभ निमित्त से मुझे किसी जगह पर भी शांति प्राप्त न हुई। आपके गये बाद मैं वन उपवन, बगीचे आदि में घूमकर शांति प्राप्त करने के लिए बहुत ही प्रयत्न किया । परंतु कहीं पर भी चित्त स्थिर न होने से मैं वापिस महल में आ गयी । और दासी वेगवती को मैंने फूल पत्र लेने के लिए भेज दिया। उस समय मेरी आंखों में कुछ निद्रा भरने लगी थी अतः मैंने आराम पाने के लिए पलंग का आश्रय लिया । मुझे मालूम है कि निद्रागत हो जाने पर तुरंत ही मुझे किसी दुरात्मा ने उठा लिया। महल से उठाकर मुझे किसी एक पहाड़ के शिखर पर रख दिया गया । मुझे उठा लानेवाला दुष्ट व्यक्ति शीघ्र ही कहीं अन्यत्र चला गया ।

इस समय मारे भय से मेरा सारा शरीर काँपने लगा । वह पहाड़ी प्रदेश यद्यपि रमणीय था तथापि मुझे उस समय वह बहुत ही भयानक प्रतीत होता था । उस पर्वत पर रहे हुए चंदन वृक्षों की सुगंधि का परिमल पवन के साथ मेरे शरीर को स्पर्श करता था । तथापि वह मुझे दुःखद मालूम देता था । चारों तरफ दृष्टि घुमाती हुई मैं उस शिलातल्प से उठी । मैंने सावधान होकर सब तरफ दूर - दूर तक देखा, परंतु वहां पर कहीं मनुष्य की छाया तक भी न देख पड़ती थी। मात्र सिंह, व्याघ्र, रींछ और उसी तरह के अन्य विकराल प्राणियों के शब्द सुनायी देते थे । ऐसी भयंकर परिस्थिति में साहस धारणकर मैं एक और चल पड़ी । मैं चलते समय विचार करती थी कि कहाँ वह मेरी रमणीय चंद्रावती नगरी और कहां यह निर्जन प्रदेश! हा मेरे प्राण वल्लभ कहाँ रहे! और अब मुझे उनका किस तरह मिलाप होगा? इस निष्कारण दुश्मन ने किसलिए मेरा अपहरण किया? इस संकट से अब मैं किस तरह मुक्त होऊंगी? इस भयानक जंगल में मैं किस तरह रह सकूंगी? मेरे बाद वहाँ पर मेरे प्राण प्यारे की क्या दशा

होगी? इत्यादि विचारों की उलझन में कदम - कदम पर ठोकरें खाती हुई मैं कितनी दूर तक उसी दिशा में चली गयी! इतने ही में मुझे सामने मेरे पुण्य के उदय से एक विशाल भव्य मंदिर नजर आया। उस मंदिर के द्वार खुले हुए थे, इसलिए धैर्य से मैंने उसमें प्रवेश किया। अंदर जाकर देखा तो वृषभ लांछन से मालूम हुआ कि उसमें ऋषभ देव प्रभु की सुंदर और शांत मूर्ति विराजमान है। प्रभु की प्रतिमा के दर्शन से मुझे उस महासंकट में कुछ विश्रांति मिली। मंदिर की प्राप्ति से मेरी अनेक आशायें सजीवन सी हो उठी। मानो मैं तमाम दुःख को भूल गयी हूं, मेरे मन में ऐसी हिम्मत और शांति प्राप्त हुई। ऐसे निर्जन जंगल में और आपत्ति के समय देवाधिदेव का दर्शन हुआ यही मेरे भविष्य के शुभसूचक की निशानी थी। मैं उस संकटहर शांतिकर, महाप्रभु की एकाग्र चित्त से स्तुति करने लगी।

"हे अनाथों के नाथ! परदुःख भंजन! कृपा के समुद्र! वीतराग देव! मैं आपकी शरण में आयी हूं। हे शरणागत वत्सल बिरूद धारण करनेवाले सर्वज्ञ देव! संसार में आपके हितोपदेश से अनादि कर्मबंधन से मुक्त हो भव्यजीव परम पद को प्राप्त करते हैं। हे प्रभो! आपकी दर्शन प्राप्ति अंधकार में दीपक, मरु भूमि में सरोवर, शुष्क पहाड़ पर कल्पवृक्षों की घटा और समुद्र में जहाज प्राप्ति के समान आनंददायक हैं। हे भगवन्! मेरे बाह्याभ्यन्तर दुःखों का अंत करो।

इस तरह शांतचित्त से भगवान की स्तुति करके जब मैं मंदिर से बाहर आयी तो वहां पर मुझे दिव्यरूप धारण करनेवाली एक स्त्री मिली। वह मेरे पास आकर प्रसन्न हो बोली - 'सुन्दरी! तुझ पर इस प्रकार की विपत्ति के बादल आने पर भी जिनेश्वर भगवान पर तेरी ऐसी अटल भक्ति और अटूट धर्मपरायणता देखकर ऋषभदेव प्रभु के शासन की अधिष्ठाता देवी मैं तुझे सहाय करने के लिए प्रकट हुई हूं। इस प्रभु के मंदिर के नजदीक ही रहनेवाली और देवमंदिर का रक्षण करनेवाली, मैं चक्केश्वरी देवी हूं। इस मलयाचल पहाड़ के ऊपर मेरा भुवन होने से मुझे लोक मलयादेवी भी कहते हैं। मेरे ही धर्म को पालन करनेवाली बहन! तूं धैर्य धारण कर। भय को त्याग दे। मैं तेरा रक्षण

करने के लिए आयी हूं । इस प्रकार कहकर आदरपूर्वक उसने मेरे हाथ में सुगंधिमय कुछ चंदन के टुकड़े दिये । मलयादेवी का अपने पर वात्सल्य देखकर मुझे बड़ा धैर्य प्राप्त हुआ । मैंने देवी से कहा हे देवी! मुझे कौन और किसलिए यहाँ हरण कर लाया? मुझे अब अपने स्वामी का मिलाप होगा या नहीं?'' देवी ने कहा – ''धर्म बहन! तेरे पति वीरधवल का वीरपाल नामक एक छोटा भाई था। राज्य की इच्छा से उसने राजा को मारने के लिए अनेक उपाय किये । परंतु राजा के पुण्य के सामने उसके तमाम प्रयत्न बेकार हुए । एक दिन उस निष्ठुर ने राजा को मारने के लिए महल में प्रवेश किया और राजा पर शस्त्र का वार किया । परंतु राजा ने सावधान हो उसके वार को चुका दिया और तलवार के एक ही प्रहार से उसे जमीन पर गिरा दिया । बुरी तरह घायल होकर वीरपाल अपने पाप का पश्चात्ताप करते हुए कुछ शुभ भावना से मृत्यु पाकर इसी पर्वत पर मेरे परिवार में प्रचंड शक्तिवाला भूत जाति में देव पैदा हुआ है । उसने ज्ञान से अपना पहला भव देखा । वैर यादकर राजा से बदला लेने के लिए उसके छिद्र देखता हुआ उनके पीछे फिरने लगा । राजा का पुण्य प्रबल होने से उसका कुछ भी अकल्याण करने में वह सर्वथा समर्थ न हुआ, तब उसने विचार किया कि राजा का रानी चंपकमाला पर गाढ़ प्रेम है, उसके जैसा स्वाभाविक प्रेम अन्य किसी पर नहीं मालूम होता । यदि रानी को मार दिया जाय तो प्रेम के बंधन में बंधा हुआ राजा स्वयं ही मर जायगा । इसी तरह मैं अपना बदला ले सकता हूं ।

''हे सुंदरी! इसी विचार से वह भूत देव तेरे पीछे फिरने लगा । आज तुझे शयनगृह में एकाकी निद्रावस्था में देख इस पर्वत पर उठा लाया । पुण्य की प्रबलता और आयुष्य लंबा होने से वह तुझे मार नहीं सका । हे धर्म सहोदरी! अब तुझे घबराने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि तुम्हारे ही शुभकर्म की प्रेरणा से मैं तुझे आ मिली हूं । अब से तेरे पुण्य कर्म का उदय हो गया है। और वही तेरा रक्षण करने और तुझे इष्टप्राप्ति कराने में समर्थ होगा । मेरे जैसी उस तेरे पुण्य की प्रेरणा से इष्ट प्राप्ति में सिर्फ निमित्त कारण होती है । इसलिए तुझे जिस वस्तु की इच्छा हो तूं मुझे मालूमकर जिससे कि मेरा समागम तेरे लिये सफल हो ।

"स्वामिनाथ! मैंने मलया देवी से कहा - "हे महादेवी! यदि आप सचमुच ही मेरी सहायक हैं तो मुझे पुत्रादि संतति नहीं है । जिसके बिना हमारा विशालराज्य भी निराधार है । गृहस्थियों का गृहसंसार पुत्रादि के बिना शोभा नहीं पाता । अतः प्रसन्न होकर मुझे पुत्र प्राप्ति का वरदान दो ।"

यह बात सुनते ही राजा उत्सुक हो बीच में ही बोल उठा - "हे प्रिय वल्लभे! उस परोपकारी देवी ने तुझे इस बात का क्या उत्तर दिया? रानी बोली - स्वामिन्! उस देवी ने खुश होकर मुझे कहा - "भद्रे! तुझे पुत्र पुत्री रूपी एक युगल (जोड़ा) थोड़े ही समय में प्राप्त होगा । इतने दिनों तक तेरे पति के दुश्मन इस व्यंतर देव ने ही तुम्हारे संतति का निरोध किया हुआ था। अब मैं उस अपने सेवक व्यंतर देव को तुम्हारा नुकसान या तुम्हें हैरान करने से रोक दूंगी।"

यह वचन सुनकर राजा के हृदय में हर्ष का पार न रहा । उसने रानी की बहुत ही प्रशंसा की और कहा - "हे साध्वी, प्रिये! तुझे बड़ी श्रेष्ठ बुद्धि सुझी! तूंने बहुत अच्छा वरदान मांगा । इससे तूंने मेरे वंश का उद्धार किया और मेरे हृदय की चिंता भी दूर कर दी । प्यारी! तेरे सिवा मेरे दुःख में हिस्सा लेने वाला और कौन हो सकता है? प्रिये! ऐसी दुःखी अवस्था में जो तुझे संतति संबंधी चिन्ता दूर करने की बात याद आयी यही हमारे भाग्योदय का सूचक प्रमाण है। क्या मलयादेवी ने और भी उपकार किया है? रानी ने जवाब दिया यह लक्ष्मीपुंज नामक हार उस महादेवी ने अपने हाथ से मेरे गले में डाला है । और उसने कहा है कि यह दुर्लभ हार महाप्रभावशाली है । गले में निरंतर धारण करने से शुभफल दायक होता है । इस हार के प्रभाव से तुझे प्रभावी संतति प्राप्त होगी, और नित्य ही तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे । हे स्वामिन्! इसके बाद मैंने मलयादेवी से पूछा । जिस देव ने मुझे इस पहाड़ पर ला छोड़ा है वह फिर इस समय कहां गया?" देवी ने कहा - "भद्रे! तुझे इस पर्वत पर छोड़कर वह देव फिर वापिस चंद्रावती नगरी में ही गया है और तेरे स्थान में तेरे ही जैसा एक मृतक शरीर बनाकर गुप्त रूप से वहां ही रहा है। तेरा पति तेरे सजीवन शरीर को अकस्मात् निर्जीव देखकर इस समय जिस दुःख का अनुभव कर रहा है उसे मैं कथन नहीं

कर सकती । राजा को उस व्यंतर देव की माया का पता नहीं लग सका। इसी कारण वह उस बनावटी मुर्दे को रानी समझकर महान् विलापकर रहा है । आपका दुःख सुनकर मैंने तुरंत ही देवी से प्रश्न किया कि मेरे स्वामी मेरे वियोग में जीवित रहेंगे या नहीं? और वे मुझे कब मिल सकेंगे?'' देवी ने कहा – ''भद्रे! सात पहर के बाद दुःसह्य पिड़ा को सहता हुआ राजा तुझे जीवित मिलेगा । मैं देवी से यह पूछना ही चाहती थी कि मुझे कब मिलेंगे । इतने ही में दासी सहित आकाश मार्ग से वहां पर एक विद्याधरी आ पहुंची । उसे देखकर मलयादेवी मेरे पास से अकस्मात् अदृश्य हो गयी । मुझे वहां पर एकाकी देख वह विद्याधरी मेरे पास आयी और विस्मय चित्त से वह मुझे पूछने लगी । कि हे भद्रे! इस निर्जन पहाड़ पर सुंदर रूपवाली तूं अकेली कौन है? उसके उत्तर में मैंने उसे अपना तमाम वृत्तांत कह सुनाया । मेरी बात सुनकर खेदपूर्वक वह विद्याधरी बोलने लगी । अहो! विधि की विचित्रता! ऐसी रूपवती, उत्तम कुल में पैदा होनेवाली और राजा की रानी होने पर भी निर्जन पहाड़ पर ऐसे संकट में पड़ी है ।''

''हे शुभे! मैं तुझे इसी वक्त तेरी चंद्रावती में छोड़ आती परंतु मुझे इस पहाड़ पर विद्या सिद्ध करनी है । अगर मैं इस वक्त उस विद्या का आराधन न करूँ तो फिर वह विद्या सिद्ध न हो सकेगी । मैं अब दोनों तरफ से संकट में पड़ गयी । इसीलिए मैं तुझे इस समय तेरी नगरी में नहीं पहुंचा सकती । इस समय मेरा पति भी मेरे पीछे आनेवाला है । वह ऐसा सुंदर रूप देखकर तेरा शील खंडित करेगा या वह तुझे सदा के लिए पत्नी बनाकर रखेगा तो मुझे भी सपत्नि का महान् संकट भोगना पड़ेगा, इसलिए हे भद्रे! चल तूं मेरे साथ, मैं तुझे अच्छी तरह किसी जगह छिपा दूँ। इस प्रकार कहकर वह बड़े जोशीले प्रवाह में बहती हुई मुझे एक नदी के किनारे ले गयी । उस समय भय के मारे मेरा सारा शरीर कंपायमान हो रहा था । मुझे शंका होती थी क्या यह विद्याधरी मुझे मार डालेगी? वृक्ष पर लटका देगी? या नदीप्रवाह में धकेल देगी!''

नदी के किनारे पर एक सूका हुआ और मोटा लक्कड़ पड़ा था। विद्याधरी ने अपनी विद्याशक्ति से उस लक्कड़ के दो लंबे विभाग किये । एक मनुष्य अच्छी

तरह उसमें समा जाय इतने प्रमाण में उसे थोता किया । एवं कपूर, कस्तूरी आदि अनेक प्रकार के सुगंधी द्रव्यों से मेरे शरीर पर विलेपन करके वह विद्याधरी मुझसे बोली - "हे भद्रे! इधर आ । मैं तेरे शील की रक्षा करूँ।" इस प्रकार कहकर मुझे उस लक्कड़ के विवर में सुलाकर उसने मेरे ऊपर उस काष्ठ की दूसरी फाड़ ढक दी । इसके बाद क्या बना सो गर्भावास में रहे हुए के समान मुझे कुछ खबर नहीं । पूर्वपुण्य के उदय से यह काष्ठ यहां ही आ पहुंचा और आपने मुझे उसमें से निकाल लिया, बस यही मेरा सर्व वृत्तांत है ।

राजा ने भी रानी के पूछे हुए उत्तर में इस दुर्दशा में यहां पर सबके एकत्रित होने का तमाम हाल कह सुनाया । फिर सुबुद्धि नामक प्रधान मंत्री से पूछा उस विद्याधरी ने रानी को इस काष्ठविवर में क्यों डाला होगा? और यह काष्ठस्तंभ यहां किस तरह आ गया!

मंत्री बोला - "महाराज! मेरा अनुमान है सपत्नी होने की शंका से विद्याधरी ने रानी को इस काष्टविवर में डाला होगा और काष्ट को मजबूत बंधनों से बांधकर उस तरफ से आनेवाली इस गोला नदी के प्रवाह में इस काष्ठस्तंभ को बहा दिया होगा । यह काष्ठस्तंभ नदी के प्रबल प्रवाह में बहता हुआ हमारे पुण्य के उदय से यहां आ पहुंचा है । विद्याधरी का चाहे जो आशय हो तथापि उसका किया हुआ प्रयत्न हमारे लिये सुखरूप निकला है । रानी से जो देवी ने कहा था कि तुम सात पहर के बाद अपने स्वामी से मिलोगी वह देवी का वाक्य सत्य ही हुआ ।

राजा "हां देवी का वचन तो अन्यथा हो ही नहीं सकता । परंतु उस मायावी व्यंतरदेव का प्रपंच हमें कुछ भी मालूम न पड़ा कि जिसने थोड़े ही समय में राजवंश क्षय करने का प्रयत्न किया था हम पर मलयादेवी- ने महान् उपकार किया है । उसकी कृपा से कुल में कुशलता, पुत्रपुत्री का वरदान मिला और उपद्रव करनेवाला वह व्यंतर देव शांत हुआ । सच पूछो तो इन तमाम बातों का कारण रानी का अपहरण है । जिस प्रकार कड़वी औषधी से तुरंत ही रोग दूर हो जाता है । वैसे ही रानी का यह दुःखदाई अपहरण अंत में हमें सब तरह सुखरूप हुआ ।

काष्ठस्तंभ की उन दोनों फालियों को गोला नदी के भूषण रूप भट्टारिका देवी के मंदिर के आगे रखवा दिया गया । मध्याह्न का समय हो गया था, भूख से रानी का मुखकमल कुमला रहा था । प्रधान मंत्री ने कहा – "कृपानाथ! समय बहुत हो चुका है । अब हम कृतार्थ हो गये हैं । भोजन का समय बीत रहा है। क्षुधा से क्षाम कुक्षीवाली महारानी भी कुमलाई हुई दिख पड़ती है और आप भी कल से अन्न जल रहित हैं । अतः अब आप शीघ्र ही शहर में चलकर स्नान भोजनकर दुःख को जलांजलि दें । प्रधान के वचन सुनकर महाराज वीरधवल शहर में प्रवेश करने के लिए तैयार हो गये । प्रजाजनों ने शहर के रास्ते और बाजार सजा दिये थे । राजा रानी दोनों हाथी पर बैठकर राजमहल को चल दिये।

इस समय अनेक प्रकार के बाजों के नाद से आकाश गूंज रहा था । चारण लोग बिरुदावली बोल रहे थे । महाराज मांगलिक और आशीर्वाद के शब्द सुनते हुए तथा याचकों को दान देते हुए राजमहल में आ पहुंचे । महल में आकर मंत्री सामंत और नागरिकादि सर्व जनों को संतोषितकर महाराज ने विसर्जन किया । वे लोग भी महाराज को नमस्कारकर हर्ष प्राप्त करते हुए अपने – अपने घर पहुंचे। राजा और रानी ने स्नानपूर्वक ऋषभ देव प्रभु की पूजा करके भोजन किया और प्रजाजनों ने खुशी बताने के लिए उस दिन महाराज के पुनर्जन्म का महोत्सव किया ।

सफल वरदान

पृथ्वी पर सर्वत्र चंद्रमा की चांदनी पसर रही थी । महाराज वीरधवल महारानी चंपकमाला के महल में आकर आराम कर रहे थे । नजदीक में रहे हुए बगीचे से शरीर को सुख देनेवाले मंद मंद सुगंधित पवन के झोके आ रहे थे, शय्या पर बिछाये हुए पुष्पों की सुगंधी महक रही थी । सारे महल में शांति का साम्राज्य पसर रहा था । ऐसे समय विरह की वेदनाएँ नष्ट हो जाने पर दंपती अपूर्व सुख सागर में डूब रहे थे । बहुत समय तक प्रेम और हास्य विनोद की बातें कर परिश्रम से थके हुए महाराज और महारानी सुखनिद्रा में विलीन हो गये ।

पुण्य के प्रभाव और मलयदेवी के वरदान से महारानी चंपकमाला ने उसी रात्रि में गर्भ धारण किया । ज्यों – ज्यों गर्भ के चिह्न विशेष प्रकट होने लगे त्यों – त्यों राजा हर्ष से पुलकित होने लगे और महारानी गर्भ से वृद्धि को प्राप्त होती गयी । गर्भ में उत्तम प्राणी आने के कारण रानी को शुभ इच्छायें पैदा हुई! और राजा ने भी उन सबकी पूर्ति की ।

क्रम से नव महीने पूर्ण होने पर शुभ लग्न में महारानी चंपकमाला ने सुखपूर्वक महान् तेजस्वी पुत्र पुत्रीरूपी युगल को जन्म दिया । तुरंत ही महाराज वीरधवल को वेगवती दासी ने राज सभा में जाकर पुत्र और पुत्री के जन्म की बधाई दी । राजा के हर्ष का पार न रहा । बिना किरीट के उसने अपने शरीर से तमाम अलंकार उतारकर प्रीतिदान में वेगवती को दे दिये और उस रोज से उसका दासी पन मिटा दिया। देशभर में हर्षोत्सव मनाया गया । अर्थी जनों को खूब दान दिया गया । आरंभ के व्यापार बंद कराये गये। कैदियों को छोड़ दिया गया । तमाम जीवों को अभय दान दिया गया । शहर को अनेक

प्रकार से सजाया गया, महाराज को बड़ी उमर में पुत्र पुत्री होने से प्रजाजनों के आनंद का पार न रहा ।

इस प्रकार दश दिन पर्यन्त आनंदोत्सव कर सगे संबंधी और प्रजाजनों को प्रीति भोजन कराया, जनता के समक्ष मलयादेवी का वरदान सफल होने से उसका नाम याद रखने के लिए महाराज ने हर्ष पूर्वक उन पुत्र पुत्री का मलयकेतु और मलयासुंदरी नाम रखा । ज्यों – ज्यों कुमार और कुमारी बुद्धि को प्राप्त होने लगे त्यों – त्यों चंद्रमा से समुद्र की तरंगों के समान राजा और रानी के मनोरथ बढ़ने लगे । धीरे – धीरे वृद्धि पाते हुए कुमार – मलयकेतु और मलयासुंदरी अब विद्या ग्रहण करने की वय को प्राप्त हुए । विद्या के बिना राजकुल में पैदा होकर मनुष्य सच्ची शोभा नहीं पाता यह समझकर बालकों के हितैषी महाराज वीरधवल ने एक धुरंधर विद्वान कलाचार्य को बुलाकर उसके पास राजकुमार और राजकुमारी को विद्याभ्यास करने के लिए रख दिया । बुद्धिमान् राजकुमार और राजकुमारी ने पूर्व पुण्य के उदय से थोड़े ही समय के अंदर पहले ही याद की हुई विद्या के समान तमाम कलाओं को संपादन कर लिया । राजकुमार अश्वक्रीड़ा, हाथियों से लड़ना और खड्ग खेल में अत्यंत निपुण हो चुका था। अपनी कला की और भी उन्नति करने की इच्छा से धनुष बाण लेकर वह जब कभी लक्ष्य वेध करता था । तब उसकी कला देखकर राजकुल के बड़े – बड़े पुरुष हर्ष से चकित हो जाया करते थे ।

मलयासुंदरी का हृदय स्वभाव से ही करुणारूप था । वह भोले स्वभाव की थी । उसके हृदय और शरीर में कोमलता ने निवास किया था । माता पिता की संस्कारिता के कारण उसकी बचपन से ही सद्धर्म में रुचि थी । वह अपने अनेक सद्गुणों के कारण समस्त राजकुटुंब को प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। धीरे – धीरे अब उसने बाल्यावस्था का परित्याग किया था ।

अब युवावस्था में राजकुमारी के शरीर की शोभा कुछ अपूर्व ही मालूम होती थी । उसके शरीर के अंग प्रत्यंग विकास को प्राप्त हो चुके थे । नेत्रों को आनंद देनेवाली उसके शरीर की लावण्यता प्रति दिन बढ़ती जा रही थी ।

उसके लंबे – लंबे घुंघरवाले काले केश अति मनोहर मालूम होते थे । कमल के समान उसकी बड़ी – बड़ी स्निग्ध आंखें देखने वालों के चित्त को हरण करती थीं । अष्टमी के अर्धचंद्राकार कपाल के नीचे कमान के जैसे टेढ़ी भौंहें बड़ी ही सुंदर मालूम होती थीं । साधु पुरुषों की चित्तवृत्ति के समान, सरल नासिका उसके मुख मंडल की शोभा में अधिक वृद्धि कर रही थी । शुभ्र मोतियों के जैसी दंतपंक्ति उसके लाल – लाल होठों पर अतीव सुंदर प्रकाश डालती थी । उसकी ग्रीवा तीन रेखाओं से शंख के जैसे शोभती थी । वृक्षस्थल पर उभरता हुआ कठिन स्तन युगल उसके नवयौवन के आगमन को सूचित कर रहा था। उसकी लंबी – लंबी कोमल भुजाएँ मृणाल दंड को भी लजाती थीं । उसके शरीर का मध्यभाग सिंह की कमर के जैसा पतला और सुंदर दिख पड़ता था । हथनी की गति की भांति मंद – मंद किन्तु विलास वाली उसकी चाल युवकों के मन को लुभाती थी ।

दोपहर का समय था । महाराज वीरधवल की राजसभा भरी हुई थी; इतने में ही द्वाराल ने आकर महाराज को नीचे गर्दन झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा – ''सरकार! राजद्वार पर पृथ्वीस्थानपुर नगर से राजा सूरपाल के सेनापति और उनके साथी आये हुए हैं । वे दरबार में आना चाहते हैं । हुक्म मिला उन्हें यहाँ ले आओ । महाराज वीरधवल की आज्ञा पाकर द्वारपाल, पृथ्वीस्थानपुर से आये हुए मेहमानों को राजसभा में ले आया । आगतुंक सेनापति और उसके सहचारी राज पुरुषों ने महाराज वीरधवल के सामने पृथ्वीस्थान पुर से लाये हुए वस्तुओं का उपहार रखकर उन्हें झुककर नमस्कार किया और सबके सब अदब से एक तरफ खड़े हो गये । राजा वीरधवल ने बहुमान पूर्वक उनके पुरस्कार को स्वीकारकर, उन सबको बैठने के लिए आसन दिखाये!

प्रसन्न होकर महाराज वीरधवल ने प्रश्न किया ''हमारे परम मित्र महाराज सूरपाल के राज्य और परिवार में कुशलता है?'' हाथ जोड़कर सेनापति ने नम्रता से उत्तर दिया महाराज! धर्म के प्रताप और आप जैसे मित्र राज की स्नेहभरी नजर से राज्य में सर्वत्र आनंद है । महाराज सूरपाल ने

आपके परिवार की कुशलता पूछी है ।

सेनापति के साथ आये हुए मनुष्यों की तरफ नजर फैंकते हुए महाराज वीरधवल ने सेनापति के नजदीक बैठे हुए एक महान् तेजस्वी, सौम्यमूर्ति, भाग्यवान सुंदर युवक को देखा । उसे देखते ही राजा की मनोवृत्ति सहसा उस तरफ आकर्षित हो गयी । अतः - महाराज ने प्रश्न किया 'सेनापति यह तुम्हारे साथ का युवक कौन हैं?' इसकी सुंदर आकृति तो राज कुमारों के समान तेज मालूम होती है, यह बात सुनते ही उस युवक का संकेत पाकर चतुर सेनापति बोल उठा - ''महाराज! यह मेरा छोटा भाई है । चंद्रावती नगरी को देखने की इच्छा से हमारे साथ चला आया है । इस युवक को देखकर राजा के मन में कुछ और ही भाव पैदा हुआ था । राजकुमारी मलयासुंदरी युवावस्था को प्राप्त होने से राजा अपनी चिंता को दूर करने के विचार में था, परंतु यह कोई राजकुमार नहीं है, यह समझकर उसने अपने विचारों को मन में ही दबा लिया था ।

राजकार्य निवेदन किये बाद राजा ने उन्हें सन्मान देकर निवास स्थान दिया । उस मकान में वे सबके सब जा ठहरे । राजसभा विसर्जन हुई । सभा से बाहर आने पर उस युवक ने अपने संबंध में उत्तर देनेवाले सेनापति की बड़ी प्रसन्नता पूर्वक प्रशंसा की । क्योंकि यह बनावटी उत्तर देने का कारण उस युवक का चंद्रावती में गुप्त प्रवास था । एक सुंदर महल में उतारा किये बाद वह युवक अपने साथियों को कहकर अकेला ही चंद्रावती नगरी की शोभा देखने के लिए निकला।



रंग में भंग

विशाल दक्षिण देश में पृथ्वी स्थानपुर नामक नगर था। वह अपनी शोभा और समृद्धि में चंद्रावती नगरी से कम न था। यह शहर भी गोला नदी के किनारे पर ही बसा हुआ था। शहर के चारों तरफ सघन वृक्षों की घटा शहर की शोभा बढ़ा रही थी। शहर के नजदीक में धनंजय नामक यक्ष का मंदिर था। आसपास में कुछ पहाड़ी प्रदेश भी था। समीपवर्ति पर्वतों में बहुत सी गुफाएँ भी दिख पड़ती थीं, जिनका उपयोग तपस्वी, योगी - पुरुष या चोर वगैरह करते थे। इस सुंदर और समृद्धिशाली नगर में क्षत्रियवंशी महाराज सूरपाल राज्य करते थे। वीरधवल और सूरपाल राजा में पारस्परिक मित्रता थी। अपनी मित्रता को बढ़ाने के लिए समय समय पर वे आपस में एक दूसरे को श्रेष्ठ वस्तुओं की भेट भेजा करते थे। कार्य प्रसंग पर वे एक दूसरे को आपस में सहाय भी किया करते थे।

एक दिन महाराज सूरपाल ने बहुत सी श्रेष्ठ वस्तुएँ देकर कुछ राजकार्य के निमित्त अपने सेनापति को चंद्रावती में महाराज वीरधवल के पास भेजा था। उस समय अन्य भी कई मनुष्यों के साथ राजकुमार महाबल पिता की आज्ञा ले गुप्त रीति से सादे वेष में चंद्रावती की शोभा देखने के लिए आया था। जिस तेजस्वी - युवक के विषय में पाठक महाशय पूर्व परिच्छेद में पढ़ चुके हैं, वह पृथ्वी स्थान नगर का राजकुमार यह महाबल ही है। कुमार महाबल राज के योग्य विद्याओं में अतीव निपुण था। उसके शरीर की सुंदरता और चेहरे का वीरतेज देखने वाले को अपनी तरफ आकर्षित करता था।

पूर्व परिच्छेद में कथन किये मुताबिक राजकुमार अपने साथियों को पूछकर चंद्रावती की शोभा देखने के लिए निकला है। शहर के राजमार्ग और चौराहे देखता हुआ तथा सुंदर राजप्रासादों की शोभा का निरीक्षण करता हुआ वह मुख्य जनाने राजमहल के पीछे की ओर आ पहुंचा। उस महल के पिछले भाग की खिड़की में बैठी हुई एक सुंदर युवती शहर की शोभा निहार रही थी। देखते - देखते उस राजमहल के नीचे से जानेवाले मार्ग पर चलते हुए राजकुमार

पर उसकी दृष्टि जा पड़ी । कामदेव के समान सुंदर रूपवान और अपने समान वयवाले उस राजकुमार को देखकर वह सुंदरी विचार करने लगी, यह सुंदर आकृतिवाला युवक कौन होगा? यह साक्षात् कामदेव ही तो नहीं है? इसके चेहरे का तेज और सुंदर चमकीली आंखें, विशाल वक्षस्थल, लंबी - लंबी भुजायें, मूंगे के समान रक्त वर्ण के होठ, कैसे सुंदर मालूम होते हैं! सर्वांग सुंदर राजकुमार को देखकर वह युवती उसे एकटक नजर से देखती हुई, चित्राम की मूर्ति के समान स्तब्ध हो गयी ।

दैवयोग - से राजकुमार की दृष्टि भी अचानक ही खिड़की में बैठी हुई उस युवती पर जा पड़ी । उसे देखते ही कुछ ठसक कर वह विचारने लगा - ''अहा! क्या यह कोई स्वर्ग से उतरी हुई अप्सरा है? यह अनुरक्त दृष्टि से मेरे सन्मुख देख रही है । यह कुमारी होगी या विवाहिता? इधर उस युवती के मन में भी यह विचार पैदा हुआ, प्रेम भरी दृष्टि से मेरे सन्मुख देखनेवाला यह युवक क्या कोई राजकुमार है? इसे देखते ही मेरा मन इतना विवश क्यों होता है? क्या यह कोई मेरे पूर्व जन्म का स्नेही होगा? इस प्रकार के अनेक विचारों में उलझी हुई उस सुंदरी ने वह स्वयं कौन और वह युवक कौन है यह जनाने और जानने के लिए, एक भोजपत्र पर दो श्लोक लिख अपने मन के साथ ही महल के नीचे खड़े हुए उस युवक की तरफ डाले । शरीर पर रोमांच धारण करते हुए राजकुमार ने नीचे पड़े उस पत्र को उठा लिया और उसे मन में पढ़ा । उस पत्र में लिखा था -

कोसि त्वं? तव किं नाम? क्व वास्तव्योऽसि सुन्दर !
कथय त्वयका जहें मनो मे क्षिपतां दृशं
अहं तु वीरधवल भूपतेस्तनया कनी ।
त्वदेक हृदया वर्ते नाम्ना मलयासुन्दरी ।।

''हे सुंदर आप कौन हैं? आपका नाम क्या है? आप कहाँ के रहनेवाले हैं? यह बतलाइए। मेरे पर दृष्टि डालकर आपने मेरा मन चुरा लिया है । मैं

वीरधवल राजा की कुमारी पुत्री हूं। आपके हृदय के साथ मेरा हृदय एक हो गया है। मेरा नाम मलयासुंदरी है।

इस पत्र को पढ़कर राजकुमार योगी के समान एकाग्र चित्त से टकटकी लगाकर, राजकुमारी की ओर देखने लगा। चार आँखों के मिलते ही दोनों का हृदय एक दूसरे की ओर खिंच गया और कुमार को वहां से आगे कदम बढ़ाना कठिन हो गया। राजकुमारी की प्रेम भरी दृष्टि ने उसको मंत्रमुग्ध सर्प के समान स्तंभित - सा कर दिया था। चित्रित मूर्ति के जैसा स्थिर होकर कुमार विचारने लगा। अहा! इस चतुर राजकुमारी ने साहस धारणकर अपना मनोगत भाव और परिचय दे दिया, परंतु इसके पूछे हुए सवाल का जवाब मुझे किस तरह देना चाहिए, कुमार इसी उधेड़ बुन में लगा हुआ था, इतने ही में उसके पीछे जल्दी - जल्दी एक पुरुष आया और कुमार को देखकर कहने लगा, राजकुमार? शहर में फिरना छोड़कर अब आप वापिस अपने मुकाम पर चलें। क्योंकि हम लोगों ने आज ही अपने नगर को प्रयाण करना है। जिस राजकार्य के लिए यहाँ आना हुआ था वह कार्य सफल हो गया।

मनोगत भाव को दबाकर कुमार बोला - अहा! देखो, ये मकान कैसे शोभ रहे हैं? इस नगरी का किला कितना मजबूत है! राजमहलों ने इस नगरी की अत्यंत शोभा बढ़ा रखी है। मुझे तो अभी बहुत कुछ देखना है। अभी तक तो सिर्फ इन मकानों को ही देखने पाया हूं। तुम वापिस लौट चलने की बड़ी जल्दी करते हो'' आने वाले पुरुष ने कहा - ''राजकुमार! सेनापति का कहना है कि कुछ आवश्यक प्रसंग होने से हमें इसी वक्त देश को प्रयाण करना चाहिए। इसलिए आप जल्दी चलिए। यद्यपि इस समय वहां से कदम उठाना कुमार के लिए अत्यंत दुष्कर था, तथापि विवश होकर उसे अपने सेवक के साथ वापिस मुकाम पर जाना ही पड़ा। वह मन ही मन सोचने लगा - मेरी कितनी कमजोरी! मैं कौन हूँ इस प्रश्न का उत्तर भी कुमारी को न दे सका! धिक्कार है मेरे कलानैपुण्य को!! और मेरी तमाम बुद्धिमत्ता निरर्थक है। देश से इतनी दूर आकर भी अगर मैं कुमारी को न मिल सका तब फिर उसका मिलाप मुझे किस तरह हो सकता है? इस समय रात्रि हो गयी है, चारों तरफ अंधकार छा रहा है। मेरे साथी भी

अभी तैयारी ही कर रहे हैं, जब तक ये तैयार हों तबतक मैं अकेला ही जाकर राजकुमारी से मिल जाऊँ और मैं कौन हूँ उसके पूछे हुए इस प्रश्न का उत्तर दे आऊँ।

पूर्वोक्त निश्चयकर किसी को कहे बगैर ही कुमार गुप्त रीति से वहाँ से चल दिया। वह शीघ्र गति से उसी महल के नीचे जा पहुंचा जहां से वापिस गया था। महल के पहले मंजिल की खिड़की खुली हुई थी, और वह किले के साथ ही लगती थी। दो तीन मंजिल के ऊपर रहने वाली कुमारी के साथ बातचीत करना सुलभ कार्य न था। तथा विशेष अंधकार होने से दृष्टि का विषय भी आच्छादित हो चुका था। अर्थात् महल की जिस खिड़की में राजकुमारी के साथ चार आँखें मिली थीं, अब अंधेरे में वहां तक नजर न पहुंचती थी, इसलिए मलयासुंदरी के मिलाप की आशा व्यर्थ सी प्रतीत होती थी। परंतु वह हिम्मतवान पुरुष निराश न हुआ। अब साहस किये बिना काम नहीं चलेगा, यह सोचकर एक ही छलांग में जमीन से किले पर जा चढ़ा। वहां से पास में ही पहले मंजिल की खिड़की खुली हुई थी। राजकुमार ने उसी खिड़की से अंदर प्रवेश किया। जिस खिड़की से कुमार ने प्रवेश किया था। वह रास्ता वीरधवल महाराज की दूसरी रानी कनकवती के महल में जाता था और उसके ऊपर के मंजिल में राजकुमारी मलयासुंदरी रहती थी। संयोग वशात् इस समय कनकवती के महल में उसके सिवा एक भी दास और दासी न थी। इन अंधेरी रात में अपने महल में प्रवेश किये हुए राजकुमार को देखकर रानी कनकवती सोचने लगी अहा! ऐसे सुंदर रूपवाला और इतना साहसी पुरुष आज तक मैंने कभी नहीं देखा। कनकवती ने खिड़की के द्वारा प्रवेश करते हुए राजकुमार को प्रथम न देखा था; इससे वह सोचने लगी इतने सारे पहरेदार होने पर भी इस पुरुष ने यहाँ किस तरह प्रवेश किया होगा? सचमुच ही यह कोई विद्याधर या महान् पुरुष मालूम होता है। यह किसी भी प्रयोजन से प्रसन्नता धारण किये बेधड़क चला आ रहा है। इस प्रकार विचार करती हुई राजवल्लभा कुमार के रूप से मोहित हो उसके जाने के रास्ते में खड़ी होकर उसे कहने लगी; हे नरोत्तम! सुख से आइए इस आसन पर

बैठिए और प्रसन्न होकर मेरे मनोरथ को पूर्ण कीजिए ।

रानी के वचन सुन राजकुमार चकित हो विचार में पड़ गया, वह सोचने लगा कि यह कोई राजा की रानी मालूम होती है या उसकी बहन होगी । ऐसे खतरनाक स्थान में आकर मनोवृत्ति पर संयम न रखा जाय तो स्वदारा संतोष व्रत किस तरह रह सकता है? एवं इष्ट कार्य की सिद्धि होना भी असंभव हो जाय। मैं इतना साहसकर सिर्फ मलयासुंदरी से मिलकर उसके प्रश्न का उत्तर देने के लिए आया हूं, परंतु किसी बुरी भावना को साधने के लिए नहीं । इसलिए मुझे इस स्थान में बड़ा सावधान रहना चाहिए । यद्यपि राजकुमारी मुझे दिल से चाहती है और मैं भी उसके स्नेह बंधन में बंध चुका हूं तथापि उसके माता पिता की सम्मति बिना मैं उसके साथ कदापि विवाह न करूंगा । जब मुझ पर प्रेम करने वाली उस कुमारी स्त्री की तरफ भी मेरी ऐसी दृढ़ भावना है तो विवाहित परस्त्री की तरफ मेरा मन विचलित न होना चाहिए । यह विचारकर कुमार ने समयानुसार अपना कार्य साध लेने के लिए रानी कनकवती से कहा 'मैं मलयासुंदरी के वास्ते कुछ वस्तु लेकर आया हूं। अतः मुझे उसका निवासस्थान बतलाइये । उसे वह चीज देकर वापिस लौटते समय आप जैसा फरमायेंगी वैसा किया जायगा । कनकवती ने कुमार का कथन मानकर उसे नजदीक की सिढियाँ से ऊपर मलयासुंदरी के महल में जाने का रास्ता बतलाया । कुमार ऊपर की मंजिल पर चढ़ गया। राजपत्नी कनकवती भी धीरे - धीरे उसके पीछे चलकर, दरवाजे के पास छिपकर जा खड़ी हुई। कुमार को यह बात मालूम न रही ।

राजकुमार के गये बाद राजकुमारी मलयासुंदरी स्थिर चित्त से उसी खिड़की में बैठी हुई महाबल कुमार के मार्ग की और दृष्टि लगाये हुए उसी का ध्यान कर रही थी । अंधकार हो जाने के कारण महाबल कुमार के समागम की आशा यद्यपि उसके हृदय में शिथिल हो रही थी, तथापि कुमार के साथ गया हुआ उसका दिल वापिस न आता था, वह खोये हुए धन को वापिस पाने की आशा वाले मनुष्य के समान अंधकार होने पर भी उसी दिशा में देख रही थी। वह उसके ध्यान में ऐसी निमग्न हो रही थी कि "कुमार के अंदर आनेपर भी उसकी ध्यान श्रेणी भंग न हुई। कुमार उसके पास ही जा खड़ा हुआ । फिर भी

ध्यानमग्न योगी के समान उसे कुमार का आना मालूम न हुआ । उसकी हालत को देखकर कुमार बोल उठा - ''मृगाक्षी! इधर देखो! मैं तुम्हारे हृदय में से निकलकर तुम्हारे सन्मुख खड़ा हूं । कानों को अमृत के समान वह वचन सुनते ही अपनी गर्दन पीछे घुमाकर देखा तो उसके चित्त का चोर राजकुमार उसके सन्मुख खड़ा नजर आया । उसे देखते ही मलयासुंदरी लज्जा से विनम्र मुखकर सन्मुख खड़ी हो गयी । जिस तरह रातभर मुर्झाई हुई कमलिनी प्रातः सूर्य का दर्शनकर विकसित हो उठती है वैसे ही कुमार को देख राजकुमारी प्रफुल्लित हो गयी । परंतु मारे लज्जा के वह कुछ भी न बोल सकी । कुमार फिर बोला- ''राजकुमारी मैं ऐसे भयानक स्थान में सिर्फ आपके प्रश्न का उत्तर देने के लिए ही आया हूं । मैं पृथ्वीस्थानपुर के महाराजा सूरपाल और महारानी पद्मावती का पुत्र हूं । मेरा नाम महाबल कुमार है । तुम्हारी नगरी की शोभा देखने के लिए गुप्त रूप से मैं अपने परिवार के साथ यहां आया हूं अर्थात् यहां की जनता और आपके पिता महाराज वीरधवल का मेरे आने का कोई पता नहीं है ।

आश्चर्यपूर्ण तुम्हारी इस नगरी को देखते हुए मैं आज संध्या समय तुम्हारे महल के नीचे आ पहुंचा, उस वक्त जन्मान्तर के प्रेम को प्रकट करनेवाला, तुम्हारे साथ मेरा दृष्टि मिलाप हुआ। इसके बाद जो कुछ हुआ है उसका हम दोनों को अनुभव ही है । इस समय ऐसे संकट पूर्ण स्थान में तुमसे मिलने के लिए मुझे तुम्हारा प्रेम ही खींच लाया है । लो, अच्छा अब मैं जाता हूं । अपने साथियों को तैयारी करते हुए छोड़ आया हूं, क्योंकि इसी समय हमें पृथ्वीस्थान पुर की ओर प्रयाण करना है ।

कुमार इसी समय वापिस चला जायगा यह सोचकर राजकुमारी लज्जा और मौन को छोड़कर बोली - ''राजकुमार! आपको यहां से वापिस नहीं जाना चाहिए । आपके बिना मैं प्राणधारण करने के लिए असमर्थ हूं । यदि आप अतिनिष्ठुर हो मेरी अवज्ञाकर चले जायेंगे तो मैं अपने प्राणों को त्याग दूंगी । इसलिए आप मुझ पर दयाकर यहाँ ही रहें । मुझे आपके दर्शन मात्र से परम शांति प्राप्त हो जाती है । राजकुमार! मैं आपका क्या स्वागत करूँ? मैं आज से जन्म पर्यन्त आपको अपनी आत्मा समर्पण करती हूँ और यह लक्ष्मीपुंज हार

ग्रहण करो यों कहकर राजकुमारी ने अपने हाथ से महाबल के गले में लक्ष्मीपुंज हार डाल दिया और बोली - ''कुमार! इस हार के बहाने से मैंने आपके गले में यह वरमाला पहनायी है । इसलिए इस वक्त गंधर्व विवाहकर आप मुझे अपने साथ ले चलें । जिससे पारस्परिक वियोगजन्य दुःख न सहना पड़े ।''

कुमार - ''राजकुमारी! आपका कहना उचित है । तुमने अपने मन का भाव प्रकट किया यह ठीक है, तथापि जनता के समक्ष माता पिता की सम्मति से विवाह किये बिना इस तरह विवाहकर मैं तुम्हें साथ ले जाऊँ यह कुलीन पुरुषों के लिए उचित नहीं । ऐसा करने से मैं एक साधारण चोर के समान मनुष्यों की नजर से गिर जाऊँगा । ऐसे कार्यों में जल्दी करना उचित नहीं होता । तुम शांतचित्त से कुछ दिन तक यहाँ ही रहो । मैं तुम्हें वचन देता हूं कि घर जाकर ऐसा ही प्रयत्न करूँगा जिससे तुम्हारे मातापिता मेरे ही साथ तुम्हारा विवाह करें। कुमारी? अब धैर्य धारणकर प्रसन्न चित्त से मुझे जाने की आज्ञा दो ।

भावी दंपती पूर्वोक्त प्रकार से आनंद में मग्न हो एक दूसरे से जुदा होने की तैयारी कर रहे थे । इतने ही में अकस्मात् उस कमरे के द्वार बंद हो गये । यह देख सावधान हो कुमार बोला-'द्वार किसने बंद किये? राजकुमारी चकित हो विचार में पड़ी थी, इसी समय बाहर से कनकवती की आवाज सुनायी दी । अरे! दुष्ट महाबल! तूं मुझे ठगकर कुमारी से आ मिला! याद रखो मुझे ठगने का फल तुम्हें अभी मिल जायगा । मलयासुंदरी बोली - ''कुमार! यह मेरी सौतेली माता है और इसी महल के पहले मंजिल में रहती है । मालूम होता है कि आपको यहाँ आते हुए उसने देख लिया है और इससे वह हम पर कोपायमान हुई मालूम होती है । अहा! मेरी कितनी भयंकर भूल! मैंने उसे यहाँ आयी हुई को बिल्कुल न जाना, संभव है उसने हम दोनों की तमाम बातें सुनी हों कुमार बोला - ''सुंदरी! जब मैं तुम्हारे पास आ रहा था उस वक्त इसने मुझे रास्ते में रोका था और कामातुर होकर इसने मुझ से विषययाचना भी की थी । मैं इसे असत्य उत्तर देकर तुम्हारे कमरे का रास्ता पूछकर ऊपर आ गया । परंतु यह मुझे भी मालूम न हुआ कि खुफिया मनुष्य के समान मेरे पीछे आकर वह हमारा तमाम व्यतिकर सुनेगी ।

स्त्री स्वभाव के कारण ड़ाह से यह हम पर अवश्य ही कुछ न कुछ आपत्ति लायगी, परंतु खैर हरकत नहीं सब ठीक हो जायगा ।

जिस वक्त महाबल और मलयासुंदरी अपनी असावधनता का पश्चात्ताप कर रहे थे, उस वक्त कनकवती उनके कमरे के द्वार पर ताला लगाकर महाराज वीरधवल के पास गयी और उसने वहाँ जाकर आंखों से देखा और कानों से सुना हुआ तमाम वृत्तान्त राजा से इस ढंग से कहा कि जिसके सुनने से राजा एकदम क्रोधित हो उठा । कनकवती के मुख से अपनी पुत्री का स्वच्छंदी आचरण सुनते ही राजा के नेत्र क्रोध से लाल हो गये । वह उसी वक्त अनेक सुभटों को साथ ले 'पकड़ो मारो' वगैरह शब्द बोलता हुआ तत्काल मलयासुंदरी के मकान के सामने आ पहुंचा । सुभटों ने महल को चारों तरफ से घेर लिया।



विचित्र घटना

अघटित घटितानि घटयति, सुघटित घटितानि जरजरी कुरुते ।
विधिरेव तानि घटयति, यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥१॥

दूर से राजा के शब्द सुनकर मारे भय के राजकुमारी थर्रा गयी । उसके दुःख का पार न रहा, धैर्य टूट गया । ऐसे सुंदर आकृतिवाले कुमार के प्राण कैसे बचेंगे? इस नररत्न को नष्ट कराने वाली मुझ विष कन्या को धिक्कार हो! हाय! प्रथम मिलाप में ही मैं अपने प्यारे पर जुल्म ढानेवाली बनी! कुमारी को चिंतासागर में डूबी देख महाबल ने उसे धीरज दी । सुंदरी! निश्चित रहो मेरा कोई भी बाल बांका नहीं कर सकता । जो मनुष्य ऐसे भयंकर स्थान में प्रवेश करने का साहस रखता है उसके पास अपने रक्षण का उपाय भी अवश्य होता है' यों

कहकर कुमार ने अपने पास से एक गुटिका निकाली और मलयासुंदरी के देखते - देखते उसे अपने मुंह में डाल लिया । महाबल कुमार ने आज दोपहर को ही राजसभा में महाराज वीरधवल के पास बैठी हुई महारानी चंपकमाला को देखा था, अतः गुटिका के प्रभाव से वैसा संकल्प होने से कुमार का रूप चंपकमाला के रूप में परिवर्तित हो गया । अब वह साक्षात् चंपकमाला बनकर मलयासुंदरी के पास बैठ गया । मलयासुंदरी भी अपनी माता का रूप देख आश्चर्य पाती हुई निर्भय हो शांत चित्त से बैठ गयी ।

राजा ने ताला तुड़वाकर द्वार खोल मलयासुंदरी के मकान में प्रवेश किया। अंदर घुसते ही महाराज वीरधवल ने मलयासुंदरी को अपनी माता चंपकमाला के पास बैठी देखी । यह देख राजा कनकवती के सन्मुख हो बोला - 'प्रिय तुमने मुझे क्या कहा था! यहाँ तो उन बातों में से कुछ भी मालूम नहीं होता? कनकवती ने कमरे के अंदर आकर चारों तरफ अच्छी तरह देखा परंतु अपनी माता सहित बैठी हुई मलयासुंदरी के सिवा वहां पर कोई भी नजर न आया । कनकवती को देख चंपकमाला का रूपधारण करनेवाला महाबल बोला - 'आओ बहन! आज अकस्मात् आप इस महल में कहाँ से! क्या आज महाराज मेरे पर कोपायमान है? चंपकमाला रानी को बोलती हुई देख वहाँ आने वाले तमाम मनुष्य कनकवती की तरफ घृणा से देखने लगे । वे बोल उठे - ''सचमुच ही सौकनों की आपसी ईर्षा उनके निर्दोष बच्चों पर उतरती हैं, क्योंकि कनकवती के सम्बन्ध में भी वैसा ही बनाव बना था लज्जायमान होकर कनकवती ने कहा -''स्वामिन्! यहाँ पर आये हुए एक पुरुष को मेरे देखते हुए राजकुमारी ने लक्ष्मीपुंजहार दे दिया है । आप उसकी तलाश करें । यह बात सुनते ही स्त्री रूपी कुमार ने अपने गले से हार निकालकर राजा की तरफ दिखाकर कहा - 'क्या आप इसी हार को तलाश करने आये हैं, उस हार को देखकर राजा की शंका सर्वथा निवृत्त हो गयी। कनकवती ईर्षा के कारण ही ऐसे अनर्थ की बातें करती है, स्त्रियों में जरा भी विचार नहीं होता । इत्यादि बोलता हुआ तमाम पुरुषों को साथ ले राजा अपने स्थान पर चला गया ।

चंपकमाला रानी इस समय एक जुदे ही महल में थी । राजा या कनकवती को इस बात का पता न था । बाद में उसे यह बात मालूम होने पर सौकनपन की आपसी ईर्षा से एवं अपनी पुत्री की लघुता न हो इस कारण उसने इस बात पर बिल्कुल लक्ष्य न दिया । तथा इस विषय में उसने किसी से बात तक भी न निकाली ।

अब अपनी लघुता हुई देख रानी कनकवती दुःखी हो सोचने लगी – 'मैं अपने हाथों से द्वार का ताला लगा गयी थी और वह वैसा ही लगा पाया, फिर भी वह कुमार कैसे निकल गया? यह क्या हुआ! मैंने प्रत्यक्ष उसे अपनी आंखों से देखा था । क्या मुझे यह भ्रम हुआ है? हाय! सब मनुष्यों में मेरी कैसी निंदा होती है! आज सबके बीच में मैं असत्य बोलनेवाली साबित हुई! किसी पूर्व जन्म की दुश्मन यह कुमारी ही मेरी इस लघुता का कारण है । इसको देखते, ही मुझे उद्वेग होता है । मैं इसे संकट में डालकर या प्राणदंड दिलाकर कब बदला लूंगी? इस तरह बड़बड़ाती हुई वह अपने महल में चली गयी ।

कोलाहल शांत होने पर बड़ी सावधानता के साथ मलयासुंदरी ने चारों तरफ देखभालकर मकान का दरवाजा बंद कर लिया; अब महाबल ने भी अपने मुख से गुटिका निकालकर अपना स्वाभाविक रूप बना लिया था । वह कुमारी से कहने लगा – ''राजकुमारी! यह सब महिमा इस गुटिका की है ।

मलया – 'कुमार! यह गुटिका आपको कहाँ से मिली?'

कुमार – एक दिन हमारे शहर में एक विद्यासिद्ध पुरुष आया था, उसकी मैंने खूब सेवा की थी । संतुस्ट होकर उस सिद्धपुरुष ने रूप परावर्तन करने आदि के मुझे अनेक प्रयोग बतलाये हैं । वे सब मैंने सिद्धकर रखे हैं । उन्हीं में से यह एक गुटिका भी है; जिसके प्रभाव से आज हम दोनों संकट से उत्तीर्ण हुए हैं ।

मलया – 'इस तरह के चमत्कारिक प्रयोगवाली क्या दूसरी गुटिका भी आपके पास है?'

कुमार – हाँ है, उसका प्रभाव ऐसा है कि आम के रस के साथ घिसकर तिलक करने से स्त्री पुरुष का रूप धारण कर सकती है, परंतु वह गुटिका इस समय मेरे पास नहीं है ।

सुंदरी! अब मुझे जाने दो, अधिक समय यहाँ रहने से फिर कोई अन्य उत्पात न खड़ा हो जाय । आज के प्रसंग में तुम्हें समझना चाहिए कि विधि हमारे अनुकूल है । मैं अवश्य अपना वचन पालने की पूरी कोशिश करूंगा । तुम्हारे मन की शांति के लिए मैं तुम्हें एक श्लोक दिये जाता हूँ । संकट में उसे याद करने से धैर्य प्राप्त होता है ।

विधत्ते यद्विधिस्तत्यान्न स्यात् हृदयचिन्तितं ।
एवमेवोत्सुकं चित्तमुपायान् श्चिन्तयेद् बहून् ॥१॥

भाव – जिस तरह पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मरूपी भाग्य करता है, वैसे होता है; परंतु हृदय का चिंतित कार्य नहीं होता । यह चित् उत्सुक होकर व्यर्थ ही अनेक उपाय विचारा करता है ।

अर्थात् संसार में संयोग और वियोग सुख और दुःख मनुष्य के स्वयं के किये हुए शुभाशुभ कर्म के अनुसार हुआ करता है । परंतु मनुष्य के किये हुए विचारानुसार नहीं; तथापि मानव स्वभाव के अनुसार मनुष्य का हृदय व्यर्थ ही अनेक उपाय सोचता रहता है । इस पूर्वोक्त श्लोक का अर्थ समझने के कारण मलयासुंदरी ने तुरंत ही कंठस्थ कर लिया । श्लोक के भावार्थ को विचारकर कुमारी प्रसन्न चित्त से कुमार के धर्मशास्त्र संबंधी ज्ञान और उसके धैर्य की प्रशंसा करने लगी तथा ऐसे गुणवान पुरुष रत्न के समागम से वह अपने आपको कृतार्थ समझने लगी ।

कुमार – 'सुंदरी! अब तो मुझे प्रसन्न होकर जाने की आज्ञा दो । समय बहुत हो गया, मेरे साथी मेरी राह देख रहे होंगे ।

मलया – 'कुमार! मैं अपने मुख से ऐसे शब्द कैसे कह सकती हूँ, तथापि

आप जाने के लिए इतने उत्सुक हैं और मेरे साथ विवाह करने का मुझे वचन देते हैं तो मैं इतने से ही संतोष मानकर प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि आपका मार्ग निष्कंटक हो । आप शांति पूर्वक अपने निर्णय किये स्थान पर पहुंचे' इतना शब्द बोलते ही कुमारी की आंखों में अश्रु भर आये । हृदय गद् गद् हो उठा । उससे आगे कुछ न बोला गया । वह अश्रुपूर्ण नेत्रों से टकटकी लगाकर कुमार की तरफ देखती रही ।

कुमार धैर्य धारणकर उसके मस्तकर पर चुंबन द्वारा अंतिम पवित्र प्रेमभाव का परिचय देकर किसी को मालूम न हो इस तरह जिस रास्ते से आया था उसी रास्ते किले से बाहर हो गया और प्रयाण के लिए तैयार होकर उसकी राह देखते हुए अपने साथियों से जा मिला । रास्ते में वह राजकुमारी को विवाहित करने के अनेक उपायों के विचारों में लगा रहा । पृथ्वीस्थानपुर में पहुंचने तक राजकुमारी का चित्रपट उसके हृदय से क्षणभर के लिए भी दूर न हुआ । नगर में आकर विनयपूर्वक माता पिता को नमस्कारकर मलयासुंदरी से मिला हुआ लक्ष्मीपुंज हार उसने अपने पिता को समर्पण किया । पिता ने जब उस महाकीमती हार प्राप्ति का कारण पूछा तब शरम से समयोचित असत्य उत्तर देते हुए कुमार बोला – ''चंद्रावती के राजपुत्र मलयकेतु ने मित्रता के बतौर निशानी के लिए मुझे यह हार दिया है । यह सुनकर महाराज सूरपाल ने कुमार की प्रशंसा करते हुए कहा पुत्र! तेरा बड़ा अद्‌भुत कलाकौशल्य है कि जिससे थोड़े ही समय की मित्रता से उस राजकुमार ने तुझे ऐसा महाकीमती हार भेट कर दिया । राजा ने उस लक्ष्मीपुंज हार को कुमार की माता पद्मावती रानी को सौंप दिया । माता ने भी पुत्र की प्रशंसाकर वह दिव्य हार अपने गले में पहन लियाा ।

अब राजकुमार रात–दिन मलयासुंदरी के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के विचारों में निमग्न रहता है । वह सोचता है कि कुमारी के समक्ष की हुई दुष्कर प्रतिज्ञा को मैं किस तरह पूर्ण करूंगा । यह हृदय की बात माता – पिता के समक्ष किस तरह कही जाय! अब वह सदैव इसी उधेड़ बुन में लगा रहता है ।

एक रोज चंद्रावती के महाराज वीरधवल का भेजा हुआ राजदूत राजा सूरपाल की सभा में आया । उस समय महाराज सूरपाल, महाबलकुमार और प्रधानमंत्री मंडल सब राजसभा में बैठे हुए थे । द्वारपाल के साथ राजसभा में प्रवेशकर चंद्रावती के दूत ने महाराज सूरपाल को विनययुत नमस्कारकर कुशलवार्ता कथनपूर्वक अपने स्वामी का आदेश निवेदन किया । महाराज! मुझे आपके परम मित्र चंद्रावती नरेश ने आपकी सेवा में भेजा है । हमारे महाराज ने आपको प्रणाम पूर्वक कुशल प्रश्न पूछा है । विशेष समाचार यह है कि महाराज वीरधवल के रतिरंभा के रूप को तिरस्कार करनेवाली मलयासुंदरी नामकी एक कन्या है । हमारे महाराज ने उनका स्वयंवर मंडप रचा है । वंशपरंपरा से मिला हुआ वज्रसार नामक धनुष उस मंडप में रखा जायगा । जो कुमार अपने पराक्रम से उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ायगा उसी के गले में राजकुमारी वरमाला डालेगी । इसी स्वयंवर पर अनेक राजकुमारों को आमंत्रण देने के लिए चारों तरफ दूत भेजे गये हैं और आपके रूपवान, गुणवान, कलाभंडार महाबल कुमार को बुलाने के लिए यहां पर मुझे भेजा गया है । आज जेठ मास की कृष्णा एकादशी है और स्वयंवर का मुहूर्त जेठवदि चतुर्दशी के दिन रखा गया है । यों तो मुझे वहां से रवाना हुए बहुत दिन हुए, परंतु रास्ते में बिमार होने के कारण मैं यहां पर जल्दी नहीं पहुंच सका । इसलिए महाराज! अब समय बहुत थोड़ा रह गया है अतः महाबल कुमार को आप तुरंत ही चंद्रावती की तरफ रवाना करें, क्योंकि अब विलंब करने का समय नहीं रहा ।

महाराज वीरधवल के स्वयंवर संबंधी आमंत्रण से राजा सूरपाल को बहुत खुशी हुई । सन्मान पूर्वक आमंत्रण को स्वीकारकर दूत को वस्त्रादि के दान से सत्कारितकर विसर्जन किया। इस समय महाबल राजकुमार भी राजसभा में महाराज के पास ही बैठा हुआ था । चंद्रावती के दूत के वचन सुनकर उसका हृदय हर्ष से प्रफुल्लित हो उठा । वह प्रसन्न हो विचार ने लगा - 'अहा! पुण्य की कैसी प्रबलता है! जिस कार्य के लिए मैं रातदिन चिंतित रहता था वह भाग्य से आज सामने आ उपस्थित हुआ । जो कार्य सामर्थ्य और धन व्यय से सिद्ध होना

असंभवित सा था, वही कार्य पुण्ययोग से अब अपने स्वाधीन सा ही प्रतीत होता है । अब पिता की आज्ञा पाकर मैं शीघ्र ही चंद्रावती को जाऊंगा । स्वयंवर में आये हुए अनेक राजकुमारों का मानमर्दनकर, मलयासुंदरी का पाणिग्रहणकर के मैं अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करूंगा ।' इत्यादि अनेक विचार लहरियों से हर्षाकुल हुए राजकुमार की तरफ राजा ने दृष्टिपात किया । ''बेटा महाबल! तूं आज ही स्वयंवर पर चंद्रावती जाने की तैयारी कर । साथ में खूब सेना ले जाना । चंद्रावती नरेश बड़ा राजा है, एवं वह हमारा मित्र राजा होने से विशेष माननीय है ।''

कुमार - (हाथ जोड़कर, मस्तकर झुका) ''पिताजी! आप की आज्ञा शिरोधार्य है । आप जब फरमायें तभी जाने के लिए तैयार हूं ।''

राजा - (प्रधानमंत्री की तरफ देखकर) ''मंत्रीवर! सेनापति को आज्ञा करो, कुमार के साथ चंद्रावती जाने के लिए सेना तैयार करें । महाबल की और देखकर, बेटा! चंद्रावती से लाया हुआ लक्ष्मीपूंज हार भी अपने साथ लेते जाना ।''

महाबल - ''पिताजी! मैं आपसे एक प्रार्थना करना चाहता हूं और वह यह है जब मैं निद्रा में होता हूं तब अदृश्य रूप से मेरे कमरे में आकर मुझे कोई प्रतिदिन उपद्रव करता है । कभी वस्त्र, शस्त्र, कभी आभूषण या अन्य कोई उत्तम वस्तु जो मेरे पास होती है, उसे ले जाता है । कभी भयंकर हास्यकर वह मुझे डराने का प्रयत्न भी करता है । कल संध्या के समय माताजी ने वह लक्ष्मीपूंज हार रखने के लिए मुझे दे दिया था, परंतु कल ही रात्रि को मेरे कमरे में से उसे किसी ने निकाल लिया । हार गायब हुआ जानकर, माताजी को अत्यंत दुःख हुआ, यह देख मेरा हृदय भी दुःख से व्याकुल हो रहा है । पिताजी! माता को शांत करने के लिए, मैंने उनके सामने यह प्रतिज्ञा की है ''यदि पांच दिन के अंदर मैं उस हार को वापिस न ला दूं तो अग्नि में प्रवेशकर मरणांत प्रायश्चित्त करूंगा । माताजी ने भी ऐसी ही प्रतिज्ञा की है ।'' अगर वह हार मुझे न मिला तो मैं भी अपने प्राण खो दूंगी । मेरी तमाम वस्तुओं को छिपकर हरण करनेवाला जन्मान्तर का वैरी भूत या राक्षस होना चाहिए । पिताजी! मैं चाहता

हूं कि आज रात को दो - तीन पहर तक अपने शयनगृह में हथियार सहित सावधान हो छिपकर पहरा दूं। यदि इतने समय तक मेरी तमाम वस्तुओं को चुरानेवाला वह दुष्ट मेरे मकान में प्रवेश करे तो उसे पकड़कर अपनी हार आदि तमाम वस्तुओं को वापिस ले लूं। उनमें से हार माताजी को देकर रात्रि के पिछले पहर में चंद्रावती की तरफ प्रयाण करूं। यह बात सुनकर राजा ने कुमार को वैसा करने की आज्ञा दी। पिता को नमस्कारकर महाबल अपने महल में चला गया।

जेठवदि एकादशी के दिन अंधेरी रात्रि ने पृथ्वी पर चारों तरफ काली चादर बिछायी हुई है। अनंत आकाशमंडल में असंख्य तारे अपने मंदप्रकाश द्वारा रात्रि की शोभा बढ़ा रहे हैं। तथापि विशेष अंधकार के कारण उनके प्रकाश से जमीन पर रही हुई वस्तु स्पष्ट मालूम न होती थी। सारे शहर में शांति का सन्नाटा छा रहा था। राजमहल के चारों और किसी भी मनुष्य का संचार न था। ऐसे समय में अपने निवासभुवन में हाथ में तलवार लिये, दीपक के अंधकार नीचे सावधान हो गुप्त रीति से महाबल कुमार खड़ा है। अपने सोने के पलंग पर एक वस्त्र से मनुष्याकृति बनाकर उस पर एक चादर डाली हुई है। उस निवास भुवन के एक खिड़की के सिवा तमाम द्वार बंद है। चाहे जो हो परंतु प्राणप्रण से भी आज उस दुष्ट को पूरी शिक्षा दूंगा, इसी विचार में कुमार सावधान होकर खड़ा है। जब मध्यरात्रि का समय हुआ, उस वक्त खुली हुई खिड़की से एक हाथ ने अंदर प्रवेश किया। कुमार ने भी उसे अच्छी तरह देख लिया और वह विशेष रूप से सावधान हो गया। वह हाथ कुमार के कमरे में फिरने लगा, यह देख कुमार आश्चर्य सहित विचारने लगा। अरे! शरीर के सिवा यह अकेला हाथ क्यों दीख रहा है? कंकण आदि भूषणों से भूषित तथा सरल और कोमल होने के कारण यह हाथ किसी स्त्री का मालूम होता है। निश्चित यही स्त्री अदृश्यतया मुझे निरंतर उपद्रव करती है। किसी दिव्य प्रभाव से इसका शरीर गुप्त मालूम होता है। अगर मैं खड़ग से इसके हाथ को छेदन कर दूं तो फिर यह मेरे हाथ न आयगी और ऐसा करने से लक्ष्मीपूंज हार आदि गयी हुई वस्तुओं की भी प्राप्ति न होगी। इसलिए इस हाथ को न काटकर इसे पकड़ लेना चाहिए।

यह विचाकर कुमार सहसा उस हाथ पर चढ़ बैठा और उसने उसे दोनों हाथों से जकड़कर पकड़ लिया ।

कुमार के इस साहस से अब वह हाथ कमरे में न रहकर खिड़की से बाहर हो आकाशमार्ग में ऊपर जाने लगा । कुमार भी उस हाथ पर निर्भीकता से बैठा रहा । आकाश में जानेपर वायुवेग से हिलती हुई ध्वजा के समान वह हाथ कांपने लगा । उस हाथ ने कुमार को नीचे पटकने के लिए बहुत ही प्रयत्न किये परंतु वृक्ष की शाखा पर लटके हुए बंदर के समान वह हाथ के साथ चिपटा रहा । कुछ समय के बाद उस हाथवाली व्यंतरदेवी का संपूर्ण शरीर कुमार को दीखने लगा। अब वह सोचने लगा 'यह सचमुच ही कोई देवी मालूम होती है, इसे विशेष हैरान करने से कदाचित यह कोपायमान हो मुझे कहीं समुद्र या किसी पर्वत के शिखर पर फेंक देगी । इसलिए अधिक समय तक इस हाथ पर बैठे रहना मेरे लिये बड़ा खतरनाक है । यह विचारकर कुमार ने पृथ्वी की और उतरती हुई उस देवी की गर्दन पर इस प्रकार का मुष्टिप्रहार किया जिसकी पीड़ा से वह करुणस्वर से रुदन करती हुई बोली – 'हे साहसिक! कृपाकर मुझे छोड़ दो । मैं अबसे आपको हैरान न करूंगी । इस समय देवी के आकाश मार्ग से पृथ्वी बहुत दूर नहीं थी, अतः कुमार ने करुणा से उसका हाथ छोड़ दिया । फिर न जाने वह देवी किस दिशा में गायब हो गयी । देवी का हाथ छोड़ते ही निराधार होकर कुमार आकाश से नीचे पड़ा । उसे पड़ते ही मूर्च्छा आ गयी । जंगल के शीतल पवन से आश्वासन मिलने पर कुछ समय के बाद वह होश में आया । पुण्य के प्रताप से किसी एक घास के ढेर पर पड़ने के कारण कुमार के शरीर को विशेष चोट न पहुंची थी, होश में आकर वह सोचने लगा । न जाने मैं इस समय किस प्रदेश में आकर पड़ा हूं? इस अंधकारपूर्ण रात्रि में जंगल में चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था, कहीं – कहीं जंगली जनावरों के कटु शब्द सुनायी दे रहे थे । शेष रात्रि व्यतीत करने के लिए ऐसे बीहड़ जंगल में निशस्त्र होकर जमीन पर बैठे रहना उचित नहीं, यह सोचकर राजकुमार समीपवर्ती एक आम के पेड़ पर चढ़ बैठा । वह मन ही मन सोचने लगा । अहो! इस देवी के अपहरन से मेरी यह

क्या अवस्था हुई? अब लक्ष्मीपूंज हार की प्राप्ति मुझे कैसे होगी? हार न मिलने पर माता के सामने की हुई प्रतिज्ञा का पालन किस तरह होगा? और वह न मिलने से माताजी कैसे जीवित रहेंगी? माता की मृत्यु से पिता के भी प्राणों की रक्षा होना असंभव है । हा! इस वक्त मेरे वंश के संहार का समय आ गया । ***हे विधि! तेरी विचित्र गति है! तूं क्षण में मनुष्य को रुलाता है, हंसाता है, आशा देकर ऊंचे शिखर पर चढ़ाता है । थोड़े ही समय में फिर मनुष्यों को बंधन में डालता है और निराश करके ऊंचे शिखर से नीचे पटकता है । तेरी विचित्रता को ज्ञानी महान् पुरुषों के सिवा और कोई नहीं जान सकता ।***

अब रात्रि का तीसरा पहर बीत चुका था । आकाश में तारे चमक रहे थे। चंद्रोदय का समय होने से अंधकार भी कुछ कम हुआ था । इस समय आम के वृक्ष पर बैठा हुआ महाबल अनेक प्रकार की विचार तरंगों में गोते लगा रहा था। इसी समय उसी आमवृक्ष के नीचे पेट से घिसकर चलनेवाले किसी सर्प जैसे प्राणी की आहट उसके कानों में पड़ी । इससे कुमार ने सावधान होकर वृक्ष के नीचे की तरफ देखा तो आम के थड़ के नजदीक आता हुआ उसे एक भयानक अजगर दिख पड़ा । उस अजगर के मुंह में आधा लटका हुआ कोई मनुष्य मालूम होता था । यह देख कुमार समझ गया कि यह कोई क्रूर प्राणी किसी मनुष्य को निगलकर इस वृक्ष के साथ लपेटा देकर उसे मारने के लिए आ रहा है । यदि मैं इस क्रूर प्राणी के मुंह में पड़े हुए इस मनुष्य को जीवित दान दूं तो मेरा इस विपत्ति में आ पड़ना भी सफल गिना जा सकता है । संसार में मनुष्यमात्र के सिर पर काल की गर्जना हो रही है । इस नाशवंत शरीर से दूसरे का कुछ उपकार हो सके तो जीवन सार्थक है । यह सोचकर कुमार वृक्ष से नीचे उतरा । जिस वक्त वह अजगर उस वृक्ष के समीप आकर वृक्ष को लपेटा दे अर्ध लटके हुए मनुष्य को मार डालने का प्रयत्न करता था उसी वक्त कुमार ने अपने हाथों से उस भीमकाय अजगर के दोनों होठों को पकड़कर उसे जीर्ण वस्त्र के समानी चीर डाला । अजगर के मुंह के दो विभाग होते ही उसके मुंह से मंद चैतन्यवाली एक युवती स्त्री निकल पड़ी। यद्यपि वह स्त्री जीवित थी तथापि इस समय वह मूर्छागत होने से निश्चेष्ट मालूम होती थी । जंगल का शुद्ध पवन लगने से कुछ देर के बाद अर्ध जागृत अवस्था

में उसके मुख से मंद स्वर से ''मुझे महाबलकुमार का शरण हो'' यह शब्द निकल पड़े । अपने नाम को सुनकर कुमार विस्मय प्राप्त कर सावधान हो उस युवती की तरफ देखने लगा । रात्रि में गौर से उसके चेहरे को देखने से कुमार को मालूम हो गया कि चंद्रावती के राजमहल में देखी हुई वह मलयासुंदरी की आकृति है । यह देख कुमार के आश्चर्य का पार न रहा । परोपकार की भावना के उपरांत हृदयगत प्रेम की प्रेरणा से अब वह अधिक प्रयत्न से उसे होश में लाने का प्रयत्न करने लगा । अब वह कुछ विशेष होश में आकर महाबल द्वारा याद कराये हुए इस श्लोक को बोलने लगी -

'विधत्ते यद्विधिस्तस्यान्न स्यात् हृदय चिंतितं' इत्यादि वाक्य सुनते ही कुमार को पूर्णनिश्चय हो गया कि वह राजकुमारी मलयासुंदरी ही है । अतः उसने गद् गद् स्वर से कहा - मृगाक्षी! निद्रा का त्याग करो और स्वस्थ बनो। तुम्हारी यह अवस्था देखकर मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है । महाबल का शब्द सुनते ही नेत्र खोल राजकुमारी उसके सामने देखने लगी । अपने पास बैठा हुआ और अपने शरीर की सुश्रुषा करते हुए राजकुमार को देख उस दुःख में भी उसका हृदय हर्ष से भर आया ऐसी दुःखी अवस्था में कुमार का दर्शनकर वह अपने तमाम दुःखों को भूल गयी। शरीर को संकोचकर और वस्त्र समेट के बैठी हो वह स्निग्ध दृष्टि से कुमार की ओर एकटक देखने लगी ।

''मलया - राजकुमार! क्या मैं स्वप्न देख रही हूं । मैं किस तरह जीवित रही । आप अकस्मात् यहां कैसे आ गये?''

महाबल - ''राजकुमारी! यह बात मैं तुम्हें फिर सुनाऊंगा । पहले नजदीक में जो यह नदी मालूम होती है वहां चलकर जो तुम्हारा शरीर मैल और अजगर की लाल से सना हुआ है, इसे साफ करना चाहिए ।

मलया - ''जैसी आपकी आज्ञा!'' वहां से उठकर दोनों जनें पास में *बहनेवाली नदी पर गये, वहां जाकर राजकुमारी* के शरीर को साफकर वस्त्र धोकर और उसे स्वच्छ ताजा पानी पिलाकर महाबल कुमार अपने साथ ले फिर वापिस उसी आम के पेड़ तले आ बैठा ।

मलया – (जरा स्वस्थ होकर) राजकुमार! आप यहाँ कैसे आये? महाबल ने अपना तमाम वृत्तांत व्यंतर के हरण से लेकर उस अजगर के चीर डालने तक कह सुनाया । वह वृत्तांत सुनकर मलयासुंदरी कुमार के धैर्य और साहस से चकित हो वारंवार मस्तक हिलाने लगी । कुमार की और स्नेह भरी दृष्टि से देखते हुए वह बोल उठी 'कुमार! आपने बड़ा कष्ट सहन किया।'

महाबल – सुंदरी! तुम अब मुझे अपना वृत्तांत कह सुनाओ । मेरे गये बाद तुम पर क्या क्या घटनायें घटीं? इस भयानक अजगर के उदर में किस तरह आ पड़ी? अनेक सुभटों से सुरक्षित उस राजमहल में रहनेवाली तुम्हें इस अजगर ने किस तरह सटका? तुम अजगर के मुंह में किस तरह आयी?

मलया – राजकुमार! अजगर के मुख में किस तरह गयी यह तो मैं नहीं जानती, परंतु इसके सिवा मैं आपको अपना तमाम वृत्तांत सुनाती हूं । आप अपने कान और हृदय को कठिनकर सुनें।

मलयासुंदरी अपना वृत्तांत कहना ही चाहती थी इतने ही में महाबल के कान पर दूर से आते हुए किसी मनुष्य की आहट पड़ी । महाबल तुरंत ही सावधान होकर विचारने लगा । रात्रि के समय ऐसे प्रदेश में यह कौन फिर रहा होगा? ऐसे अंधकार के समय में चोर, जार या घातक ही अपने लक्ष्य की खोज में फिरा करते हैं । यदि ऐसा ही हुआ तो संभव है मुझे अकेले को स्त्री के पास बैठा देख वह कुछ उपद्रव करे । अगर राजकुमारी की खोज में ही कोई आ रहा होगा तो इस समय इसे अकेली को मेरे पास बैठी देख वह भी कुछ आपत्ति करेगा ।

रहस्योद्घाटन

रात्रि का समय है । जंगल में सन्नाटा छा रहा है । आकाश में तारे टिमटिमाकर तुरंत ही में निकले हुए चंद्रमा की ज्योति बढ़ा रहे हैं । जंगल में कहीं - कहीं पर गीदड़ और उल्लू का शब्द सुनायी दे रहा है । ऐसे प्रशांत समय जंगल में गोला नदी के किनारे पर आम के पेड़ के नीचे दो सुंदर युवक बैठे हैं । और कांपते हुए शरीर से नम्रतापूर्वक उनके सामने खड़ी हुई एक युवती उनसे कुछ कह रही है ।

उसे नजदीक आयी देख कुमार ने मीठी आवाज से कहा - ''भद्रे! तूं कौन है? ऐसी घोर अंधेरी रात्रि में इस निर्जन जंगल में तुझे अकेली आने का क्या कारण हुआ? तेरा शरीर किस भय से कांप रहा है? हम दोनों परदेशी हैं । रास्ते ही में रात पड़ जाने से हमने यहां ही विश्राम कर लिया है, परंतु हम इस प्रदेश से सर्वथा अनजान हैं'' इस तरह कुमार ने उसी मीठे वचनों द्वारा कुछ आश्वासन सा दिया ।

कुमार के वचनों पर विश्वास रख वह आगंतुक स्त्री बोली - ''हे क्षत्रिय पुत्रों! मैं आपके पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर देती हूँ । आप जहां पर बैठे हैं यह गोला नदी के किनारे का प्रदेश है । यहां से बिल्कुल नजदीक चंद्रावती नामकी नगरी है । और वहां पर वीरधवल राजा राज्य करता है। आगंतुक स्त्री के मुख से यह समाचार सुनकर महाबल का हृदय हर्ष और आश्चर्य से पूर्ण हो गया। वह सोचने लगा, भाग्य की कैसी विचित्र गति है? ऐसे संकट में पड़कर भी मैं अपने इष्ट स्थान के समीप ही आ पहुंचा हूँ । मृत्यु के मुख में गयी हुई राजकुमारी भी मुझे जीवित ही मिल गयी । ऐसे मरणांत संकटों में भी मेरा भाग्य मुझे पूर्ण सहायता दे रहा है, इसलिए मुझे संकटपूर्ण समय में जरा भी हिंमत नहीं हारना चाहिए ।

महाबल - भद्रे! क्या इस राजा के वहां कुछ नयी घटना घटी है?

आगंतुक युवती – हाँ, इस राजा के एक मलयासुंदरी नाम की उमर लायक कन्या थी, उसके लिए राजा ने स्वयंवर शुरू किया हुआ है । देश देशांतर से राजकुमारों को बुलाने के वास्ते चारों तरफ राजदूत भेजे हुए हैं । आज से तीसरे दिन याने चतुर्दशी के रोज स्वयंवर का मुहूर्त था और राजा ने स्वयंवर की तमाम सामग्री तैयार कर ली थी परंतु उस कुमारी की सौतेली माता कनकवती ने उस रंग में भंग कर डाला । मैं उस कनकवती रानी की सोभा नामकी मुख्य दासी हूँ। उसकी पूर्ण विश्वास पात्र होने से उसका कोई सा भी कार्य मुझसे छिपा नहीं है। कनकवती मलयासुंदरी पर निरंतर द्वेष रखती थी और उसके छिद्र देखती रहती थी ।

मलयासुंदरी – सोमा! कनकवती किसलिए राजकुमारी पर द्वेष रखती थी?

महाबल – इसमें क्या पूछना था? सौकन को स्वाभाविक ही अपनी सौकन की संतान पर द्वेष होता है ।

सोमा – कुछ भी होगा, मुझे इस बात का पता नहीं । हाँ इतना मैं कह सकती हूँ कि राजकुमारी का आज तक कुछ अपराध नहीं देखा गया । उस निर्दोष बालिका के पीछे पड़ने पर भी कनकवती कुमारी का कुछ भी अहित न कर सकी । कल रात का जिकर है मैं और मेरी स्वामिनी सिर्फ हम दोनों ही महल में बैठी थीं । अकस्मात् रानी कनकवती की गोद में कुमारी का लक्ष्मीपुंज हार आ पड़ा चित्त को आनंद देने वाला लक्ष्मीपुंज हार का नाम सुनते ही नवचेतन्यसा प्राप्तकर कुमार सहसा बोल उठा – सोमा! वह हार उसकी गोद में कहाँ से आ पड़ा था?

सोमा – वह हार आकाश मार्ग से पड़ा था । उसे देख हम दोनों ने नीचे ऊंचे चारों तरफ देखा परंतु उस हार को फेंकने वाले का कुछ भी पता न लगा । कुमार ने मन ही मन सोचा – "उसी व्यंतर देवी ने मेरे पास से ले जाकर लक्ष्मीपुंज हार वहां डाला होगा, जिसने उसके साथ मेरी अन्य वस्तुयें भी चुरायी हुई हैं । मालूम होता है उस व्यंतर देवी का कनकवती के साथ कुछ जन्मांतर

का स्नेह संबंध होगा । इसीसे उसने वह हार उसे जा दिया होगा ।

महाबल – ''सोमा! वह हार लेकर कनकवती ने क्या किया? इस वक्त वह हार कहाँ पर है?''

सोमा – ''हार मिलने से अतिहर्ष प्राप्त कर कनकवती ने मुझसे कहा – ''भद्रे! देख, यह कैसा अपूर्व आश्चर्य है । जहां पर पुरुष का संचार होना कठिन है ऐसे स्थान में रहनेवाली राजकुमारी मलयासुंदरी का यह हार अकस्मात मेरी गोद में आ पड़ा है। तूं चारों तरफ देख; इस समय कोई मनुष्य महल में छिपकर, यह सब कुछ देख तो नहीं रहा है? मैंने और मेरी स्वामिनी कनकवती ने भी महल में सर्वत्र देखा परंतु हमें कोई भी मनुष्य देखने में न आया।

कुछ देर मौन रहकर मेरी स्वामिनी ने मुझसे कहा सोमा! तूं इस हार की प्राप्ति का किसी को भी जिक्र न करना । मैंने वह बात शिरोधार्य की । स्वामिनी ने उस हार को कहीं गुप्त स्थान पर छिपा दिया । इसके बाद हम दोनों जनीं महाराज वीरधवल के पास गयी । मेरी स्वामिनी ने हाथ जोड़कर महाराज से प्रार्थना की – ''महाराज! मैं आपसे एकांत में कुछ आपके हित और लाभ की बात कहना चाहती हूं ।' महाराज वीरधवल यह सुन '' बहुत अच्छा'' कहकर उठ खड़े हुए और मेरी स्वामिनी के साथ एक जुदे कमरे में चले गये । वहां पर मेरी स्वामिनी ने महाराज से कहा स्वामिन्! पृथ्वीस्थानपुर के भूपति सूरपाल राजा का महा पराक्रमी सुंदर और तेजस्वी महाबल नामक एक कुमार है । उसका एक मनुष्य गुप्तरीति से बहुत दफे आपकी अतिप्यारी राजकुमारी मलयासुंदरी के पास आता है । राज्य का भूषण रूपी और दिव्य प्रभाववाला वह लक्ष्मीपूंज हार आज ही कुमारी ने महाबल कुमार के लिए उस आदमी के हाथ भेज दिया है और साथ ही उसे यह भी कहलाया है कि ''स्वयंवर के बहाने से बहुत सी सेना लेकर तुम इस अवसर पर जरूर आना । अन्य राजकुमार भी इस समय अवश्य आयेंगे । आपके संकेत करने पर वे आपको सहाय भी करेंगे। इसलिए इस समय राज्य को ग्रहण करने का यह अमूल्य अवसर है। मेरा विवाह भी आपके ही साथ होगा ।

महाराज! सचमुच ही कुमारी सरल स्वभावी है । उसे राज्य लोभी धूर्त और अपने बल से गर्वित महाबल कुमार ने भरमाकर अपने वश में कर लिया है, इसी कारण उसने इस प्रकार का भयंकर राजद्रोह और कुलघातक विचार किया है । प्राणनाथ! स्त्रियों की वाणी मधुर होती है परंतु उनकी बुद्धि बड़ी तुच्छ होती है । मुख में कुछ और हृदय में कुछ ओर ही होता है । मूर्ख स्त्रियाँ तुच्छ लालसा में फँसकर अपने माता - पिता, भाई आदि समस्त कुटुंब को भयानक कष्ट में डाल देती हैं, इसी कारण यह गुप्त रहस्य मैंने आपके सामने निवेदन किया है । अब आपको जो उचित मालूम दे सो करें । यदि आपको मेरे इन वचनों पर विश्वास न हो तो आप इस समय कुमारी के पास से हार मांगे, जो उसने आपको हार दे दिया तो उस दिन के समान आप मुझे सदा के लिए 'झूंठी और ईर्षालु ही समझिए' अन्यथा मेरा कथन सत्य समझकर आप अपने और नष्ट होते राज्य को बचाने का उपाय करें । इत्यादि अनेक असत्य वचनों से राजा को ऐसा कुपित कर दिया कि क्रोधायमान होकर राजा ने तत्काल ही हमें वहां से विसर्जन किया और कुमारी की माता चंपकमाला को कुछ मसवरा करने के लिए बुला भेजा ।

पाठक महाशय! आपके दिल में इस कथानक के मुख्य नायक नायिका महाबल कुमार और मलयासुंदरी का वृत्तांत जानने की अतीव जिज्ञासा पैदा हो रही होगी, इसलिए उसे पूर्ण करने के वास्ते पिछले परिच्छेद में आम के नीचे बैठे हुए महाबल और मलयासुंदरी के पास ही हम इस समय आपको लिए चलते हैं । आठवें परिच्छेद के अंत में आपने महाबल और राजकुमारी की बातें सुनी है ।

पूर्वोक्त विचारकर कुमार ने अपने केशपाश में से एक गुटिका निकाली और उसे उसी आम फल के रस में घिसकर कुमारी के मस्तक पर तिलक कर दिया । उस गुटिका के प्रभाव से मलयासुंदरी का पुरुष रूप बन गया । पुरुष रूप देख महाबल बोला - 'राजकुमारी! जबतक तुम्हारे मस्तक पर किया हुआ यह तिलक मेरे थूक से न मिटा दिया जाय तब तक तुम्हारा यह पुरुष रूप ऐसा ही कायम रहेगा । अभी रात्रि बहुत है । उन्मार्ग से कोई सामने मनुष्य चला आ रहा

मालूम होता है । जब तक उसका भली भांति पता न लग जाय और अबसे जो आगे ऐसे प्रसंग आयेंगे उनमें तुम्हारा ऐसा ही रूप बनाने की आवश्यकता है ।''

मलया – ''राजकुमार! आपको जैसे उचित मालूम हो वैसे करें । मैंने तो यह शरीर जन्मपर्यंत आपको समर्पण किया हुआ है ।''

महाबल – ''तुम्हारा कहना सही है, परंतु इस समय हमें बिल्कुल मौन रहना चाहिए । देखो वह व्यक्ति नजदीक ही आ रहा है । तुम्हें यह बताए देता हूं कि वह मनुष्य चाहे जो हो परंतु तुम्हें सर्वथा निर्भीक रहना चाहिए । इस प्रकार राजकुमारी को धैर्य देकर महाबल सामने से आनेवाले व्यक्ति की ओर देखने लगा । देखते ही देखते वह व्यक्ति शीघ्र गति से बिल्कुल नजदीक आ पहुंचा । नजदीक आने से कुमार को यह मालूम हो गया कि उनके सामने आनेवाला व्यक्ति पुरुष नहीं किन्तु भय से कांपती हुई वह एक युवती स्त्री है ।

पाठक महाशय! अब आप भली प्रकार समझ गये होंगे, कि लक्ष्मीपूंज हार को प्राप्तकर, सौतेली माता कनकवती ने निरपराध मलयासुंदरी को संकट में डालने के लिए सोमा दासी को साथ ले जाकर, महाराज वीरधवल को बनावटी बातों से कोपायमान कर दिया था ।

महारानी चंपकमाला को बुलाकर राजा ने रानी कनकवती से सुनी हुई तमाम बातें कही, परंतु चंपक माला को उन बातों पर बिल्कुल विश्वास न आया। जब राजा ने हार के विषय में सुनाया तो रानी ने यह बात मंजूर कर ली कि हाँ यदि हार उसके पास न मिले तो इन बातों पर विश्वास करने में कोई हरकत नहीं है । रानी का अभिप्राय प्राप्तकर राजा ने उसी वक्त राजकुमारी को बुलवाया और उसके पास से लक्ष्मीपुंज हार मांगा । पहले तो कुमारी से कुछ भी उत्तर न बन सका, परंतु वह कुछ सोच कर बोली, पिताजी! उस हार को मेरे पास से किसी ने चुरा लिया मालूम होता है । कई रोज से ढूँढ़ने पर भी वह नहीं मिलता । यह उत्तर सुनते ही मारे क्रोध के राजा के नेत्र लाल शूर्ख हो गये, होठ फड़कने लगे वह तिरस्कार पूर्वक जोर से बोल उठा – 'पापिनी! मेरे सामने से दूर चली जा, मुझे अपना मुंह न दिखा' तेरे रचे हुए प्रपंचों का मुझे सब पता लग

गया है । इधर रानी चंपकमाला भी तिरस्कार कर उसे फिटकारने लगी । माता सहित पिता को क्रोधातुर देख मलयासुंदरी तुरंत ही पीछे लौट अपने महल में आ गयी । उसका मुख कमल चिंता की छाया से मुरझा गया । वह सोचने लगी – माता पिता को इतना क्रोध करने का क्या कारण होगा? मैंने मन, वचन और शरीर से आज तक कभी भी प्यारे माता पिताओं का अनिष्ट आचरण नहीं किया। मेरे हाथ से भारी से भारी कीमती वस्तु नष्ट होने पर भी पिताजी ने मुझ पर कभी क्रोध नहीं किया? आज यह क्या हुआ? माता पिता दोनों ही कुपित हो रहे हैं? उनके इस असत्य कोप का क्या कारण है यह मालूम नहीं होता । न जाने अब इस भयानक क्रोध का क्या परिणाम उपस्थित होगा? इसी सोच विचार में वह हृदय से झुरती हुई, मानसिक वेदना सहन करती हुई अपने कमरे में बैठी रही ।

राजा ने चंपकमाला से कहा – "देवी! इस दुष्ट हृदय वाली कुमारी ने सचमुच ही लक्ष्मीपूंज हार महाबल को दे दिया है । कनकवती का कथन असत्य नहीं है; स्वयंवर में आने वाले अनेक राजकुमारों से यह दुष्ट लड़की मुझे मरवा डालेगी । हमने इसे कितना लाड़ लड़ाया? इसके स्वयंवर के लिए कितना महान् खर्च करके मंडप तैयार किया है, यह पुत्री के रूप में जन्म लेनेवाली हमारी कोई पूर्व की दुश्मन है । सचमुच ही अनुरागिनी स्त्री मनुष्य को मृत्यु से बचाती है और विरक्ता स्त्री मनुष्य को मृत्यु के द्वार पर पहुंचाती है। मित्र को शत्रु और शत्रु को भी मित्र बना देती है, इसलिए हे प्रिये! मेरा यह विचार है कि जब तक वे दुश्मन राजकुमार यहां पर न आ पहुंचे तब तक इस दुष्टा कुमारी को यमराज के हवाले कर देना चाहिए । रानी ने कुछ भी उत्तर न दिया। अनेक विचारों में उलझकर रानी के साथ राजा ने कष्ट से रात बितायी । प्रातःकाल होते ही राजा ने कोतवाल को बुलाकर आज्ञा दी कि इस मेरी पापिष्टा कुमारी मलयासुंदरी को यहां से दूर ले जाकर जान से मार डालो । इस विषय में मुझसे बार – बार पूछने या विचार करने की तुम्हें कोई आवश्यता नहीं

इस बात की खबर होते ही बुद्धिनिधान सुबुद्धि नामक प्रधानमंत्री शीघ्र

ही महाराज के पास आया । इस वक्त राजा का क्रोध उग्ररूप को धारण किये हुए था; क्रोध से विकृत बने हुए राजा को देखकर प्रधान मंत्री नमस्कारकर नम्रतापूर्वक बोला – ''महाराज! ऐसा असमंजस और भयानक कार्य करने का क्या कारण है? क्या इस समय कुमारी मलयासुंदरी आपकी वही पुत्री नहीं है जिसके विनयादि गुणों की आप सदैव प्रशंसा किया करते थे? क्या अब वह उसके ऊपर का वात्सल्य आप में नहीं रहा? इस भोली भाली राजकुमारी ने प्राणदंड पाने का ऐसा क्या अपराध कर डाला? महाराज! जो कार्य करना हो उसे दीर्घ दृष्टि से पूर्वापर विचार करके करना चाहिए । अविचारित किये हुए कार्य का परिणाम किसी – किसी समय मरणांत कष्ट से भी अधिक दुःसह्य उपस्थित होता है ।

राजा – ''प्रधान! तुम्हारा कथन बिल्कुल ठीक है; परंतु मैं अविचारित कार्य नहीं कर रहा हूं । बाहर से भोली दीखने वाली इस कुमारी ने हमारा भयंकर अपराध किया है । इसने हमारे वंश को सर्वथा नष्ट करने का प्रपंच रचा है । आज हमें इसकी जालसाजी का पता लगा है; इत्यादि कथनपूर्वक राजा ने कनकवती द्वारा सुना हुआ वृत्तांत मंत्री को कह सुनाया । यह सुनकर मंत्री भी भयभीत हो मौन धारणकर कुछ विचार में पड़ गया । इस बात का निर्णय करने में भी उसकी बुद्धि न चली ।

राजा की आज्ञा पाकर दो चार सिपाहियों को साथ ले कोतवाल राजकुमारी के महल में आ पहुंचा और मंद स्वर से मलयासुंदरी से बोला – 'राजकुमारी! महाराज तुम पर अत्यंत क्रोधित हुए हैं । इस कारण उन्होंने मुझे तुम्हारा वध करने की आज्ञा दी है । हा! पराधीन हतभाग्य, मैं इस समय क्या करूँ? कोतवाल की बात सुनकर मलयासुंदरी के नेत्रों से आंसुओं की झड़ी लग गयी । उसके चेहरे पर दीनता छा गयी और अब मुझे क्या करना चाहिए इस विचार में वह मूढ़ बन गयी । रुके हुए कंठ से कुमारी ने उत्तर दिया – 'कोतवाल! पिताजी का मुझ पर इस भयंकर क्रोध का कारण तुम जानते हो?'' कोतवाल बोला – '' राजकुमारी! मैं इस घटना के रहस्य को बिल्कुल नहीं जानता ।

मलयासुंदरी दुःख से अस्थिर चित्त की अवस्था में होकर बोलने लगी - 'पिताजी! निर्दोष बालिका पर निष्कारण ऐसा प्राणघातक कोप किसलिए? प्यारे पिता! अनेक भूले होने पर भी आज पर्यन्त आपसे ऐसा अविचारित कार्य कभी नहीं हुआ आज आपको क्या किसी ने भरमा दिया है? इस समय पुत्रीपन का निःस्सीम प्रेम कहाँ चला गया? माता चंपकमाला! आज आप भी पत्थर के समान कठोर हृदया बनकर निस्नेहा हो गयी! यदि आपको मुझसे कुछ अपराध ही हुआ मालूम होता है, तो क्या माता - पिता संतान के एक अपराध को क्षमा नहीं कर सकते? मुझ पर असीम प्रेम रखनेवाले हे भ्राता मलयकेतु! क्या ऐसे समय तुम भी मौन धारण किये बैठे हो! इस विषमता का क्या कारण है? इतना भी मुझे नहीं बतलाया जाता? मैंने ऐसा कौनसा भयंकर अपराध किया है जिससे आज तमाम परिवार का मुझ से प्रेम नष्ट हो गया? मैं मानती हूँ आज मेरा पुण्य सर्वथा नाश हो चुका है। इसीसे प्राणों से प्यारी समझने वाला सारा राजकुल आज मुझे दुश्मन समझकर निष्ठुर बन गया है। पूर्वोक्त निष्फल विचारों की उधेड़ बुन में उसने यह निश्चय किया कि एक दफे मैं पिताजी से प्रार्थना करूँ, वे मुझे मेरा अपराध मालूम करें। फिर जो मेरे भाग्य में होगा सो हो। यह सोचकर उसने अपनी वेगवती नामक दासी को बुलाकर अपना सारा अभिप्राय कह सुनाया और अपनी तरफ से प्रार्थना करने के लिए उसे राजा के पास भेजा।

वेगवती - महाराज वीरधवल के पास आकर हाथ जोड़ नम्रतापूर्वक विज्ञप्ति करने लगी "महाराज मलयासुंदरी मेरे द्वारा आपसे हाथ जोड़कर नम्र प्रार्थना करती है कि कृपाकर मुझे यह बतायें कि मुझ हतभागिनी से आपका क्या अपराध हुआ है! यदि मुझे मृत्यु से पहले अपना अपराध मालूम होगा तो मेरे चित्त को संतोष होगा मैं समझूंगी पिताजी ने मुझे मेरे ही अपराध की शिक्षा दी है। आपकी दी हुई प्राणदंड की शिक्षा मुझे शिरोधार्य है, परंतु प्राण त्याग ने से पहले यदि आपकी आज्ञा हो तो अंतिम समय एक दफे आपके और माताजी के दर्शन करना चाहती हूँ। अगर यह बात आपको बिल्कुल मंजूर न हो तो मैं दूर रही हुई ही आपको, माता चंपकमाला और सौतेली माता कनकवती को अंतिम नमस्कार करती हूँ।

राजा – ''पापिष्टा लड़की! अयोग्य कार्यकर के भी मुझसे अपराध जानना चाहती है? मुझे मालूम न था कि तूं ऊपर से भोली देख पड़ती हुई भी भीतर से इतनी गूढ़ हृदय और कपट प्रवीण है । मैं अंदर से विषतुल्य और ऊपर से अमृत के समान उसके मीठे वचन सुनने नहीं चाहता । मैं अब उस दुष्ट का मुंह देखना नहीं चाहता और न ही मुझे उसके इस कपटपूर्ण नमस्कार की आवश्यकता है । जिस तरह कोतवाल कहे उस तरह वह अपने प्राणों को त्याग दे ।

राजा के अंतिम वचन सुनकर वेगवती के दुःख का पार न रहा । उसका हृदय भर आया। आँखों से आँसु बहने लगे परंतु अंत में धीरज धारणकर उसने मलयासुंदरी का महाराज को अंतिम संदेश सुनाया । 'महाराज! अगर आपका यही अंतिम निश्चय है तो मलयासुंदरी गोला नदी के किनारे पर जो पातालमूल नामक अंधकार पूर्ण गहरा कुंआ है उसमें झंपापातकर मृत्यु शरण होगी । इतनी बात कहकर और राजा का उत्तर सुनने की भी प्रतिक्षा न करके वेगवती वहाँ से तत्काल ही वापिस लौट गयी और मलयासुंदरी के पास जाकर उसने सविस्तार तमाम हकीकत कह सुनायी । मलयासुंदरी पर इस समय अकस्मात् विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ने से उसकी यह सच्ची परीक्षा का समय था । उसने जो बाल्यवय में संस्कारी शिक्षण प्राप्त किया था उसके प्रभाव से हिंमत और धैर्य का अवलंबन ले वह अपने ही घोर कर्मों की निंदा करती थी । उसके मुख से निम्न प्रकार के शब्द निकलते थे –

''जो भाग्य करे वह होता है, नहीं होता हृदयचिंतित तेरा हे चित्त! सदा उत्सुक होकर, करता उपाय क्यों बहुतेरा!''

कठिन है बनना मन रे तुझे मरण का सहना दुःख है मुझे ।

मम कुकुर्म पुरातन रोष है, जनक का इसमें कब दोष है ॥

राजा का अंतिम निश्चय सुनकर मलयासुंदरी ने भी धैर्यपूर्वक प्राणत्याग का निश्चय कर लिया। अब वह पंच परमेष्टी मंत्र का जाप करती हुई शहर के बाहर रहे हुए अंध कूप को लक्ष्य में कर निर्भयता से अपने रक्षक पुरुषों के आगे - आगे चल पड़ी। राजकुमारी की यह स्थिति देखकर, आरक्षक लोगों के हृदय में भी दया का संचार होता था। उसके सखीवर्ग की स्थिति बहुत ही करुणा जनक दिख पड़ती थी। वे चौधारा आंसुओं से मुख धोती हुई रुदन करती थीं। हे हृदय! राजकुमारी की ऐसी दशा देखकर भी तूं किस तरह जीवन धारण किये हुए है? हे कुमारी! तेरे मधुर आलाप, सारगर्भित वार्ता और हृदय की सरलता से प्राप्त होनेवाला आनंद अब हम किससे पायेंगी? हे देवी! यह तेरी दशा तेरे बदले हमें क्यों न प्राप्त हो गयी? हे दिव्य गुण धारण करनेवाली, सरल बालिका! तेरे बिना इस शहर में रहना हमारे लिये सर्वथा असंभवित होगा? इस प्रकार बोलकर उसे हृदय से चाहनेवाली उसकी तमाम सखियाँ विलाप करके देखने वाले मनुष्यों को भी रुलाती थीं।

राजा ने अपनी इकलौती कुमारी को गुस्से में आकर मार डालने की आज्ञा दे दी है यह बात फैलने पर शहर में कोलाहल सा मच गया। शहर के बड़े - बड़े आदमी राजा के पास आकर विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगे - "हे नरनाथ! यह क्रोध करने का स्थान नहीं है। बच्चों से अपराध होने पर भी क्या उन्हें प्राणदंड की शिक्षा दी जा सकती है? हे चतुर नराधीश! यदि आपको ऐसा ही अनर्थ करना था तो यह स्वयंवर मंडप का आडंबर किसलिए रचा था? कन्या के विवाह के लिए उत्सुक होकर आये हुए सेंकड़ों राजकुमारों को आप क्या जवाब देंगे? इत्यादि अनेक प्रकार से प्रजा के आगेवानों ने राजा को बहुत कुछ समझाया; परंतु क्रोधान्ध राजा अपने विचार से पीछे न हटा। नगर की औरतें बोलती थीं - हाय, महारानी चंपकमाला कुमारी की माता होने पर भी अपनी संतान पर ऐसा जुल्म करते हुए राजा को मना नहीं करती? जितने मुंह उतनी ही बातें होती थीं, परंतु परिणाम में शून्य ही था।

अनेक राजपुरुषों से वेष्टित राजकुमारी उस अंधकूप के किनारे पर आ

पहुंची । पंच परमेष्ठिमंत्र का शरण लेकर, महाबल कुमार को याद करती हुई और दर्शक जनता के हा – हा कार करते हुए, राजकुमारी ने बिजली की झड़प से उस जलरहित कुंएँ में झंपापात कर दिया । हृदय को विदारण करने वाला यह भयानक दृश्य दयापूर्ण हृदयवाले मनुष्यों से न देखा गया । उनके नेत्रों से चौधार आंसु बहने लगे । बहुत से मनुष्य कन्याघातक कहकर राजा की निंदा करते थे । कितनेक दुर्दैव को उपालंभ देते थे । इस तरह कुमारी के दुःख से दुःखित होकर बड़े कष्ट से रात्रि के समय लोग वापिस अपने घर गये । राजपुरुषों ने भी शहर में आकर राजसभा में विचार मग्न बैठे हुए महाराज वीरधवल को राजकुमारी के अंधकूप में स्वयं झंपापात करने की बात कह सुनायी । कुमारी के मृत्यु का समाचार सुनकर राजा सहकुटुम्ब आनंदित हुआ । वह विचारने लगा– कुमारी की मृत्यु से मेरे राज्य और कुटुम्ब की रक्षा हो गयी । स्वयंवर में बुलाये हुए राजकुमारों को मैं अभी संदेश भेज देता हूँ कि किसी गुप्त रोग के कारण मलयासुंदरी की अकस्मात् मृत्यु हो गयी है; इसलिए आप लोग स्वयंवर में आने का कष्ट न उठावें ।

मलयासुंदरी की मृत्यु से राजकुल में शोक का कुछ भी चिह्न मालूम नहीं देता था । परंतु कभी – कभी दास दासियों का टोला मिलकर आपस में मलयासुंदरी के गुणों को याद कर खेद प्रकट करता था । शहर के भी विशेष हिस्से में यही बात मालूम होती थी । जहां तहां पर स्त्री पुरुष मिलकर कुमारी का शोक प्रकट करते थे । यद्यपि राजा के मन में शोक का लेश भी न था, तथापि रह रहकर कोई अव्यक्त वेदना उसके हृदय को मसोसती थी । उसे लोक लाज का भी भय जरूर था । राजकुटुम्ब में गतरात्रि का कुछ जागरण होने से एवं आज सारे दिन का थोड़ा बहुत खेद होने से ज्यों – ज्यों रात होती गयी त्यों – त्यों राजमहल शांत स्थिति को धारण करता गया । तथापि अकस्मात् ही यह भयानक घटना बनने से इस घटना के साथ संबंध रखनेवाले व्यक्तियों में अभी निद्रादेवी ने प्रवेश न किया था ।

अर्धरात्रि का समय होने आया; सारे महल में शांति मालूम होती थी, इस

समय दो मनुष्यों ने गुप्त वेष में रानी कनकवती के महल में प्रवेश किया। उसके रहनेवाले कमरे के द्वार बंध थे। वे दोनों पुरुष फिरते हुए दूसरे द्वार की तरफ लौटे। दरअसल में रानी के रहने वाले कमरे का यही मूलद्वार था जहाँ पर वे दोनों पुरुष अब आकर ठहरे हैं। दैववशात् कमरे का यह मुख्य द्वार भी उन्हें बंद मिला, परंतु द्वार के छिद्रों से अंदर के दीपक का प्रकाश मालूम होता था। वे दोनों पुरुष चुपचाप वहाँ ही खड़े हो गये और द्वार के छिद्र से दृष्टि लगाकर अंदर देखने लगे।

इस समय कनकवती के आनंद का पार न था। आज उसने उद्भट वेष पहना हुआ था। लक्ष्मीपूंज हार उसके हाथ में शोभ रहा था। हार के सन्मुख देख वह हर्ष के आवेश में आकर बोलती थी – 'हे दिव्यहार! मेरे बड़े सद्भाग्य से ही तूं मेरे हाथ में आया है। तेरे ही प्रताप से मैंने आज अपने मनोवांछित कार्य को सिद्ध किया है। तुझे छिपाकर अनेक प्रपंच के वचनों से राजा को कोपितकर जन्मांतर की वैरन मलयासुंदरी को प्राणदंड दिला उससे बदला लिया है। चिंतामणी के समान तेरी प्राप्ति भी बड़ी दुर्लभ है। अब से राजा को भी मेरे स्वाधीनकर सदैव मुझे इच्छित फल की प्राप्ति कराना। हर्षावेश में कनकवती को इस समय इस बात का ध्यान बिलकुल न रहा था कि मैं क्या बोल रही हूँ और मेरे इस नग्न –सत्यपूर्ण कथन को कोई सुन तो नहीं रहा है?

कनकवती के हाथ में लक्ष्मीपूंज हार को देखकर तथा उसके पूर्वोक्त वचनों को सुनते ही गुस्से के मारे उन दोनों पुरुषों का खून उबलने लगा। शांत हुआ कोपानल फिर से विशेषतया प्रदीप्त हो गया। उनमें से एक राजपुरुष सहसा चिल्ला उठा – हा! पापीनी! तूंने मुझे प्रपंच से फसाकर ठग लिया? निर्दोष पुत्री के पास से हार चुरा कर प्रपंच के द्वारा मुझे कुपितकर निरपराध पुत्री का घात कराया! हे दुष्टा! कनकवती! तूंने मुझे कुटुम्बसहित ठगा? मेरी उस गरीब लड़की ने तेरा क्या अपराध किया था? उसने आज तक कभी किसी चींटी तक को भी तकलीफ न पहुंचाई थी। उसके शिर पर ऐसा घोर कलंक!! इस प्रकार बोलता हुआ, जोर से द्वार को तोड़ता हुआ और ऊंचे स्वर से पुकार करता

हुआ दुःख से विकलित हो वह पुरुष गश खाकर सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

इस आधी रात के समय कनकवती के महल में आनेवाले ये दो पुरुष कौन हैं? इस बात का भेद पाठक स्वयं समझ गये होंगे । गश खाकर जमीन पर मूर्छित अवस्था में गिर जाने वाला स्वयं महाराज वीरधवल है और साथ में दूसरा मुख्यमंत्री सुबुद्धि है । वे रात्रिचर्या देखने के लिए न निकले थे । उन्होंने अभी तक भी सच्चाई का निर्णय करने का प्रयास न किया था; अगर इतनी दीर्घ दृष्टि की होती तो मलयासुंदरी को जीवित दशा में कुंएँ में फेंकवा देने का प्रसंग न आता। वे इस धारणा से कनकवती के महल पर आये थे कि कनकवती ने राज्य पर आक्रमण करने और राजा को मारकर निर्वंश करने का भयंकर खुपिया भेद जानकर राज्य पर महान् उपकार किया है, इसलिए इस समय उसके पास जाकर कुछ विशेष हकीकत जाननी चाहिए और उसका महान् उपकार मानना चाहिए । इसी उद्देश से विशेष रात जाने पर भी मंत्री और महाराज कनकवती के महल पर आये थे । परंतु यहां आते ही कनकवती के उग्र पाप का घड़ा फूट गया । उसके गुप्त प्रपंच का पड़दा फास हो गया । और उसके प्रपंच में फंसकर, पूर्वा पर विचार न कर, रासभवृत्ति करनेवाले राजा वीरधवल के हृदय का भी अंधकार दूर हो गया । राजा की पुकार और जमीन पर पड़ने का शब्द सुनते ही सारे राजमहल में अकस्मात् कोलाहल और हाहाकार मच गया । वहां पर शीघ्र ही अनेक राजपुरुष एकत्रित हो गये और राजा को होश में लाने का उपचार करने लगे।

"हे पथिको! इस अवसर का लाभ उठाकर मैं और मेरी स्वामिनी कनकवती हम दोनों जनीं मृत्यु के भय से पिछली तरफ की खिड़की से नीचे जमीन पर घिसर पड़ी । हमें थोड़ी सी चोट तो जरूर लगी; परंतु मृत्यु भय के सामने वह कुछ भी मालूम नहीं थी । हम वहाँ से भागकर , एक शून्य मकान में जा घूसीं और वहाँ छिपकर पासवाले रास्ते से आते जाते लोगों का वार्तालाप सुनने लगीं ।" इतना कहकर सोमा बोली – "हे कुमारो! अभी तक जो मैंने आपके सामने वृत्तांत कहा है यह सब मेरी नजर से देखा हुआ और स्वयं अनुभव

किया हुआ है । अब इसके बाद मैं जो कुछ कहूँगी वह मैंने छिपकर उस शून्य घर में रहकर लोगों के मुख से सुना हुआ होगा ।'' मलयासुंदरी बोली कुछ हरकत नहीं, फिर राजा की क्या दशा हुई यह सुना ।''

सोमा – ''राजा कुछ देर बाद जागृति में आते ही ऊंचे स्वर से पुकार करने लगा । भय से व्याकुल हो रानी चंपकमाला भी वहाँ पर आ पहुंची और प्रधान से कहने लगी मंत्री! यह प्राणनाशक अकस्मात् दूसरी घटना बनी? अश्रु पात करते हुए सुबुद्धि नामक मंत्री ने राजा के साथ स्वयं देखा हुआ और कानों से सुना हुआ कनकवती का सर्व वृत्तांत महारानी चंपकमाला को कह सुनाया । राजकुमारी की सर्वथा निर्दोषता और कनकवती का प्रपंच जाल मंत्री द्वारा मालूम होने से मलया सुंदरी की मृत्यु के शोक से तमाम लोगों के नेत्रों से जलधार बहने लगी । रानी चंपकमाला राजा के कंठ का अवलंबन ले निर्दोष पुत्री के मृत्यु शोक से करुणस्वर से रुदन करने लगी । इस समय सारे महल में तो क्या सारे शहर में शोक का साम्राज्य छा गया । राजमहल में इतना करुणाजनक रूदन होने लगा कि जो सुनने वाले मनुष्यों के हृदय को रुलाये वगैर न रहता था । विलाप करते हुए राजा और रानी को आश्वासन देते हुए प्रधानमंत्री बोल उठा – ''महाराज! इस तरह रूदन करने से अब कुछ लाभ न होगा । चलो जल्दी उठो; वहां जाकर उस अंधकूप में राजकुमारी को तलाश करें । कदाचित् हमारे पुण्योदय से राजकुमारी उस अंधकूप में जीवित मिल जाय?''

रोना धोना छोड़कर राजा आदि हजारों मनुष्य मध्यरात्रि के समय उस अंधकूप के पास जा पहुंचे । शीघ्र ही बड़ी – बड़ी मशालें जलवाकर प्रकाश सहित उस अंधकूप में मंच द्वारा मनुष्यों को उतारा गया । परंतु चारों तरफ अच्छी तरह तलाश करने पर भी उस अंधकूप में राजकुमारी का चिह्न तक भी मालूम न हुआ । निराश होने के कारण क्रोध से भभकता हुआ राजा वहाँ से वापिस कनकवती के महल में आया । द्वार खुलवाकर, अंदर तलाश की परंतु वहां पर कोई भी दिख न पड़ा । इसलिए महाराज ने राजपुरुषों को आज्ञा दी कि जाओ । उस दुष्टा की तलाश करो; वह दुष्कृत्य करके कहाँ भाग गयी? मालूम होता है; पिछली खिड़की से कूद गयी है । सब जगह तलाशकर, उस

दुष्टा को पकड़ लाओ ।''

हे सत्पुरुषो! राजा वीरधवल की इस समय जो हालत है उसको देखते हुए वह रात्रि के व्यतीत होने तक भी जीवित रह जाय तो बड़ा भाग्य समझो । प्रातःकाल होने पर तो वह अवश्य ही चिता में प्रवेश करके प्राण त्याग करेगा । उधर हमारी खोज में फिरते हुए राजपुरुषों को देखकर कनकवती ने मुझसे कहा - ''अब हम दोनों को एक जगह रहना फायदे कारक नहीं है । यदि राजपुरुष हमें देख लेंगे तो शीघ्र ही मृत्यु के शरण कर देंगे । यों कहकर उसने मेरे पास से लक्ष्मीपूंजहार आदि सारी वस्तुए ले वह अपनी परिचिता मगधा नामा वेश्या के घर चली गयी। वहाँ पर अकेली रहने के लिए हिम्मत न पड़ने से मैं वहाँ से लुकती छिपती इस तरफ चली आ रही हूं ।''

हे पथिको! आपने जो मेरे भय का कारण और मेरा परिचय पूछा था; सो मैंने आपके सामने कह सुनाया । महाबल ''अहो! आश्चर्य की बात? दुष्ट! स्त्रियों के कैसे विचित्र चरित्र होते हैं! निर्दोष कन्यारत्न का नाश कराया! राजा को मरणांतसम कष्ट में डाला और अपने भी सुख का नाशकर, निन्दित होकर देश त्याग किया । धिक्कार है ऐसी दुष्टा स्त्रियों की तुच्छ बुद्धि को!!

पूर्वोक्त प्रकार से मलयासुंदरी के संकट में पड़ने का रहस्योद्घाटन कर सोमा बोली - 'अब रात्रि पूर्ण होने आयी है; इसलिए न जाने मेरे पीछे मेरी खोज में कोई राजपुरुष न आ जाय, अतः मैं अब आगे जाती हूँ' - यों कहती हुई और पीछे की ओर देखती हुई सोमा आगे चली गयी।



◆ *कृष्णजी ने उल्लासपूर्वक महोत्सव कर गजसुकुमाल को श्रीनेमिनाथ भगवंत के पास प्रव्रज्या प्रदान करवाई ।*

गजसुकुमाल मुनि ने श्मशान भूमि पर काउस्सग्ग हेतु आज्ञा मांगी । प्रभु ने आज्ञा दी । मुनि भगवंत ने श्मशान भूमि पर काउस्सग्ग किया ।

श्वसुर सोमिल वहां आता है, मुनि भगवंत को देखकर क्रोधित बनता है। मेरी पुत्री का भव बिगाड़ने वाले को सजा दूँ, इसका फल चखा दूँ । पास में पड़ी हुई मिट्टी से मस्तक पर पाल बांध दी एवं उसमें दहकते अंगारे भर दिये।

मुनि भगवंत समता रस के पान में निमग्न थे । समता रस के नीर में स्नान करते थे । आत्म - रमणता की मस्ती में मग्न थे । देह से पर हो रहे थे। देह से ममता का नाता टूट चुका था । देह जल रहा था, आत्मा पुष्ट बन रही थी । अन्तर्मुहूर्त में क्षपक श्रेणी पर आरोहणकर केललज्ञान एवं केवल दर्शन प्राप्त कर स्व स्थान (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

विचित्र स्वयंवर

सोमा के चले जाने पर कुमार बोला - कुमारी! जिस रोज हमारा प्रथम मिलाप हुआ था उसी दिन से वैर धारण करने वाली तुम्हारी सौतेली माता कनकवती ने मौका पाकर तुम्हें कष्ट में डाला है । हे सुलोचने! कनकवती की दासी सोमा से ही मुझे तुम्हारा अतिकष्ट दायक वृत्तांत मालूम हो गया । अहो! थोड़े ही समय में तुमने मृत्यु के समान कैसा महाभयंकर कष्ट सहा! सुंदरी! उस अंधकूप में झंपापात करने पर और इस समय यहां पर अजगर के मुख से तुम्हारी प्राप्ति का यही कारण मालूम होता है, जब तुमने उस अंधकूप में झंपापात किया तब वहां पर रहे हुए इस अजगर ने तुम्हें मूर्छित अवस्था में पकड़ लिया है । और उस अंधकूप से बाहर निकलने का अवश्य कोई गुप्तमार्ग होगा । उस मार्ग से निकल कर वह शीघ्र ही तुम्हें पचाने के लिए इस आम के वृक्ष से लपेटा देने यहां आया था । मैंने उसके दोनों होठ पकड़कर उसे चीर डाला । और उसके मुख से तुम्हें शीप से मोति के समान निकाल लिया, पास ही में पड़े हुए अजगर को देखकर मलयासुंदरी भयभीत हो उठी । महाबल बोला - "सुंदरी! अब तुम्हें डरने की जरूरत नहीं । ऐसी भयंकर दशा में भी हमारा दुर्घट मिलाप हमारे अनुकूल भाग्य की सूचना करता है ।

अब रात्रि व्यतीत होने आयी थी; पूर्वदिशा ने अपने स्वामी सूर्य का आगमन जानकर लालरंग की साड़ी पहन ली थी । आकाश में टिमटिमाते हुए तेजस्वी तारे धीरे - धीरे छिपते जा रहे थे । वृक्षों पर बैठे हुए पक्षीगण ने चहचहाट शुरू कर दिया था । रातभर के भूखे पशु भी अपने भक्ष्य की गवेषणा में इधर उधर फिरने लगे थे । प्रातःकाल के मंद और शीतल पवन से जंगल के बड़े - बड़े वृक्षों की पत्तियाँ हिल रही थीं । अब सूर्यदेव भी अपनी सुनहरी किरणों से जगत को जागृत करने के लिए उदयाचल पर आ विराजा था।

प्रातःकाल के ऐसे सुहावने समय में महाबल कुमार और पुरुषवेष धारक मलयासुंदरी वहां से उठकर समीपवर्ती गोला नदी पर आये। वहां पर दंतधावन तथा मुख प्रक्षालनादि कर वे वापिस उसी आम वृक्ष के नीचे आये और वहां जाकर उन्होंने कुछ पके हुए आम्रफल खाये । इसके बाद वहाँ से चलकर गोला नदी के किनारे- किनारे वे भट्टारिका देवी के मठ पर आ पहुंचे । वहां पर बहुत समय से खड़ी की हुई काष्टफलियों को देखकर कुमार कुछ सोच विचार के मस्तक हिलाता हुआ राजकुमारी से बोला- ''सुंदरी! मुझे अब से मुख्य तीन काम करने होंगे; जिसमें पहला कार्य तुम्हारे वियोग से मरते हुए तुम्हारे माता पिता के प्राणों की रक्षा करना । दूसरा तुम्हारे माता पिता की संमति से अनेक राजकुमारो के समक्ष स्वयंवर में तुम्हारा पाणिग्रहण करना और तीसरा लक्ष्मीपूंज हार को स्वाधीनकर माता को देकर, उनके प्राण बचा के उनके समक्ष की हुई अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करना । सुंदरी! इन तीनों कार्यों में मुझे तुम्हारी पूर्ण सहायता लेनी होगी । लक्ष्मीपूंज हार को स्वाधीन करना यह कार्य तुम्हें अपने जिम्मे लेना होगा । यह तुम्हारा पुरुषवेष अभी कुछ समय तक ऐसा ही रखना पड़ेगा । तुम्हें यहां से मगधावेश्या के घर जाना चाहिए । क्योंकि अभी तक कनकवती वहां पर ही होगी । वहां जाकर तुम्हें ऐसा आचरण करना चाहिए कि जिससे कनकवती के पास रहा हुआ वह लक्ष्मीपूंज हार तुम्हारे हाथ आ जायें। एक बात विशेषतया ध्यान रखना, नगर में इस तरह प्रवेश करना कि कहीं पर राजपुरुष तुम्हारी और विशेष ध्यान से न देख पावे। मगधावेश्या के घर जाकर आज की सारी रात तुमने कनकवती और हार की खोज में निकालनी। कल का सारा दिन भी वहां पर ही बिताना और संध्या के समय वापिस यहां ही आना। मैं भी निर्धारित कार्य यथोचित करके वापिस इसी भट्टारिका के मंदिर में कल शाम को आऊंगा । दोनों का कल संध्या के समय यहां पर ही मिलाप होगा । मैं यहां से इस वक्त स्मशान भूमि की ओर जाता हूं, क्योंकि तेरे वियोग से दुःखित हुए तेरे माता पिताओं का रक्षण करना यह हमारा पहला कर्तव्य है । तुम्हारे हाथ में जो यह नामांकित अंगुठी है; यह तुम मुझे दे दो, क्योंकि शहर में इसे तुम्हारे हाथ में देख चोर की भ्रांति से तुम्हें कोई उपद्रव न कर सके ।''

राजकुमारी ने महाबल की तमाम बातें विनीत भाव से ध्यानपूर्वक सुनीं। कुमार का सहवास न छोड़ने की इच्छा होते हुए भी उसे मुद्रारत्न देकर उसने उसकी तमाम बातों को शिरोधार्य किया। अब वे अपने - अपने कार्य की सिद्धि के लिए दोनों वहां से चल दिये। रास्ते में चलते हुए महाबल विचारने लगा- 'स्वयंवर में अपनी - अपनी सेना सहित अनेक राजकुमार आयेंगे, उस समय एक साधारण पथिक के समान स्वयंवर में मेरा प्रवेश होना भी असंभव है। उसके पिता की सम्मति से राजकुमारी के साथ पाणिग्रहण करना तो दूर रहा परंतु इस दशा में एकाकी उन राजकुमारों की पंक्ति में जाकर बैठना भी दुष्कर होगा; इसलिए मुझे ऐसे समय अपने कार्य को सिद्ध करने के लिए कुछ प्रपंच अवश्य रचना पड़ेगा। जो कार्य बल से नहीं होता वह बुद्धि प्रयोग से सुलभता पूर्वक हो सकता है। इत्यादि विचारों की उलझन में महाबल आगे बढ़ा जा रहा था, इतने में ही एक वटवृक्ष के नीचे उसने एक हाथी बंधा देखा। उस हाथी के पास कई एक राजपुरुष उसकी लीद को पानी में धो धोकर छलनी में छान रहे थे, यह देख महाबल ने उसका कारण पूछा - राजपुरुषों ने उत्तर दिया - "महाशय जो! कल बहुत से लड़कों के साथ यहां पर राजकुमार आये थे उस समय एक गन्ने में सुवर्ण की जंजीर लपेट कर वे यहां खेलने लगे। गन्ना हाथी के पास पड़ जाने से उसने सोने की जंजीर सहित उस गन्ने को उठाकर खा लिया। अब उस जंजीर को पाने के लिए राजा की आज्ञा से हम लोग हाथी की लीद को पानी से धोकर छान रहे हैं। यह बात सुनकर महाबल कुमार ने उनकी आंख बचाकर एक घास का पूला उठा उसमें राजकुमारी की यह नामांकित सुवर्ण मुद्रिका (अंगुठी) डालकर पूला हाथी के सामने फेंक दिया। उस पूले को जब हाथी ने अपनी सूंड से उठाकर मुंह में डाल लिया तब महाबल वहां से चल पड़ा।

लगभग एक पहर दिन चढ़ चुका था। इस समय गोला नदी के किनारे हजारों मनुष्यों का जमघट लगा था, पास में ही एक चिता बनी हुई थी। उसमें से मंद - मंद धूम्र की शिखा काले आकाश की श्यामता में वृद्धिकर रही थी। इस समय हाथ ऊँचा किये हुए एक सिद्ध ज्योतिषी उन लोगों के जमघट की तरफ

दौड़ा हुआ आता मालूम दिया । वह जोर – जोर से चिल्ला रहा था, ठहरो! ठहरो! साहस मत करो! राजकुमारी मलयासुंदरी अभी जीवित है । कानों को अमृत के समान उस सिद्ध ज्योतिषी के वचन सुनकर उस भीड़ में से कई लोग उसके सन्मुख दौड़े और उसे और भी जल्दी आने के लिए हाथों का इशारा करने लगे । तमाम लोगों की नजर उस आगंतुक ज्योतिषी की तरफ ही लगी हुई थी। उसके नजदीक आते ही उत्सुकता के साथ कई आदमी बोल पड़े, हे महानुभाव! क्या राजकुमारी कहीं जीवित है?

सिद्ध – ''हाँ हाँ राजकुमारी जीवित है और वह सुख में हैं'' यह सुन हर्षित हो भीने हुए कपड़े धारण किये हुए महाराज वीरधवल और रानी चंपकमाला आतुरता से बोले – ''क्या सच है हमारी पुत्री मलया जीवित है?''

सिद्ध – ''महाराज! राजकुमारी कुएँ में पड़ने से मरी नहीं, वह अभी जीवित है । मैं आपको सब कुछ बतलाऊंगा, आप पहले पानी से इस चित्ता को ठंडी करा दें । राजा की आज्ञा न होने पर भी कई राजपुरुषों ने चिता को ठंडी कर डाली । ज्योतिषी बोला – ''महाराज! मैं जो कहूँगा उसमें आप पूर्ण विश्वास रखें । मैंने अष्टांग निमित्त शास्त्र का खूब अभ्यास किया है । अतः मैं अपने अचूक निमित्त ज्ञान से ठीक कह रहा हूँ कि आप धैर्य धारण करें व्याकुलता को छोड़कर स्वस्थ हो जायें, मलयासुंदरी जीवित है और वह आपको अवश्य मिलेगी । सिद्धज्योतिषी के अमृतमय वचन सुनकर शांत हो राजा बोला – ''निमित्तज्ञ महाशय! क्या मेरा इतना पुण्य बाकी है कि यमराज के उदर समान उस अंधकूप में फेंक दी हुई अपनी निर्दोष पुत्री को फिर से मैं इन आंखों से देख सकूं? मैंने कल रात को ही उसे उस कुएँ में तलाश कराया, परंतु वहां पर उसका पदचिह्नतक भी मालूम न हुआ, इसलिए मालूम होता है उसे अवश्य ही किसी हिंसक प्राणी ने खा लिया होगा? हाय! संतान घातक पापी को मरण के शरण से आश्वासन दे के क्यों रोकते हो?

सिद्धज्योतिषी – ''राजन्! आज जेठ महीने की कृष्णा द्वादशी है । आज से तीसरे दिन अर्थात् चतुर्दशी को जब अलग – अलग देशों के अनेक राजकुमार

आकर स्वयंवर मंडप में बिराजमान हुए होंगे; उस समय हजारों लोगों के देखते हुए दुपहर के बाद अनेक प्रकार के वस्त्रालंकारों से विभूषित राजकुमारी का आप सबको दर्शन होगा। राजन्! आप उत्साहपूर्वक स्वयंवर मंडप तैयार करावें। देश देशांतर से आनेवाले राजकुमारों को कुमारी के मर जाने की आशंका से मत रोकिए। यदि आपको मेरे कथन पर विश्वास न आता होतो ज्ञान दृष्टि से देखकर अपने वचनों की प्रतीति दिलाने के लिए आपकी मर्जी हो तो मैं कुछ प्रमाण भी बतला सकता हूँ। राजा की सम्मति होने से सिद्धज्योतिषी कुछ देर ध्यानस्थ रहकर बोला – ''महाराज! राजकुमारी के हाथ का नामांकित मुद्रारत्न कल ही आपके हाथ में आना चाहिए। चतुर्दशी के दिन प्रातःकाल में नगर के पूर्व दरवाजे के पास राजकुमारों की परीक्षा के लिए लगभग छह हाथ प्रमाण लंबा और अनेक प्रकार के रंग विरंगो से चित्रित एक स्तंभ कहीं से आपकी गोत्रदेवी लाके रखेंगी। वह स्तंभ आपको स्वयंवर मंडप में स्थापन करना होगा; उसके पास वज्रसार नामक धनुष जो तुम्हारे घर मौजूद है बाण सहित पूजनकर रखना होगा। उस धनुष पर बाण चढ़ाकर जो मनुष्य उस स्तंभ को भेदन करेगा वही राजकुमारी का पाणिग्रहण करेगा। उस स्तंभ की कुछ पूजन विधि भी करनी होगी। हे राजन्! ये तमाम बातें मैंने अपने ज्योतिष ज्ञानबल से जानकर बतलायी है। मेरे बतलाये हुए इन प्रमाण या निशानियों में फर्क पड़ने पर आप मेरे कथन में अविश्वास कर सकते हैं।

सिद्ध ज्योतिषी ने पूर्वोक्त तमाम बातें ऐसे ढंग से कहीं जिससे राजा और वहां पर रही हुई समस्त जनता के दिल पर उसका बड़ाभारी प्रभाव पड़ा। राजा के हृदय में विश्वास जमने के साथ ही जनता को इतना आनंद हुआ कि हजारों मनुष्य हर्षित हो मुक्त कंठ से उस सिद्ध ज्योतिषी की प्रशंसा करने लगे और मारे खुशी के लोगों ने अपने शरीर से कीमती वस्त्राभरण उतारकर उसके सामने ढेर लगा दिया। सब लोग हाथ जोड़कर उस निमित्तज्ञान शिरोमणि सिद्धज्योतिषी से बोले-''महानुभाव! आप कृपा कर हमारी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें। इस समय अपने जो हम पर उपकार किया है, उसके बदले में यदि

हम आपको अपना सर्वस्व भी दे डालें तो भी वह कम होगा'' सिद्ध ज्योतिषी बोला - ''सज्जनो! मैं तुमसे प्रत्युपकार में एक कौड़ी तक न लूंगा । क्योंकि उपकार के बदले में यदि कुछ ले लिया जाय तो वह उपकार कैसा? सिद्ध ज्योतिषी के निःस्पृह वचन सुनकर राजा तथा प्रजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्हें उसके वचनों पर विशेष श्रद्धा जम गयी । राजा बोला - ''सिद्धज्योतिषी! स्तंभ के पूजन का आप जो कुछ विधि बतलाते हैं वह सब कुछ आपको ही करना होगा । जब तक आपके कथनानुसार तमाम बातें न मिलेंगी तब तक आपको मेरे पास ही रहना होगा । सिद्धज्योतिषी ने महाराज वीरधवल की आज्ञा शिरोधार्य की। महाराज वीरधवल ने विशेष आश्चर्य से पूछा, ज्ञानीमहाशय! आशाजनक ये तमाम बातें तो आपने हमें बतलायीं परंतु ज्ञान दृष्टि से देखकर कृपाकर यह भी बतलाइए कि मेरी पुत्री मलयासुंदरी का पाणिग्रहण किसके साथ होगा? सिद्धज्योतिषी कुछ देर ध्यानस्थ सा रहकर गंभीरता से बोला - पृथ्वीस्थानपुर के नरेश महाराज सूरपाल का पुत्र महाबल कुमार आपकी पुत्री मलयासुंदरी का पाणिग्रहण करेगा । वर कन्या का योग्य मिलाप होगा यह समझकर वहां पर रहे हुए तमाम लोग सिद्धज्योतिषी के अद्‌भुत ज्योतिषज्ञान की प्रशंसा करने लगे ।

अब पूर्ण मध्याह्न का समय होने आया था । अतः सुबुद्धि मंत्री ने महाराज वीरधवल से हाथ जोड़कर प्रार्थना की । ''महाराज! अब समय बहुत हो गया। आपको राजमहल में पधारना चाहिए ।'' मंत्री के वचन सुन सिद्धज्योतिषी को साथ ले महाराज वीरधवल ने बड़े समारोह के साथ याचकों को दान देते हुए नगर में प्रवेश किया । स्नानादि से निपटकर महाराज ने प्रथम सिद्ध ज्योतिषी को भोजन कराकर फिर आप भोजन किया । फिर ज्योतिषी के साथ वार्तालाप करते हुए दिन के दोनों पिछले पहर और कुछ निद्रा लेने पूर्वक सारी रात्रि का समय राजा ने सानंद व्यतीत किया । प्रातःकाल होते ही हाथी की लीद छानने वाले मनुष्य महाराज के पास आकर हाथ जोड़ निम्न प्रकार से निवेदन करने लगे ।

महाराज! हम विशेष कुछ नहीं जानते, हाथी की लीद छानते हुए उसमें

से राजकुमारी की यह नामांकित अंगूठी हमें मिली है । यों कहकर उन्होंने वह नामांकित अंगूठी महाराज के हाथ में समर्पण की । राजा कुमारी का वह मुद्रारत्न देख मस्तक हिलाने लगा और निर्निमेष दृष्टि से उस सिद्धज्योतिषी की ओर देखने लगा । यह देख उत्साहपूर्वक हिम्मत से सिद्धज्योतिषी बोला- 'महाराज! ज्ञानी का बतलाया हुआ भविष्य कभी अन्यथा नहीं होता ।'

लंबी सांस लेते हुए राजा ने कहा - 'ज्ञानी महाशय! कुमारी का यह मुद्रारत्न मदोन्मत्त हाथी के पेट में किस तरह गया होगा? इससे मुझे निराशाजनक शंका पैदा होती है । सिद्धज्योतिषी बोला - ''राजन्! हाथी के पेट में मुद्रारत्न जाने का रहस्य मेरे ज्ञान में स्पष्टतया मालूम नहीं होता, यथापि यह सर्वप्रभाव आपकी कुलदेवी का ही मालूम होता है । यह बात सुनकर राजा को हर्ष के साथ संतोष पैदा हुआ और उसने इस प्रमाण के मिलने पर स्वयंवर मंडप की तमाम तैयारी उत्साहपूर्वक प्रारंभ कर दी । स्वयंवर मंडप तो प्रायः प्रथम ही संपूर्णसा तैयार हो चुका था, परंतु बीच में इस दुर्घटना का विघ्न पड़ने के कारण कुछ थोड़ा सा काम शेष रह गया था, वह अब मुद्रारत्न की प्राप्तिजन्य प्रतीति से पूर्ण होने लगा । दूसरी तरफ राजा और राजकुमारों के ठहरने के लिए निवास स्थान भी तैयार कराये गये । स्वयंवर मंडप की सर्व तैयारियाँ होती हुई देखकर शहर के बहुत से मनुष्य तरह - तरह की बातें करते थे । देखो! राजा की कितनी मूर्खता है? कन्या को मरवाकर स्वयंवर मंडप रचा रहा है । यदि कदाचित् ज्योतिषी के कहे मुजब राजकन्या न मिली तो स्वयंवर में आये हुए राजकुमारों को वह क्या उत्तर देगा? इससे देश भर में राजा की कितनी लघुता होगी इस बात का उसे कुछ खयाल है? अगर ऐसा हुआ तो निराशा और अपमान से क्रोधित हो देश देशांतर से आये हुए वे राजकुमार राजा को कुछ उपद्रव न करेंगे? कोई उत्तर देता भाई! इस समय इस विषय में युक्तायुक्त कुछ नहीं कह सकते । समय आने पर सब कुछ देखा जायगा ।

संध्या के समय चारों दिशाओं से अनेक राजा और राजकुमार अपने -

अपने परिवार सहित चंद्रावती में आने लगे । महाराज वीरधवल ने भी उन सबको सन्मानपूर्वक पृथक् - पृथक् ठहरने के स्थान समर्पण किये । सिद्धज्योतिषी ने राजा से कहा - ''राजन्! मुझे एक मंत्र साधना है, वह आधा तो सिद्ध हो चुका है, परंतु आधा सिद्ध करना बाकी रहा है । यदि वह शेष रहा हुआ मंत्र आज रात को सिद्ध न किया जाय तो मेरा कार्य सिद्ध होना असंभवित है, इसलिए उस मंत्र को सिद्ध करने के वास्ते आज की रात मुझे आपकी आज्ञा मिलनी चाहिए । प्रातःकाल होते ही मैं आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊंगा । राजा ने खुश होकर सिद्धज्योतिषी को शेष मंत्र साधने की आज्ञा देखकर कहा - ''मंत्र साधन के लिए जो कुछ उपयोगी वस्तु या द्रव्य की आवश्यकता हो सो जरुर साथ लेते जाइए । राजा के कहने से थोड़ा सा द्रव्य साथ ले सूर्यास्त होते ही सिद्ध ज्योतिषी वहां से बाहर निकल गया । अब उसके गये बाद आशा निराशा जनक अनेक प्रकार की विचारतरंगों में गोता खाते हुए राजा ने बड़े कष्ट से रात बितायी ।

प्रातःकाल में शहर के द्वार खुलते ही सिद्धज्योतिषी राजमहल में महाराज वीरधवल से आ मिला । उसे देखकर महाराज वीरधवल के हर्ष का पार न रहा और वह उत्सुकता पूर्वक बोल उठा - ''महानुभाव! ज्ञानी! तुम्हारा मंत्र सिद्ध हो गया?'' सिद्धज्योतिषी बोला - ''महाराज! वह कोई साधारण मंत्र नहीं है । बड़ा दुःसाध्य है । उसका बहुत सा अंश तो सिद्धकर आया हूं, परंतु कुछ हिस्सा सिद्ध करना बाकी रहा है । मैं कल संध्या समय आपको प्रातःकाल आने का वचन दे गया था, इसी कारण और आप अधीर न हों इसीलिए मुझे दूसरे काम की परवा न करके आपकी सेवा में उपस्थित होना पड़ा । अब स्तंभ का अर्चनविधि कर शेष रहे मंत्र की सिद्धि के लिए मुझे वापिस जाना पड़ेगा । यह सुनकर प्रसन्न हो महाराज वीरधवल मुक्तकंठ से सिद्ध ज्योतिषी की प्रशंसा करने लगा और मन ही मन विचारने लगा 'अहो! बेचारा सिद्धज्योतिषी कैसा परोपकारी है? सचमुच ही ऐसे ज्ञानवान परोपकारी मनुष्य अपने कथन किये वचन को पालन करने में बड़े तत्पर होते हैं, दूसरे के कार्य के वास्ते निष्कारण

इस तरह कष्ट उठाने वाले संसार में विरले ही मनुष्य होते हैं । इस प्रकार जब राजा सिद्धज्योतिषी की मन ही मन प्रशंसा कर रहा था ठीक उसी समय स्तंभ की तलाश में नगर से बाहर भेजे हुए राजपुरुष वहां पर आ पहुंचे । और राजा से हाथ जोड़कर कहने लगे – ''महाराज! आप की आज्ञा पाकर स्तंभ की शोध में हम शहर से बाहर गये थे, वहां पर तलाश करते हुए दरवाजे से बायी तरफ किले के कोनें में विचित्र चित्रों से चित्रा हुआ एक महान् स्तंभ सीधा खड़ा देखने में आया है । यह बात सुनते ही सिद्ध पुरुष के ज्ञान की प्रशंसा करता हुआ महाराज वीरधवल सिद्ध ज्योतिषी और उन राजपुरुषों को साथ ले नगर से बाहर स्तंभ के पास आया । उस विचित्र काष्ट स्तंभ को देखकर सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ । वे सबके सब आँखें फाड़कर उस स्तंभ को देखने लगे । कितने एक प्रधान पुरुष उस स्तंभ को हाथ लगाकर देखने के लिए उत्सुक हुए, परंतु सिद्धज्योतिषी ने शीघ्र ही आगे आकर वैसा करने से उन्हें रोक दिया, और कहा – 'बिना स्नान किये यदि कोई भी मनुष्य इस स्तंभ को हाथ लगायगा तो राजकुल की कुलदेवी कोपायमान हो जायगी । सिद्ध ज्योतिषी के कहने से राजा आदि तमाम प्रधान पुरुष पीछे हट गये । अब स्नानकर पुष्पादि पूजा की सामग्री मंगवाकर सिद्धज्योतिषी ने स्वयं स्तंभ की पूजा प्रारंभ की । उसने पद्मासन लगाकर ध्यानस्थ के समान बैठ हुंकार आदि मंत्र का जाप शुरू किया । कुछ देर बाद गायन और नृत्यादि संगीत प्रारंभ करवाया।

इस प्रकार लगभग डेढ़ प्रहर दिन चढ़ने तक पूजन विधि चलता रहा । इसके बाद चार बलवान पुरुषों को स्नान कराकर उनके गले में सुगंधित पुष्पों की माला पहनाकर उनसे वह स्तंभ उठवाकर राजा आदि तमाम मनुष्यों के साथ सिद्ध ज्योतिषी नगर की तरफ चल पड़ा । स्तंभ के आगे नाच और गान हो रहा था; बंदीजन जय जय की ध्वनि कर रहे थे । इस तरह आदर और सन्मान पूर्वक वह स्तंभ स्वयंवर मंडप में लाया गया । वहां पर छह हाथ की लंबी एक शिला मंगायी गयी और उसे जमीन में सीधी गड़वादी । सिद्ध ज्योतिषी के कथनानुसार उस शिला के आधार से स्तंभ को बड़ी हिफाजत के साथ सीधा खड़ा किया

गया। शिला के पश्चिम की और वज्रसार धनुष बाणसहित रखा गया । दक्षिण और उत्तर विभाग में स्वयंवर में आये हुए राजा और राजकुमारों के सिंहासन जमाये गये । मंडप में गांधर्वो ने मधुर स्वर से संगीत शुरु किया । नाचनेवाली युवतियों ने ताल मान के साथ नृत्य प्रारंभ किया । इस समय धनुष और बाण का पूजनकर सिद्धज्योतिषी ने राजा से स्वयंवर में तमाम राजकुमारों को बुलवा लेने की सूचना की। राजा के निमंत्रण करने पर तमाम राजकुमारादि स्वयंवर मंडप में आकर, प्रथम से नियुक्त किये हुए अपने - अपने सिंहासनो पर बैठ गये। सबके साथ में अपनी - अपनी योग्यता के अनुसार परिवार भी था । महाराज वीरधवल को राजकुमारों को यथायोग्य स्थान देने और उनका सन्मान करने में व्यग्र देख सिद्ध ज्योतिषी एकाएक वहां से गुम हो गया।

जिस वक्त स्वयंवर में आनेवाले राजा व राजकुमारादि अपने - अपने सिंहासनों पर परिवार सहित आ बैठे उस वक्त महाराज वीरधवल ने पीछे लौट के देखा तो सिद्ध ज्योतिषी को वहां पर जब नहीं देखा तब राजा ने उसे अपने राजपुरुषों से सब जगह तलाश कराया, परंतु कहीं पर भी उसका पता न लगा। विचार में पड़े हुए राजा को कुछ देर बाद याद आया कि वह अपने अर्धसाधित मंत्र को सिद्ध करने गया होगा । सिद्ध ज्योतिष की कथन की हुई तमाम बातें अभी तक पूरी हुई है; परंतु उसने जो यह कहा था; कि राजकुमारी का पाणिग्रहण पृथ्वी स्थानपुर के नरेश शूरपाल का पुत्र महाबल करेगा । यह बात अभी तक नहीं मिली । किसी कारण इस स्वयंवर महोत्सव में वह यहां पर नहीं आ सका होगा । जब वह बतलाया हुआ कुमार ही यहां पर नहीं आ सका तब फिर वह मेरी कन्या का पाणिग्रहण किस तरह करेगा? राजा इन्हीं विचारों की उलझन में पड़ गया । इधर अपने - अपने स्थान पर स्वयंवर में बैठे हुए राजकुमार राजकन्या को वहां पर न देखकर और किसी के द्वारा यह सुनकर कि राजकुमारी को राजा ने स्वयं अंधकूप में डलवा दिया है, वे परस्पर वार्तालाप करने लगे, क्यों भाई! आप किसलिए यहां पधारे हैं? स्वयंवर मंडप में बैठकर किस लिए मूछों पर ताव दे रहे हैं । जिसकी आशा में आप यहां पधारे हैं, उसे

तो राजा ने कुएँ में फिकवा दिया है । उठो किसका पाणिग्रहण करोगे? क्या यह मंडप रचकर स्वयंवर के बहाने हमें यहां पर बुलवा कर राजा ने हमको मूर्ख तो नहीं बनाया? इत्यादि बातें कहकर वे परस्पर एक दूसरे का मन उत्तेजित करने लगे ।

इसी समय महाराज वीरधवल की आज्ञा से एक राज पुरुष ने खड़े होकर निवेदन किया। दुर्धर बाहुबल धारण करने वाले राजा महाराजा और राजकुमारो! आप सावधान होकर सुनें, यह जो आप लोगों के सामने वज्रसार नामक धनुष रखा है । इस पर लीला पूर्वक प्रत्यंचा चढ़ाकर, दृढ़ नाराच के एक ही प्रहार से दो हाथ प्रमाण इस स्तंभ के अग्र भाग को भेदकर, जो बलवान राजा या राजकुमार इसके दो हिस्से कर देगा वही कहीं से भी इसी समय प्रकट होने वाली राजकुमारी मलयासुंदरी का पाणिग्रहण करेगा, इस तरह हमें हमारी गोत्र देवी ने कहा हुआ है । इसलिए हे सामर्थ्यवान् राजकुमारों! आप इस स्तंभ को भेदन करने का प्रयत्न करें । उस राजपुरुष के वचनों से प्रेरित हो महान् उत्साही लाट देश का नरेश खड़ा हुआ, परंतु धनुष्य की दुर्धर्षता देख हिंमत हार कर वापिस अपने आसन पर बैठ गया ।

चारण की प्रेरणा से चौल देश के राजकुमार ने अपने आसन से उठकर जमीन पर पैर तो रखा परंतु वज्रसार धनुष की उत्कटता देखकर उसके मुख पर ग्लानि छा गयी अतः सबकी हंसी पूर्वक उसे वापिस अपने स्थान पर बैठ जाना पड़ा ।

आमर्ष से उठा हुआ गौड़ देश का राजा धनुष को हाथ में उठाते ही उसके बोझ से जमीन पर गिर पड़ा, यह देख सभा में बैठे हुए समस्त राजकुमार तालियां बजाने लगे । इससे शर्मिन्दा होकर गौड़ देश के नरेश को भी नीचा मुंहकर अपने स्थान पर बैठ जाना पड़ा ।

कर्नाटक देश के राजकुमार ने जोश में आकर धनुष को उठा तो लिया, परंतु उस पर बाण चढ़ाते ही वह झुककर जमीन पर गिर गया । इस प्रकार बहुत

से राजा व राजकुमारों का अपमान देख कितनेक तो अपने आसन से उठे तक नहीं । कितने ही लक्ष्य से भ्रष्ट हुए, कई ने स्तंभ पर बाण भी मारा परंतु स्तंभ के दो भाग न हुए । अनेक राजकुमार अपने उद्देश की पूर्ति में असफल हो हारे हुए पहलवान के समान लज्जित होकर चुपचाप अपने स्थान पर जा बैठे । यह दृश्य देखकर महाराज वीरधवल चिंता समुद्र में गोते खाने लगा । वह सोच रहा था कि अभी तक कन्या प्रगट नहीं हुई, इससे लोगों में मेरी बड़ी भारी हंसी और अपमान होगा ।

राजा वीरधवल को चिंतातुर देख मंडप में वीणा बजाने वालों में से एक युवक वीणा बजाता हुआ उठा और वह स्तंभ के पास आ खड़ा हुआ । उसने अपनी वीणा वादन की कला से सारी सभा को मोहित कर दिया, फिर धनुष को हाथ में लेकर वह महाराज वीरधवल से बोला- 'राजन्! अब आप मेरा सामर्थ्य देखें' यों कह उसने शीघ्र ही धनुष पर बाण चढ़ा दिया। उस वीणा वादक के हाथ में धनुष बाण देखकर सारी सभा में कोलाहल मच गया । बहुत से मनुष्य उसे धनुष बाण जमीन पर रख देने के लिए बोलने लगे । परंतु उसने सबकी बातें सुनी न सुनी कर धनुष पर एक टंकारव किया और उस स्तंभ के मर्म को जानने के कारण स्तंभ के जोड़ पर जोर से बाण मारा । स्तंभ पर बाण लगते ही उसके दोनों संपुट एक साथ ही खुल गये और उसके बीच से अकस्मात् राजकुमारी प्रकट हो गयी ।

पाठक महाशय! आपके दिल में इस बात को जानने की जिज्ञासा पैदा हुई होगी कि वह वीणा - वादक कौन है? और इन तमाम कार्यों की योजना करानेवाला वह सिद्धज्योतिषी जो इस समय गुम है कौन था? आपकी इस उत्कंठा को शांत कराने के लिए इस विषय का कुछ थोड़ा सा खुलासा हम यहाँ पर दे देते हैं । वह अन्य कोई नहीं था परंतु इसी कथानक का मुख्य पात्र महाबल कुमार ही है । कुमारी के हाथ की अंगुठीवाला घास का पूला हाथी के मुख में देकर आगे चलते हुए अपने आपको छिपाने के लिए महाबल ने सिद्ध ज्योतिषी का वेश धारण किया था; और उसी वेष के द्वारा उसने राजा को

मृत्यु के मुंह से बचाया था । उस समय सिद्ध ज्योतिषी के सिवा मलया सुंदरी जीवित है; अन्य किसी के इस वचन पर राजा को विश्वास आना अशक्य था । मलयासुंदरी को वैसी ही दशा में महाराज वीरधवल को सुपूर्दकर देना यह भी उस अकेले युवक के लिए हितकर न था और वैसा करना मलयासुंदरी के लिए प्रतिष्ठा या गौरव बढ़ानेवाली बात न थी। इत्यादि अनेक बातों पर पूर्वापर विचारकर समयानुसार उचित समझकर ही राजकुमार ने सिद्धज्योतिषी का रूप धारण किया था । अपना वह प्रपंच प्रकट न हो या उस परिस्थिति में रहने से राजकुमारी का पाणिग्रहण करना कठिन होगा इस कारण या वह स्वयंवर मंडप में से गुम होकर और दिव्य प्रभाववाली गुटिका के प्रयोग से अपना रूप परिवर्तन कर वीणा बजानेवाले के वेष में मंडप में आ बैठा था । दूसरे अन्य किसी रूप में उसे सभा में स्थान मिलना मुश्किल था। तथा उसने राजकुमारी के साथ प्रथम से ही यह संकेत भी किया हुआ था कि जब मैं वीणा बजाऊँ तब तुम यंत्र प्रयोग से लगायी हुई अंदर की कील को खींच लेना । इससे स्तंभ की दोनों फाड़ें स्वयं खुल जायगी । इत्यादि कारणों से उसे वीणा वादक का वेष धारण करना पड़ा था । साथ में कुछ भी परिवार न होने के कारण अनेक राजकुमारों से भरे हुए स्वयंवर मंडप में एकाकी असली रूप में प्रकट होना योग्य भी न था ।

मलयासुंदरी को देखकर सारी राजसभा आश्चर्य में पड़ गयी । उसके शरीर पर कपूर, चंदन, कस्तूरी आदि सुगंधित पदार्थों का विलेपन किया हुआ था । सुंदर वस्त्र और दिव्य अलंकार पहने हुए थे । उसके वक्षस्थल पर लक्ष्मीपूंज हार शोभ रहा था । मुख में पान का बीड़ा और दाहिने हाथ में वरमाला धारण की हुई थी । मलयासुंदरी को अकस्मात् इस अलंकृत अवस्था में देख महाराज वीरधवल और रानी चंपकमाला के हर्ष का पार न रहा । महाराज वीरधवल हर्ष के आवेश में राजकुमारी के नजदीक आ उत्सुकता से पूछने लगा – 'प्यारी, पुत्री मलया । तूं इस काष्ठ स्तंभ में कब और किस तरह आ गयी थी?

शुभाशुभ कर्म के परिणाम को जाननेवाली और इसी कारण पिता को नहीं परंतु अपने ही अशुभकर्म को दोष देनेवाली मलयासुंदरी ने पिता की ओर

स्नेहभरी दृष्टि से देखते हुए उत्तर दिया- 'पिताजी! जिसकी कृपा से मैं जीवित रही हूँ वह कुलदेवी ही इस बात को जानती है ।''

कुमारी को पहले के समान ही बोलती हुई देख तमाम राजकुटुंब उसके पास आकर प्रेम गर्भित शब्दों में कहने लगा - 'कुमारी! हम तुम्हें याद ही करते थे कि क्या हम इन नेत्रों से अब फिर तुम्हारा दर्शन कर सकेंगे? आज अकस्मात् ही आशा लगाये हुए चातक को शांति देनेवाले मेघ के समान तुम्हारा दर्शन बड़े पुण्य से प्राप्त हुआ है ।

चंपकमाला -(हर्ष के अश्रु पूर्णनेत्रों से) 'प्यारी पुत्री! मैं तुम्हारी माता होने पर भी सचमुच इस समय वैरन के समान निकली । बेटी! ऐसा घोर दुःख तुमने कैसे सहन किया होगा? निर्दोष पुत्री! अपने अज्ञानी माता - पिता के इस घोर अपराध को क्षमा करना ।''

राजा - ''विनीत पुत्री! तुझे अंधकूप में पड़ते ही हमारी कुलदेवी ने अधर धारणकर अपने पास रखी होगी, तुझे योग्य वर की प्राप्ति हो इस हेतु से राजकुमारों के बल की परीक्षा के लिए इस स्तंभ में रखी हो ऐसा मालूम होता है। कनकवती के पास ये यह लक्ष्मीपूंज हार वापिस लेकर तेरे गले में पहना, दिव्य वस्त्रों से शृंगारितकर हाथ में वरमाला देने पूर्वक उस कुलदेवी ने ही तुझे विभूषित किया मालूम होता है । बेटी! जिस काष्टस्तंभ के भीतर से तूं प्रकट हुई है यह दिव्य स्तंभ इस पाणिग्रहण महोत्सव के प्रसंग पर हमें आज ही प्राप्त हुआ है । यह तमाम वृत्तांत हमें एक सिद्धज्योतिषी ने बतलाया था, परंतु हमारे कुल की रक्षा करनेवाली कुलदेवी ने हमें आज तक कभी स्वप्न में भी यह बात नहीं बतायी । न जाने इसका क्या कारण होगा? कादचित् संभव है उस सिद्ध ज्योतिषी के रूप में ही कुलदेवी ने हमारी सहाय की हो ।

मंत्री! सिद्ध ज्योतिषी की तमाम बातें सिद्ध ही हुई । परंतु एक ही बात मेरे हृदय में खटकती है । उसने कहा था - 'राजकुमारी का पाणिग्रहण महाराज शूरपाल का पुत्र महाबल कुमार करेगा यही बात अन्यथा प्रतीत होती है । हमारी

की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार ऐसे इस महान और दिव्य स्तंभ को इस तेजस्वी वीणा बजानेवाला युवक ने विदारित किया है, इसलिए कुमारी का पति भी यही होना चाहिए। महाराज वीरधवल के इन अंतिम वचनों को उनके पास ही खड़ा हुआ महाबल ध्यानपूर्वक सुन रहा था। इस समय स्तंभ संपुट के बीच खड़ी हुई मलयासुंदरी के पास कई दासी आ पहुंची और उन्होंने मलयासुंदरी को सहारा दिया।' आगे बढ़कर मलयासुंदरी बोली-'दासी! कलानिधान वह वीरपुरुष कहाँ है? जिसने मेरे पिता के दुःख के साथ इस स्तंभ को विदारण किया है। मैं उसके गले में वरमाला पहनाऊंगी। मलयासुंदरी की धायमाता वेगवती ने नजदीक में आकर स्तंभ को विदारण करनेवाले उस वीर युवक की ओर इशारा किया। प्रेमपूर्ण नेत्रों से निहारती हुई, अनेक राजकुमारों के मनोरथ निष्फल करती हुई, लोगों के चित्त को संतोष देती हुई, गंधर्व के वेष में रहे हुए तथापि कामदेव के समान रूपवान् महाबल कुमार के गले में मलयासुंदरी ने हर्षित हो, वरमाला पहना दी। मलयासुंदरी के रूप से चकित हो और गांधर्व जाति के युवक के गले में वरमाला आरोपित होने से पराभव पाये हुए राजकुमार परस्पर कहने लगे -'देखो! इस विदग्धा राजकुमारी की कैसी अधम परीक्षा! उत्तम क्षत्रिय वंश के राजकुमारों को छोड़कर अज्ञात कुलवंशादि वीणा बजानेवाले साधारण मनुष्य के गले में वरमाला डाल दी। इस प्रकार का हम अपना घोर अपमान नहीं सह सकते। हम इस गंधर्व को मारकर भी स्वयंवरा को ग्रहण करेंगे। इस तरह विचारकर मारे ईर्षा के वे सबके सब राजकुमार गंधर्व के वेष में वहां पर अकेले खड़े हुए महाबल की तरफ बढ़ आये। यह देख महाराज वीरधवल ने उस युवक की रक्षा के लिए उसके चारों तरफ अपनी सेना खड़ी कर दी।

इस समय महाबल भी स्वयंवर में रखे हुए वज्रसार धनुष को उठाकर उन राजकुमारों के सामने आ जुटा। महाबल के अमोघ प्रहारों से तमाम राजकुमार अपने प्राण बचाने के लिए चारों तरफ बिखर गये। उस वक्त स्वयंवर मंडप के प्रसंग पर पृथ्वीस्थानपुर से स्वाभाविकतया आये हुए एक चारण ने ध्यानपूर्वक देखने से महाबल को पहचान लिया और वह उच्च स्वर से बोल उठा - 'हे

स्वजनों को जिमाकर स्वयंवर में आये हुए तमाम राजकुमारों के लिए भी उनके स्थान पर ही भोजन का प्रबंध करा दिया गया ।

इस शुभ प्रसंग पर सिद्धज्योतिषी को प्रीतिदान देकर प्रसन्न करने के लिए राजा ने उसकी चारों तरफ तलाश करायी । परंतु उसका कहीं पर भी पता न लगा । इससे राजा यह सोचकर कि वह सचमुच ही परोपकारी दिव्य पुरुष था, अब उसके मिलने की आशा छोड़ बैठा । अब उसने विधिपूर्वक अपनी कुलदेवी की पूजा कर बंधुवर्ग को वस्त्राभरण के दानादि द्वारा संतोषित किया। याचकजनों को भी दान देने में उसने अपनी लक्ष्मी का खूब ही उपयोग किया । राजकुमारी के विवाह के हर्ष में नगर में जगह - जगह उत्सव मनाया जा रहा था । अनेक प्रकार के बाजों की मधुरध्वनि से आकाश गूंज रहा था । कहीं पर मधुर स्वर से गंधर्व लोगों का संगीत हो रहा था, कहीं पर मारे खुशी के स्त्रियों का नृत्य होता था, कहीं कोकिल कंठ से सधवा स्त्रियाँ धवलमंगल गा रही थीं । कहीं पर भाट चारणों के जय जय शब्द उच्चारित हो रहे थे, अनेक आभूषणों से भूषित से वरवधू कल्पलता और कल्पवृक्ष के समान शोभ रहे थे । पाणिग्रहण के समय उज्ज्वल नेपथ्य को धारण करनेवाला यह दंपती युग्म साक्षात् रति और कामदेव के समान शोभायमान दिख रहा था ।

माता - पिता ने उस नव दंपती को आशीर्वाद दिया कि चंद्र और चांदनी के समान तुम्हारा अविच्छिन्न संयोग कायम रहे । राजा ने अपनी संपत्ति के अनुसार हाथी, घोडा, रथ, हीरा, माणिक, मोति, शस्त्र और ग्रामादि अनेकानेक वस्तुएँ कन्यादान या दहेज में दीं । विवाह प्रसंग पूर्ण होने से हर्षित हुए नवदंपती एकांत निवास स्थान में गये । इस समय राजा वीरधवल कुमार के पास आकर, अपने संशय की बातें पूछने लगा । ''राजकुमार! आप अपने शहर से स्वयंवर के प्रसंग पर अकस्मात् ही एकाकी किस तरह आ पहुंचे?''

अपनी प्रिया के सन्मुख देखते हुए, पूर्व में परस्पर संकेत किये मुजब कुमार ने उत्तर दिया-''महाराज! मुझे पृथ्वी स्थान से उठाकर किसी देवी ने यहां पर अकस्मात् लाकर रख दिया है ।'' यह सुन राजा वीरधवल कुछ गर्दन हिलाते

स्वजनों को जिमाकर स्वयंवर में आये हुए तमाम राजकुमारों के लिए भी उनके स्थान पर ही भोजन का प्रबंध करा दिया गया ।

इस शुभ प्रसंग पर सिद्धज्योतिषी को प्रीतिदान देकर प्रसन्न करने के लिए राजा ने उसकी चारों तरफ तलाश करायी । परंतु उसका कहीं पर भी पता न लगा । इससे राजा यह सोचकर कि वह सचमुच ही परोपकारी दिव्य पुरुष था, अब उसके मिलने की आशा छोड़ बैठा । अब उसने विधिपूर्वक अपनी कुलदेवी की पूजा कर बंधुवर्ग को वस्त्राभरण के दानादि द्वारा संतोषित किया। याचकजनों को भी दान देने में उसने अपनी लक्ष्मी का खूब ही उपयोग किया । राजकुमारी के विवाह के हर्ष में नगर में जगह - जगह उत्सव मनाया जा रहा था । अनेक प्रकार के बाजों की मधुरध्वनि से आकाश गूंज रहा था । कहीं पर मधुर स्वर से गंधर्व लोगों का संगीत हो रहा था, कहीं पर मारे खुशी के स्त्रियों का नृत्य होता था, कहीं कोकिल कंठ से सधवा स्त्रियाँ धवलमंगल गा रही थीं । कहीं पर भाट चारणों के जय जय शब्द उच्चारित हो रहे थे, अनेक आभूषणों से भूषित से वरवधू कल्पलता और कल्पवृक्ष के समान शोभ रहे थे । पाणिग्रहण के समय उज्ज्वल नेपथ्य को धारण करनेवाला यह दंपती युग्म साक्षात् रति और कामदेव के समान शोभायमान दिख रहा था ।

माता - पिता ने उस नव दंपती को आशीर्वाद दिया कि चंद्र और चांदनी के समान तुम्हारा अविच्छिन्न संयोग कायम रहे । राजा ने अपनी संपत्ति के अनुसार हाथी, घोडा, रथ, हीरा, माणिक, मोति, शस्त्र और ग्रामादि अनेकानेक वस्तुएँ कन्यादान या दहेज में दीं । विवाह प्रसंग पूर्ण होने से हर्षित हुए नवदंपती एकांत निवास स्थान में गये । इस समय राजा वीरधवल कुमार के पास आकर, अपने संशय की बातें पूछने लगा । ''राजकुमार! आप अपने शहर से स्वयंवर के प्रसंग पर अकस्मात् ही एकाकी किस तरह आ पहुंचे?''

अपनी प्रिया के सन्मुख देखते हुए, पूर्व में परस्पर संकेत किये मुजब कुमार ने उत्तर दिया-''महाराज! मुझे पृथ्वी स्थान से उठाकर किसी देवी ने यहां पर अकस्मात् लाकर रख दिया है ।'' यह सुन राजा वीरधवल कुछ गर्दन हिलाते

हुए बोल उठा - 'आपका कहना सच है; यह सब कार्य हमारी कुलदेवी का ही किया मालूम होता है ।''

महाबल - ''महाराज! मेरे वियोग को न सहन करनेवाले मेरे माता पिता विरह दुःख से दुःखित हुए मेरी चारों तरफ तलाश करते होंगे । अति स्नेहित हृदयवाले माता पिता की सेवा में यदि मैं बारह प्रहर के अंदर न पहुंच सका तो सचमुच ही वे मेरे वियोग से प्राणत्याग कर देगें । इसलिए आप कृपाकर, मुझे जल्दी विदा करें । यदि मैं प्रतिपदा के दिन सूर्योदय से पहले पृथ्वीस्थानपुर पहुंच जाऊंगा तो मुझे अपने पूज्य माता पिता का मिलाप हो सकेगा; अन्यथा उनका मिलना असंभव सा मालूम होता है ।''

राजा - ''कुमार! आपको जरा भी चिंता न करनी चाहिए, आपकी तमाम चिंतायें मेरे शिर पर हैं । पृथ्वी स्थानपुर यहां से बासठ योजन है अतः आप रात के प्रथम प्रहर तक सुखपूर्वक यहां रहे; तबतक मैं आपके लिए एक उत्तम जाति की और अतिवेग से चलनेवाली सांडनी तैयार कराता हूँ, तथा कोपायमान हुए उन राजकुमारों को भी सत्कारित कर विदा कर आता हूँ । यों कहकर महाराज वीरधवल वहां से चला गया ।

महाबल - 'प्रिये! आज हमारा इच्छित कार्य सिद्ध हुआ । तुम्हारे समक्ष की हुई प्रतिज्ञा आज जनता के समक्ष तुम्हारे पिता की सम्मतिपूर्वक पाणिग्रहण करने से पूर्ण हुई । परंतु पृथ्वीस्थानपुर जाकर, अपनी माता को हार देने की की हुई प्रतिज्ञा अभी सफल नहीं हुई, वह पूर्ण होने पर ही हमें शांति और आानंद का समय मिलेगा । कल हम भट्टारिका के मंदिर में मिले थे, परंतु अपने - अपने कार्य की चिंता होने से दो दिन में किये हुए कार्य संबंधी वार्तालाप करने का विशेष समय नहीं मिला । इस समय महाराज भी हमारे प्रयाण की तैयारी कराने गये हैं; इसलिए अब एकांत में उन बातों को जानना चाहिए, महाबल कुमार इसके आगे कुछ कहना ही चाहता था इतने में ही वहां पर मलयासुंदरी की धायमाता वेगवती आ पहुंची । उसने मलयासुंदरी के पास आकर पूछा -

'बेटी मलया! सच कह इस घटना का क्या रहस्य है? क्या सचमुच ही यह देवकर्तव्य है या कुछ बुद्धि प्रयोग द्वारा रचा हुआ अन्य प्रपंच है?''

मलया - स्वामिन्! मेरे गुप्त रहस्य को जाननेवाली और माता से भी बढ़कर मुझ पर अतिप्रेम रखनेवाली यह मेरी धायमाता है; इसलिए आप जरा भी संकोच न रखकर इस मेरी धाय वेगवती के समक्ष तमाम वृत्तांत सुनायें, यह उसे जानने की बड़ी उत्सुक है । मलयासुंदरी के आग्रह से महाबल ने वेगवती के समक्ष अपना वृत्तांत सुनाना प्रारंभ किया - 'भट्टारिका देवी के मंदिर से अपने - अपने कार्यार्थ जुदे हुए थे वहां तक का वृत्तांत वेगवती को सुनाकर उसके बाद का हाल मलयासुंदरी को उद्देशकर महाबल कहने लगा - ''प्रिये तुमसे जुदा होकर मैंने तुम्हारे नामांकित अगुंठी को एक घास के पूले में देकर वह पूला हाथी को खिला दिया । फिर स्मशान की तरफ जाकर सिद्धज्योतिषी के वेष द्वारा राजा का बचाव किया और दूसरे दिन संध्या का बहाना ले और राजा के पास से कुछ द्रव्य लेकर राजमहल से चला गया । बाजार में जाकर उस द्रव्य से कुछ आवश्यक बढ़ई के हथियार, कपूर, कस्तूरी चंदन, रंग और वस्त्रादि खरीदकर मैं भट्टारिका देवी के मंदिर में गया । वहां पर जो काष्ठफाली देखी थीं । उन्हें छोलकर खूब रमणीय बनाया। उनके अंदर उर्ध्वभाग में यंत्र प्रयोग वाली एक कीलिका लगायी इस समय एक संदूक लेकर वहां पर कितनेक चोर आ पहुंचे, उस संदूको एक चोर सहित मंदिर के पीछे सुरक्षित रखकर बाकी के तमाम चोर वापिस शहर की ओर चले गये । बढई के हथियार और अन्य वस्तुएँ एक जगह छिपाकर चोर की संज्ञा से उस चोर को बुलाता हुआ मैं उसके पास गया । मुझे भी चोर समझकर उस लोभी चोर ने मुझसे प्रार्थना की, मैं इस संदूक का ताला नहीं तोड़ सकता; इसलिए कृपाकर किसी तरह आप इसका ताला खुलवा दीजिए । मैंने उसका ताला खोल दिया । उसने संदूक में से सार सार वस्तुएँ निकालकर एक पुटलिया बांधली । उस सत्त्व हीन चोर ने मुझे फिर से कहा हे महानुभाव! यदि मैं यहां से चला जाऊंगा तो मेरे पीछे पैर पहचानते हुए चोर या राज पुरुष मुझे पकड़ लेंगे,

इसलिए कृपाकर आप मेरे बचाव का कोई उपाय बतलावें ।

मैंने उसके बचाव के लिए भट्टारिका के मंदिर के शिखर पर का ऊपरी पत्थर निकालकर उस पुटलिया सहित चोर को उसके अंदर ढकेल कर ऊपर उसी शिला को ढक दिया । फिर मंदिर के नजदीक रहे हुए वट-वृक्ष पर चढ़कर, मैं तुम्हारे आगमन की राह देखने लगा, इतने ही में अकस्मात् उस वटवृक्ष की खोखर की ओर मेरी दृष्टि पड़ी । उस खोकर में मुझे कितने एक वस्त्र और अलंकारादि दिख पड़े । तलाश करने पर मालूम हुआ कि वे वस्त्रालंकारादि मेरी ही वस्तुएँ थीं । कुछ दिन पहले जिस देवी ने मेरे वस्त्राभरण हरण कर लिये थे उसीने ये यहां लाकर रखे होंगे यह समझकर वे वस्तुएँ मैंने अपने कबजे कर लीं । फिर जब मैंने रास्ते की तरफ दृष्टि घुमाई तो उन्मार्ग से आते हुए तुम्हे देखा । फिर शीघ्र ही वड़ से नीचे उतर मैं तुम्हें आ मिला । उस रोज का यही मेरा वृत्तांत है । प्रियकांते! अब तुम भी अपना हाल सुनाओ, तुमने किस तरह अपना कार्य किया!

मलया 'प्राणनाथ! उस दिन आपकी शिक्षा को हृदय में धारणकर मैं शीघ्र ही शहर में आयी, मगधावेश्या का मकान पूछते हुए और उसकी तलाश के लिए शहर में फिरते हुए, मैंने उसे एक मंदिर में पाया । एक किसी चालाक धूर्त ने उसे महासंकट में फँसा रखा था, इससे वह वहाँ से आगे पीछे न जा सकती थी । उसके दुःख का कारण पूछने पर निश्वास डालते हुए उसने उत्तर दिया - 'हे सत्पुरुष? मैं तुम्हें अपने दुःख की क्या बात सुनाऊं? मेरी बुद्धि कुंठित हो गयी है । मैं अपने मकान के आंगन में बैठी थी उस समय कहीं से फिरता हुआ यह धूर्त मनुष्य मेरे पास आ बैठा । मुझे यह मालूम न था कि यह मनुष्य इतना धूर्त है । मैंने हँसी में इससे कहा - 'तूं मेरा शरीर संवाहनकर, मैं तुझे कुछ दूंगी । यह मनुष्य शरीर सुश्रषा की क्रिया में बड़ा निपुण निकला। इसने मेरे शरीर को संमर्दितकर मेरी तमाम थकावट को दूर कर दिया । मैंने खुश होकर इसे भोजन करने के लिए कहा - यह बोला - 'मुझे भोजन की आवश्यकता नहीं है, तुमने

मुझे कुछ देने के लिए कहा था । इसीलिए मुझे अब कुछ दो । मैंने इसे अच्छे वस्त्र, धन इत्यादि देना चाहा; परंतु यह धूर्त कुछ भी न लेकर मेरी जबान से निकले हुए 'कुछ दूंगी' इस शब्द को पकड़कर मुझसे कुछ मांगता है । परंतु मैं नहीं समझती कि कुछ किस वस्तु का नाम है? इसी कारण यह न तो खुद जाता है और न ही मुझे यहां से जाने देता है । प्रिय स्वामिन्! यह दशा देख मैंने विचार किया कि वेश्या इस वक्त आपत्ति में फंसी हुई है । यदि मैं इस संकट से इसका उद्धार करूं तो अवश्य ही मेरा निर्धारित कार्य जल्दी सिद्ध होगा । यह सोचकर मैंने मगधा को अपने पास बुलायी ओर उसके कान में एक बात सुनायी । फिर मैंने उन दोनों से कहा – 'जाओ इस समय तुम दोनों भोजन करो और तीसरे पहर मेरे पास आना मैं अवश्य ही तुम्हारे विवाद का फैसला कर दूंगा ।

महाबल – ''प्यारी! उनका यह विवाद सचमुच ही बड़ा विषम था । तुमने किस तरह इसका समाधान किया?''

मलया – स्वामिन्! सो मैं आपको सुनाती हूँ । मैं वहां तक के मार्ग परिश्रम से कुछ थक गयी थी अतः मैं वहां पर ही सो गयी । तीसरे पहर वे दोनों ही मेरे पास आ गये । मगधा ने मुझे उठाया । मैं गुप्तरीति से उससे देव मंदिर में एक घड़ा रखवाया और बहुत से लोगों को साक्षी रखकर कहा – देखो भाई! मैं अब तुम्हारे सामने इस मनुष्य को कुछ दिलाता हूँ । यह अपने वचन से पीछे न फिर जाय इसीलिए इसे मेरे किये हुए इन्साफ में आप लोग साक्षी रहें । यह बात उस धूर्त ने भी उपस्थित जनता के समक्ष अंगीकार कर ली । इस बात पर लोगों को भी बड़ा आश्चर्य था कि देखें यह नवयुवक इसे 'कुछ देकर' किस तरह फैसला करता है? मेरा इशारा पाकर मागधा ने उसे कहा कि इस मंदिर के उस कोने में एक घड़ा रखा है; उसमें एक चीज पड़ी है । उसे तुम ले आओ, फिर तुझे कुछ दिया जायगा। धूर्त ने वहां जाकर घड़े का ढकना उठाकर उसमें हाथ डाला । परंतु तुरंत ही फुंकार मारता हुआ सर्प उसके हाथ को चिपट गया । तत्काल ही उसने घड़े से अपना हाथ पीछे खींच लिया । और चिल्लाकर वह बोल उठा अरे! इसमें तो

'कुछ' है? यह सुन मगधा ने हर्ष प्राप्त करते हुए कहा - 'इसमें तेरे लिये ही कुछ रखा हुआ है । और इस कुछ को तूं ग्रहण करके अपने घर ले जा । अब मेरे तेरे बीच लेने देने का कुछ संबंध नहीं रहा ।' यह देख खुश होकर तमाम लोग हंसकर बोले - ''वाहरे धूर्त! वस्त्र, धन न लेकर, तूंने यह अपने कर्तव्य के अनुसार अच्छा कुछ लिया? उस धूर्त को सांपने डस लिया था इसलिए उसका विष उतारने के लिए उसे तोतला देवी के मंदिर पर ले जाया गया और मुझे साथ लेकर मगधा अपने मकान पर आ गयी ।

उसके गृहद्वार में प्रवेश करते ही कुछ आश्चर्यपूर्वक मैंने मगधा से कहा - 'मगधा! मैं तुम्हारे घर में प्रवेश न करूंगा, क्योंकि मुझे मालूम होता है, तुम्हारे घर में कोई भी राजद्रोही मनुष्य छिपा हुआ है । मेरे इन शब्दों से भयभ्रांत हो अनेक प्रकार के तर्कवितर्क करती हुई मगधा मेरे पैरों में झुक गयी । और हाथ जोड़ कर बोली - 'हे भद्र पुरुष! आपने सब अपने ज्ञानबल से समझ लिया है, परंतु कृपाकर आप यह बात अन्य किसी के सामने न करें । राजा की रानी कनकवती जिसने कपट द्वारा राजा की निर्दोष पुत्री को कल जान से मरवा दिया, उसका कपट प्रकट होने से उसे पकड़ने के लिए शहर में चारों तरफ राजपुरुष घूम रहे हैं । बचपन के स्नेह के कारण वह पिछली रात में छिपकर मेरे घर आकर रही है । हे सत्पुरुष! किसी भी उपाय से इस धधकती हुई आग को आप मेरे घर से बाहर निकालें इससे मैं आपका बड़ा उपकार मानूंगी । मैंने कहा - 'यदि मैं इस समय उसे तेरे मकान से बाहर निकाल दूं तो इससे भयंकर परिणाम उपस्थित होगा । बाहर निकले बाद अगर उसे किसी राजपुरुष ने देख लिया तो उसके साथ ही हम सबको महान् संकट में पड़ना होगा । तथापि तेरा विशेष आग्रह है तो मैं कुछ ऐसा उपाय करूंगा कि जिससे तेरे घर से वह स्वयं ही चली जाय । इस कार्य के लिए मुझे आज रात को एकांत में उसके साथ मिलाना।' यह सुनकर मगधा बड़ी खुश हुई । और भावभक्तिपूर्वक मुझे भोजन करा रात में उसने कनकवती से मेरी भेट करायी, मुझे पुरुष रूप में देखकर उसका हृदय कामवासना से परिपूर्ण हो गया । वह बार - बार मेरे सन्मुख कटाक्ष करती हुई, निर्लजता से

मुझे विषय प्रार्थना करने लगी । मैंने उससे कहा – भद्रे! मेरा एक अति प्रियमित्र है, वह रूप में साक्षात कामदेव के जैसा है और उसे तुम्हारे जैसी स्त्री की चाहना भी है । किसी कार्य के लिए वह आज गांव गया हुआ है । उसने मेरे साथ संकेत किया है कि आगामी रात्रि को गोलानदी के किनारे पर भट्टारिका देवी के मंदिर में मिलूंगा। इसीलिए अगर तुम्हारी मर्जी हो तो तुम वहां पर आना, वहां तुम दोनों का अच्छा संयोग मिल जायगा । कदाचित् किये हुए संकेतानुसार वह वहां पर न भी आया तो फिर हम तुम दोनों तो हैं ही ।

कनकवती ने मुझसे पूछा – आप कौन हैं? और यहां किसलिए आये हैं? मैंने कहा हम क्षत्रियपुत्र हैं और देशांतर जाने के लिए घर से निकले हैं । रास्ते में यह शहर देखने के लिए मैं यहां ठहर गया हूं । मेरा कथन सत्य समझकर मेरे मित्र से मिलने के लिए उसने उत्सुकता बतलायी। अपने किये हुए कर्म का वर्णन करते हुए और उस कृत्य के कारण अपने ऊपर पड़े हुए संकट संबंधी वार्तालाप में उसने सारी रात्रि व्यतीत कर दी । सुबह होने पर मैंने उससे पूछा – सुंदरी! तुम्हारे पास कुछ वस्त्राभूषणादि भी हैं या नहीं? मुझ पर विश्वास और प्रीति रखती हुई कनकवती ने अपनी तमाम वस्तुयें मेरे पास लाकर रख दीं । तलाश करने पर मुझे उनमें हार दिखायी न दिया। अतः मैंने फिर पूछा – क्या इतनी ही वस्तु तुम्हारे पास है? या और भी कुछ है? उसने कहा लक्ष्मीपूंज नामक एक हार और है, वह मैंने गुप्त रीति से एक जगह जमीन में दबाया हुआ है । वह स्थान पूछने पर वह बोली – यहां से कुछ दूरी पर एक शून्य खंडर घर है, उसके पास एक कीर्तिस्तंभ है, उसकी दीवार में मैंने उस हार को छिपाके रखा है । वहां पर मैं दिन में तो जा ही नहीं सकती, रात में भी राजपुरुषों के भय से बड़ी कठिनता से वहां जाया जा सकता है । यदि मेरी बतलायी हुई निशानी के अनुसार वहां जाकर आप उस हार को ला सकते हैं तो ले आइये फिर हम दोनों ही यहां से चले जायेंगे । अगर आप नहीं ला सकें तो आज ही संध्यासमय मैं स्वयं वहां जाकर उस हार को ले आऊंगी । इस प्रकार वार्तालाप कर मैं उसके पास से उठकर कमरे

से बाहर आ गयी ।

मुझसे मगधा ने पूछा - ''सत्पुरुष! मेरे घर से बाहर निकालने का उसके लिए कोई उपाय किया? मैंने उत्तर दिया - भद्रे! तेरी प्रार्थना से मैंने ऐसा उपाय किया है अगर तूं उसे जाने से रोकेगी भी तथापि अब यह तेरे घर में न रहेगी। हर्षित हो मगधा वेश्या ने मेरे लिये भोजन तैयार किया।

इधर कनकवती की बतलायी हुई निशानी के अनुसार मैंने दिन में वहां जाकर बहुत ही तलाश की परंतु मुझे हार का पता न लगा, इसलिए वापिस मगधा के घर आकर मैंने कनकवती से कहा कि मुझे ढूंढने पर भी वहां हार नहीं मिला। अतः रात को हार लेकर तुम गोला नदी के किनारे पर भट्टारिकादेवी के मंदिर में मुझे आ मिलो । यों कहकर मगधा से विदा हो मैं वहां से अपने सांकेतिक स्थान की तरफ चल पड़ी । परंतु मैं रास्ते मैं यहां आने का मार्ग भूल जाने के कारण उन्मार्ग से चलकर पुण्ययोग से उस बड़ के नीचे आपसे आ मिली ।

अब मलयासुंदरी ने अपनी धायमाता की तरफ नजरकर इसके आगे का वृत्तांत कहना प्रारंभ किया । क्योंकि महाबल तो उस वृत्तांत को जानता ही था!

वेगवती! मैंने अपने स्वामी से आकर तुरंत ही यह बात कही कि आपको अपना पति बनाने के लिए कनकवती लक्ष्मीपुंज हार लेकर अभी आनेवाली है । मेरे स्वामी ने उत्तर दिया, प्रिये! यह तुम क्या बात कहती हो? ऐसी नीच औरत के साथ बात करना भी मेरे लिये उचित नहीं तब फिर उसे पत्नी बनाने की तो बात ही क्या? यों कहकर कनकवती को दूर से आती देख ये वहां से उठकर मंदिर के दूसरी तरफ छिपकर खड़े हो गये । कनकवती आ पहुंची, मैंने उसे प्रेम से बुलाया और कहा - 'भद्रे! इस समय बोलचाल किये सिवामौन रहकर खड़ी रहो' क्योंकि यहां पर चोर फिर रहे हैं । तेरे पास जो कुछ वस्तु हो वह मुझे सौंप दे । जिसको मैं हिफाजत से सुरक्षित रखूं । उसे मुझ पर विश्वास तो था ही अतः उसने अपने पास का सब कुछ मुझे दे दिया । मैंने उस पोटली को देखकर उसमें से लक्ष्मीपूंज हार और एक कंचुक निकाल लिया । शेष तमाम

चीजें उस चोर की पड़ी हुई खाली संदूक में डाल दीं । मैंने फिर से कनकवती से कहा – 'भद्रे! जब तक यहां पर चोरों का संचार मालूम होता है तब तक तुम इस संदूक में बैठ जाओ । क्रूर हृदया परंतु कायर स्वभाववाली कनकवती मेरी बात मंजूरकर उस संदूक में बैठ गयी । उसके अंदर बैठते ही मैंने उस संदूक को बंदकर उसमें ताला लगा दिया । इसके बाद मैंने अपने स्वामी को बुलाया, हम दोनों ने उस संदूक को उठाकर नजदीक में बहनेवाली गोला नदी में बहा दिया । फिर मेरे मस्तक पर किया हुआ जो तिलक था वह मेरे स्वामी ने अपने थूंक से मिटा दिया, इससे तत्काल ही मेरा स्वाभाविक स्वरूप बन गया । अपने स्वामी की आज्ञा पाकर मैंने अपने शरीर पर चंदनादि से विलेपन कर उस बड़ वृक्ष की खोकर में मिले हुए कुंडल वगैरह आभूषणों को धारण किया । कनकवती के पास से प्राप्त किया हुआ लक्ष्मीपूंज हार और कंचुक पहनकर तथा हाथ में वरमाला ले मैं उस काष्टस्तंभ के दल में खड़ी हो गयी । मुझे इन्होंने समझा दिया था कि तूं धीरज रखना यह तमाम काम इस तरह किया जायगा । जब मैं स्वयंवरमंडप में वीणा बजाऊंगा तब तूं फालियों के बीच लगायी हुई इस कीली को जोर से खींच लेना इत्यादि शिक्षा देकर, अधिक समय तक ठंडक रहे ऐसी वस्तु मेरे पास रख के और अंदर पवन आने जाने के लिए स्तंभ के ऊपरी हिस्से में दो बारीक से सुराक रख उस फाली के साथ इन्होंने दूसरी फाली जोड़ दी । फिर मैंने अंदर की कीलिका लगा ली । इसके बाद क्या हुआ मुझे मालूम नहीं ।

महाबल – 'प्रिये! इसके बाद उस स्तंभ को मैंने ऐसे सुंदर रंग – बिरंगो से चित्रित किया कि जिससे उसके बीच की संधियाँ बिल्कुल मालूम न हो । इस समय मंदिर के पीछे उस संदूक को रखकर शहर में गये हुए चोर एक ओर चोरी का माल लेकर वापिस आये । परंतु वहां पर उस रक्षक चोर सहित संदूक न मिलने पर वे उसकी खोज में चारों तरफ घूमने लगे । मैंने उन्हें चोरों के संकेतानुसार बुलाया, ये मेरे पास आकर विश्वस्त मनुष्य के समान बोले कि यहां पर संदूक सहित एक मनुष्य था वह कहां गया? मैंने उन्हें विश्वास दिलाते हुए कहा – 'तुम इस स्तंभ को उठाकर पूर्व दिशा वाले शहर के दरवाजे के पास ले

चलो तो मैं तुम्हें उस मनुष्य का पता बतलाऊंगा । उन्होंने मेरी बात मंजूरकर और लाया हुआ चोरी का माल नदी किनारे रख उस स्तंभ को उठाया। मेरे कथनानुसार शहर के पूर्व दरवाजे के पास लाकर स्तंभ को खड़ा कर दिया। अब फिर उन्होंने उस चोर के विषय में पूछा । मैंने सोचा - उस बेचारे को मंदिर के शिखर में बतला दिया तो ये उसे जान से मार डालेंगे । यह समझकर मैंने उन्हें असत्य उत्तर दिया "भाई! वह चोर तो संदूक का ताला तोड़कर उसमें से माल निकाल एक पोटली में बांधकर संदूक को नदी में बहा और स्वयं उस पर बैठकर तैरता हुआ नीचे की तरफ चला गया है ।" चोर बोले - आपका कथन सत्य ही मालूम होता है क्योंकि वह रातभर संदूक पर बैठकर नदी मार्ग से गमन करेगा और प्रातःकाल होते ही उस धन की पुटलिया को लेकर कहीं पर चला जायगा । उनमें से एक बोला- भले वह कहीं भी जाय फिर भी तो कभी मिलेगा न? यों बोलते हुए वे चोर मेरे पास से वापित चले गये। मैंने सावधान रह रातभर उस स्तंभ की रक्षा की । जब प्रातःकाल होने पर स्तंभ की खोज में उस तरफ आते हुए राजपुरुषों को देखा तब मैं निश्चिंत होकर गुप्त रीति से चलकर शहर में राजा से आ मिला । इसके बाद का वृत्तांत तुम्हें वेगवती सुनायगी, क्योंकि वह सर्वजन प्रसिद्ध है ।" प्रिये! मुझे अब उस चोर की बात याद आयी, अगर उसे मंदिर के शिखर में से बाहर न निकाला जाय तो फिर हमारे गये बाद उसकी क्या दशा होगी? वह बेचारा अंदर ही मर जायगा और उसका दोष मुझे ही लगेगा, इसीलिए तुम यहां रहो मैं उस चोर को बाहर निकालकर तुरंत ही वापिस आता हूं ।"

मलया - "प्राणनाथ! आप मुझे ऐसी आज्ञा न करें । मैं अब आपसे जुदी न रहूंगी । अब आप पहले के जैसे किसी तरह का बहाना निकालकर मुझे छोड़कर नहीं जा सकते । अब तो मेरे मातापिता ने ही आपको मेरा जीवन समर्पण कर दिया है । माता वेगवती! यदि हमारे आने से पहले यहां पर पिताजी आ जायँ तो तुम उन्हें कह देना कि मलयासुंदरी ने गोला नदी के किनारे पर रही हुई देवी की मानता मानी थी, इसीलिए वे दोनों वहां पर नमस्कार करने गये हैं और अभी वापिस आ जायेंगे । वेगवती को इस प्रकार कहकर मलयासुंदरी महाबल के

निषेध करने पर भी उसके साथ चल पड़ी ।

इधर वीरधवल राजा ने उन राजकुमारों के पास जाकर उन्हें खूब समझाया, परंतु उन्होंने एक न सुनी उलटा रोष में आकर वे महाराज वीरधवल को डराने लगे कि प्रातःकाल होने पर हम तुम्हारे जमाई को मारकर, कन्या को लेकर जायेंगे । परंतु खाली हाथ हम यहां से बिल्कुल नहीं जायेंगे । अब महाराज वीरधवल ने उनको समझाना बुझाना छोड़ महल में आकर महाबल के लिए तुरंत ही एक शीघ्रगति गामिनी सांढनी तैयार करवायी । अब जल्दी तैयारी कराने के लिए राजा मलयासुंदरी के महल में आया; परंतु वहां आकर, उसने महाबल और मलयासुंदरी को न पाया । वेगवती ने कहा - वे गोला नदी के किनारे देवी का दर्शन करने गये हैं । अभी वापिस आयेंगे । राजा उनकी राह देखता हुआ वहां ही बैठ गया । राह देखते हुए रात्रि का दूसरा पहर बीता, तीसरा पहर बीता और अंत में प्रातःकाल होने आया परंतु उन दोनों में से एक भी वापिस न आया । राजा आकुल व्याकुल हो उठा; गोलानदी, भट्टारिका देवी का मंदिर इत्यादि सब जगह तलाश करने पर भी उनके कहीं पदचिह्न तक भी नहीं मिले । प्रातःकाल में महाबल और मलयासुंदरी के गुम होने का समाचार सुनकर वे तमाम राजकुमार निराश होकर अपने - अपने देश को चले गये ।

कठिन परीक्षा

न दुःख में मन धैर्य तजे कभी, न सुख में वह हर्ष भजे कभी ।
न सतसे जिसका पथ अन्य है, जगत में वह मानव धन्य है ।।

पुत्री और जमाई का पता न लगने से महाराज वीरधवल के दुःख का पार न रहा । उन्होंने घुड़सवार और पैदल सिपाही उन दंपती की खोज में चारों तरफ दौड़ाये, किंतु दुर्दैव वश वे फिर फिराकर जैसे गये थे वैसे ही वापिस आये । इससे राजा वीरधवल को तमाम संसार सूना मालूम होने लगा । कल ही उनके दुःख का अंत आया था आज फिर उन पर यह नया दुःख आ पड़ा । वे पुत्री और जमाई के वियोग जन्य दुःख से दुःखित होकर मुर्च्छित से हो गये । इस दुःख को दूर करने में मंत्री - सामंतों की भी बुद्धि कुछ काम न करती थी । कुमारी की धायमाता वेगवती ने हाथ जोड़ विनय पूर्वक राजा को धीरज देते हुए कहा - 'महाराज! आप धीरज धारण करें, कु - विकल्प करने से काम न चलेगा; कदाचित वे किसी प्रयोग से पृथ्वीस्थानपुर चले गये हों क्योंकि वहां पहुंचने की बहुत ही जल्दी और उत्सुकता मालूम होती थी । इसीलिए किसी आदमी को पृथ्वीस्थानपुर को भेजकर यह तमाम समाचार महाराज सूरपाल को जनाना चाहिए । यदि वहां पर वे न भी पहुंचे होंगे तो पुत्र वात्सल्य से दुःखित हो वे भी आपके समान सर्वत्र खोज करावेंगे। यह बात सुन राजा वीरधवल धैर्य धारणकर वेगवती की बुद्धि की प्रशंसा करने लगा । उसने देश देशांतरों में उनकी खोज करने के लिए राजपुरुष भेजे और अपने मलयकेतु नामक राजकुमार को पृथ्वीस्थानपुर महाराज सूरपाल के पास भेजा ।

एक तरफ तो कृष्ण चतुर्दशी की घोर अंधेरी रात, दूसरी तरफ भयानक स्मशान भूमि, पास में बहती हुई गोला नदी के प्रवाह का कल कल नाद, अपरिचित मार्ग चोरों का उपद्रव, प्रतिस्पर्धा से वैरी हुए राजकुमारों का भय, गीदड़ उल्लू वगैरह निशाचर जानवरों के घोर शब्द इत्यादि कारणों से नदी तरफ का मार्ग भयंकर मालूम होता था ।

महाबल – ''प्रिये! ऐसी भयानक स्मशानभूमि और अंधेरी रात में स्त्री सहित फिरना यह मेरे लिये लाभदायक नहीं है । इसीलिए मेरी इच्छा है कि गुटिका के प्रयोग से तुम्हारा पुरुषरूप बनाकर निर्भयता से फिरें ।''

मलया – ''स्वामिन्! आपकी इच्छा में ही मेरी इच्छा है । महाबल ने तुरंत ही आमरस में गुटिका घिसकर मलयासुंदरी के मस्तक पर तिलक कर दिया। गुटिका के प्रभाव से पहले के जैसे ही उसका पुरुषरूप बन गया । अब दोनों ने देवी के मंदिर में जाकर मंदिर के शिखर में छिपे हुए चोर को बाहर निकाला; और उसे कह दिया कि कल तेरे साथी तेरी तलाशकर वापिस चले गये । आपने मुझे जीवित और द्रव्यलाभ प्राप्ति में सहाय की है; आपका मैं यह उपकार कदापि न भूलूंगा । यों कह और नमस्कारकर यह चोर वहां से अन्यत्र चला गया । देवी के मंदिर से वापिस शहर की तरफ आते हुए जब वे समीपवर्ति वटवृक्ष के नीचे आये तब उन्हें उस वटवृक्ष पर कुछ आवाज सुनायी दी । महाबल बोला – ''प्रिये! रात्रि के इस भयानक समय में इस वटवृक्ष पर कोई व्यंतर देव वार्तालाप करते हुए मालूम होते हैं । हम भी जरासी देर ठहर कर ध्यानपूर्वक सुनें कि ये आपस में क्या वार्तालाप करते हैं । परंतु व्यंतरों में से कोई तुम्हारे गले का लक्ष्मीपूंज हार न उड़ाले इसीलिए यह हार तुम मुझे दे दो । लक्ष्मीपूंज हार लेकर महाबल ने अपनी कमर में बांध लिया । फिर गुप्तरीति से उस वटवृक्ष की खोखर में खड़े होकर वे दोनों जने बड़ी सावधानीपूर्वक व्यंतर देवों का वार्तालाप सुनने लगे ।

एक व्यंतर ने प्रश्न किया – क्यों भाई! किसीने पृथ्वी पर आज कोई नयी घटना देखी या सुनी है?

दूसरा व्यंतर – एक जगह एक घटना बनने की तैयारी है । परंतु वह घटना कल बनेगी और उसका स्थान भी यहां से कुछ दूर है ।

तीसरा – कहो तो सही कहां पर क्या घटना बनेगी?

दूसरा – "आप सावधान होकर सुनें, पृथ्वीस्थानपुर के नरेश शूरपाल राजा के एक महाबल नामक कुमार है । उसकी माता रानी पद्मावती का एक हार किसी ने हरण कर लिया है, उसके लिए अपनी माता के समक्ष महाबल ने ऐसी प्रतिज्ञा की है कि यदि पांच दिन के अंदर मैं उस हार को ढूंढकर तुम्हें न दे दूं तो अग्नि में प्रवेशकर मर जाऊँगा । इसी तरह की प्रतिज्ञा उसकी माता ने भी की है कि यदि पांचवें दिन हार न मिले तो मैं भी जीवित न रहूंगी । हार की खोज में गये हुए कुमार का अभी तक कोई पता नहीं लगा । और वह प्रतिज्ञावाला पांचवाँ दिन कल सुबह ही होगा । उस अपने कुमार और हार की खोज न मिलने से मरने के लिए उत्सुक हुई रानी को देखकर ही मैं अब यहां आया हूँ । न जाने वह रानी किस तरह से प्राण देगी । यह भी संभव है कि रानी की मृत्यु से राजा भी जीवित न रहेगा ।

व्यंतर देवों के उपरोक्त वचन सुनकर राजकुमार महाबल कुतुहल छोड़ चिंता में मग्न हो गया । वह सोचता है कि देवताओं का वचन असत्य नहीं होता। सचमुच ही इनकी कथन की हुई घटना का होना संभवित है । मैं कैसा मूढ़ हूँ प्रतिज्ञा भ्रष्ट होकर, यहां पर अभी तक विलासकर रहा हूँ और वहां पर दुःखार्त हो मेरे कुटुंब का क्षय उपस्थित हो रहा है । इतने ही में फिर एक व्यंतर की आवाज सुनायी दी । वह बोला – चलो, इस वक्त वहां चलकर हमें कौतुक देखना चाहिए । दूसरा व्यंतर हाँ, यह तो ठीक है । इस घटना को अवश्य देखनी चाहिए। सबकी संमति होने पर सबने मिलकर हुंकार शब्द बोला और हुंकार के साथ ही वह वटवृक्ष, कुमार तथा मलयासुंदरी सहित आकाश मार्ग से उड़ चला। यह हम प्रथम ही लिख चुके हैं कि महाबल और मलयासुंदरी उस वटवृक्ष की ही खोखर में चुपचाप खड़े होकर व्यंतरों का वार्तालाप सुन रहे थे । हवाई जहाज के समान अति वेग से आकाश मार्ग द्वारा उड़ता हुआ वह वटवृक्ष थोड़े

ही समय में एक छोटे से पहाड़ की मेखलापर आकर स्थिर हुआ । वटवृक्ष से नीचे उतर वे तमाम व्यंतर गोला नदी के किनारे पर रहे हुए धनजंय नामक यक्ष के मंदिर की तरफ चले गये । महाबल ने गौर से देखकर इस प्रदेश को पहचान लिया था । अतः वह मलयासुंदरी से बोला - 'प्रिये! अभी तक हमारा पुण्य जागृत है । यह वटवृक्ष हमारे पृथ्वीस्थान नगर के समीप ही आ पहुंचा है । अब हमें शीघ्र ही इस वटवृक्ष के आश्रय का त्याग कर देना चाहिए । यदि देवाज्ञा से यह वृक्ष फिर वापिस या कहीं आगे उड़कर चला गया तो फिर न जाने हम किस विषमस्थान में जा पड़गे । यों कह तुरंत ही महाबल और मलयासुंदरी उस बड़ की खोखर से बाहर निकल आये । और नजदीक में रहे हुए एक केलों के बगीचे में जाकर दोनों ने विश्राम पाया । कुछ देर बाद उस वटवृक्ष को फिर आकाश में उड़ता देख महाबल बोला - सुंदरी! देखो वह वृक्ष फिर वापिस अपने स्थान पर जा रहा है । बहुत अच्छा हुआ हम लोग उसकी खोखर से निकल यहां आ गये । अभी रात बहुत बाकी थी इसीलिए निर्भयता से वे दंपती केलों के बगीचे में बैठकर समय बिता रहे थे । इतने ही में करुण स्वर से रुदन करती हुई किसी एक स्त्री का शब्द कुमार के कर्णगोचर हुआ । उस स्त्री का रूदन शब्द सुनकर महाबल बोला - प्रिये! यह किसी दुःखित स्त्री के विलाप का शब्द सुनायी देता है । समर्थ पुरुषों का यह कर्तव्य है कि वे दुःखी जनों की सहाय करें । तुम यहां ही रहो और धीरज रखो । मैं इस दुःखिनी को सहाय करके अभी वापिस आता हूं । अब यहां पर किसी प्रकार का डर रखने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि यह सब हमारे नगर की ही हद का प्रदेश है । मलयासुंदरी इस बात का कुछ उत्तर न दे सकी, इसीलिए उसे वहां पर ही छोड़ दयापूर्ण हृदयवाला महाबल परदुःख दूर करने के लिए उस रुदन के शब्दानुसार ही उस दिशा में चल पड़ा ।

अंधेरी रात! तेरे कर्तव्य भी तेरे ही समान काले होते हैं । तूने चंद्रावती में राजा वीरधवल को पुत्री तथा जमाई का वियोगकर संकट में डाला और अब मलयासुंदरी को भी तुरंत ही पतिवियोग कराकर दुःख के खड्डे में डाल दिया?

हे निठुर विधि! तेरी भी अजब गति है! मनुष्य क्या विचारता है और तूं उसके विपरीत क्या से क्या कर डालता है? इस समय मानवसंचार रहित अंधेरी रात में केलों के बगीचे में मलयासुंदरी पुरुष के रूप में अकेली बैठी है । बार - बार हठ करके पति की इच्छा के विरुद्ध उनके साथ जाना योग्य नहीं । यह समझकर ही मलयासुंदरी ने इस समय महाबल के साथ जाने का आग्रह नहीं किया । वह थोड़े समय का वियोग दुःख सहकर भी एक दुःखिनी स्त्री का पति के द्वारा कष्ट दूर हुआ देखने के लिए उस्तुक थी । इसी कारण उसने मौन द्वारा अपने पति को दुःखिया का दुःख दूर करने की संमति दी थी । मेरे स्वामी अभी आयेंगे, वे इस दिशा में गये हैं; इस प्रकार सोच विचार करती हुई महाबल के आगमन की आशा में टकटकी लगाकर वह उसी तरफ देखती रही । पिछली रात बीत गयी, प्रातःकाल होने पर सूर्यदेव भी उदयाचल पर आ गया; परंतु आशा तरंगों में डुबकियें खानेवाली मलयासुंदरी का हृदयेश्वर न आया ।

ऐसे अपरिचित जंगल में मुझे अकेली छोड़ न जाने वे कहाँ गये होंगे जो अभी तक भी नहीं आये? माता-पिता को मिलने की उत्कंठा से क्या वे शहर में तो नहीं चले गये होंगे? इत्यादि संकल्प विकल्प करती हुई मलया सुंदरी ने शहर में जाने का निश्चय किया । जब वह शहर के दरवाजे के पास पहुंची तब उसे सन्मुख आते हुए शहर का कोतवाल मिला । दिव्यवेष और सुंदररूप देखकर कोतवाल ने उसका नाम स्थान पूछा, परंतु पुरुषवेश में मलयासुंदरी उसके प्रश्न का उत्तर न देकर सोच विचार में पड़ गयी और घबराये हुए मनुष्य के समान वह चारों तरफ देखने लगी । इससे कोतवाल को और भी अधिक वहम पैदा हुआ। उसके पास क्या क्या वस्तुएँ हैं, यह तलाश करने पर कानों में पहने हुए कुंडल और शरीर पर धारण किये हुए वस्त्र महाबल कुमार के मालूम हुए यह देख कोतवाल आश्चर्य में पड़कर विचारने लगा - महाबल कुमार के वस्त्र और इस युवक के पास? कोतवाल उसको पकड़कर राजा के पास ले आया । उसका रूप और वेष देखकर राजा आदि सब आश्चर्य में पड़ गये ।

राजा – 'कोतवाल! यह पुरुष कौन है? इसने पहनी हुई पोशाक महाबल कुमार की मालूम होती है ।'

कोतवाल – 'महाराज! यह युवक शहर के दरवाजे में प्रवेश करते हुए मेरे देखने में आया है। इसका नाम स्थान पूछने पर यह कुछ भी उत्तर नहीं देता ।'

राजा – '(मलयासुंदरी के सन्मुख देख) क्यों भाई तूं कौन है? किसका पुत्र है?' यह सुन मलयासुंदरी विचार में पड़ी । यदि इस समय मैं अपनी सत्य बात कहूंगी तो राजा आदि किसी भी मनुष्य को उस पर विश्वास न आयगा, क्योंकि हम दोनों के मिलाप और विवाह की घटना ही ऐसी है जो सुननेवाले को असंभवित मालूम हो; तथा इस समय मेरा स्वरूप भी पुरुष का है । इसलिए जबतक मुझे अपने स्वामी का मिलाप न हो तब तक सत्य घटना प्रकाशित न करनी चाहिए । जो कुछ मेरे नसीब में है सो होगा । यह सोचकर उसने कल्पित उत्तर दिया – 'मैं महाबल कुमार का प्रियमित्र हूँ, उसीने मुझे यह तमाम वेष दिया है ।'

सूरपाल – ''महाबल कुमार इस समय कहाँ है?''

मलया – ''कहीं नजदीक में ही स्वेच्छापूर्वक फिरता होगा ।

सूरपाल – ''कुमार नजदीक में ही हो तो वह अपने कथन किये वचनानुसार हमें क्यों न आ मिले? कुमार कहीं नजदीक में नहीं हो सकता । अगर यहां नजदीक में ही होता तो चारों तरफ तलाश कराने पर भी उसका पता क्यों न लगता? खैर यदि तूं मेरे पुत्र का प्रियमित्र है तो इन तमाम मनुष्यों में से कोई भी मनुष्य तुझे क्यों नहीं पहचानता? यह सुन मलयासुंदरी ने कुछ भी उत्तर न दिया और वह चुपचाप खड़ी रही ।''

राजा सूरपाल मन ही मन विचारने लगा – यह संभव होता है कि कुछ दिन पहले कुमार के वस्त्रादि चुराये गये थे, यह सब अलंब पर्वत की गुफा में रहनेवाले प्रचंड चोर लोहखुर ने ही चुराया होगा, जिसे कल ही मरवा दिया गया है । यह

युवक उसी का छोटा भाई या स्नेही अथवा उसके सगे संबंधियों में से मालूम होता है और उसके वियोग से उदासीन या संभ्रांत हो उसे देखने के लिए जहां तहां फिरता हुआ मालूम होता है । कुमार के कुंडल और वस्त्र भी इसे उस चोर के पास से ही मिले होंगे, तथा अल्पभाषी और विशेष मौनीपन यह चोर का लक्षण भी इस में पाया जाता है । यह भी संभव है कि इन चोरों ने मिलकर कहीं पर कुमार को मार डाला हो? इस कारण यह मनुष्य भी मेरा दुश्मन ही है । इन विचारों की उलझन में भयभ्रांत हो राजा सूरपाल बोल उठा- अरे! कोतवाल! इस चोर को भी जहां कल उस चोर को मारा है वहां ले जाकर मार डालो! राजा के शब्द सुनकर मलयासुंदरी का हृदय कांप गया । उसने सोचा दुर्दैववश अब फिर मुझपर मरणांत आपत्ति का घोर बादल आ घिरा । इस संकट का निस्तार कैसे होगा? धैर्य पाने के लिए इस समय उसने महाबल द्वारा याद कराये उस श्लोक को स्मरण किया । उसको याद करने से उसके हृदय में धैर्य ने प्रवेश किया। वह खुद ही अपने आपको आश्वासन देने लगी । अपने शुभाशुभ कर्म पर निर्भर होकर उसने अपने हृदय में हिंमत धारण की ।

उसकी शांत और तेजस्वी आकृति देख मंत्री -मंडल पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा । अकस्मात् राजा की अविचारित प्रचंड आज्ञा से मंत्रीमंडल में खलबली मच गयी । अतः प्रधान मंत्री बोला - "महाराज! इस युवक की ऐसी भद्र और सुंदर आकृति से यह अनुमान नहीं हो सकता कि यह चोर होगा? इस दिव्य पुरुष ने अपराध किया है यह निर्णय जब तक न हो जाय तब तक इसे प्राणदंड की शिक्षा देना सर्वथा अनुचित है । तथापि इस विषय में आपकी भ्रांति दूर न हो सकती हो तो आप इसकी कोई दिव्य परीक्षा ले सकते हैं । यदि उस कठिन परीक्षा से इसका पराभव हुआ तो इसे चोर समझा जायगा; अगर उस परीक्षा में इसका पराभव न हुआ तो इसे निर्दोष माना जायगा । इस प्रकार करने से जनता में भी आपका अपवाद न होगा । राजा ने कहा तुम्हारा कहना यथार्थ है । परंतु इसकी परीक्षा किस तरह की जाय?"

मंत्री बोला – 'महाराज! एक घड़े में सर्प डालकर उसे इसके हाथ से निकलवाया जाय। यदि वह सर्प इसे डस ले तो यह सदोष और यदि वह इसे न डसे तो सर्वथा निर्दोष समझना चाहिए। बस इससे बढ़कर कठिन – परीक्षा और क्या हो सकती है? यह बात मंजूर कर राजा ने गारुड़िक लोगों को बुलवाया और अलंब नामक पहाड़ की किसी गुफा में से एक भयंकर सर्प पकड़ लाने की आज्ञा दी ।

राजा ने पुरुष रूपी मलयासुंदरी के पास कुमार के वस्त्र और कुंडलादि उतरवा लिये और उसे कोतवाल की निगरानी में सौंप दिया । ठीक इसी समय राजमहल से रानी पद्मावती की दासी सभा में आकर उदास हो नम्रतापूर्वक राजा से बोली – 'महाराज! महारानी पद्मावती आपसे यह प्रार्थना करती है कि अभीतक भी कुमार की कहीं पर खोज नहीं लगी । उसके कथनानुसार आज पांचवां दिन है, यदि कुमार जीवित रहता तो अवश्य ही अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वह आज आये– बिना न रहता । लक्ष्मीपूंज हार का भी अभी तक कोई समाचार नहीं मिला । जहां पर कुमार के अस्तित्व का ही अभाव मालूम होता हो वहां हार प्राप्ति की आशा रखना सर्वथा व्यर्थ है । अपने इकलौते पुत्र के अभाव में मैं प्राण धारण करने के लिए सर्वथा असमर्थ हूं । मैंने आज तक आपका जो कुछ दुर्विनय या अपराध किया हो उसे आप कृपाकर क्षमा करें । और मुझे अब आज्ञा दें तो अलंब नामक पर्वत के शिखर से झंपापातकर प्राण त्याग द्वारा मैं अपनी आत्मा को शांति दूँ । राजा बोला – 'दासी! रानी को हिंमत दो और मेरी तरफ से कहो कि यह दुःसह्य दुःख हम दोनों को समान ही है । कुमार की खोज में मैंने चारों तरफ मनुष्य भेजे हैं । उसके लौटने तक धीरज रखो । कुमार की कुछ भी समाचार अवश्य मिलेगा, क्योंकि आज पांचवां दिन है अगर रात तक कुमार का कुछ भी समाचार न मिला तो कल जैसा योग्य होगा वैसा किया जायगा । दासी! आज इस सुंदर आकृतिवाले पुरुष के पास से कुमार के कुंडल और कुछ वस्त्र मिले हैं; संभव है कि इसी प्रकार हार और कुमार भी मिल

जायगा। आज इस मनुष्य को दिव्य देकर इसकी परीक्षा करनी है । यह तमाम समाचार कह रानी को कुमार के ये कुंडल और वस्त्र देना, यों कहकर राजा ने कुंडल और वस्त्र दासी को दे दिये । दासी ने रणवास में जाकर वह कुंडल और वस्त्र महारानी पद्मावती को दे दिये । उन्हें देख रानी को अत्यानंद प्राप्त हुआ ।

रानी – 'दासी! ये कुंडल आदि कहाँ से मिले? और मेरे समाचार का राजा ने क्या उत्तर दिया? दासी ने राजा का कथन किया हुआ तमाम वृत्तांत कह सुनाया। अब हर्ष और शोक से व्याकुल हो रानी पद्मावती अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प करने लगी ।' क्या सचमुच ही वह मेरे पुत्र का प्रियमित्र होगा? वह अकेला ही यहाँ क्यों आया होगा? क्या वह कुमार का समाचार लाया है? या कोई धूर्त मनुष्य मेरे पुत्र को मार कर तो उसके कुंडल वस्त्रादि नहीं लाया? मैं उस पुरुष को देखूं तो सही! यह विचार कर रानी ने दासी से कहा – ''दासी! जिस जगह उस पुरुष की दिव्य द्वारा परीक्षा की जायगी । मुझे भी वहां पर जाना है । उसे देखकर मैं भी इस विषय में कुछ विशेष निर्णय कर सकूंगी । इसीलिए वहां चलने की सर्व सामग्री तैयार करो ।'' रानी के आने के पहले ही धनंजय यक्ष के मंदिर में राजा आदि हजारों मनुष्य उस कठिन परीक्षा को देखने के लिए आ पहुंचे थे । इस समय सर्प लाने को भेजे हुए गारुड़िक भी वहां आ गये । वे राजा को नमस्कार कर बोले – ''महाराज! अलंबगिरि की अनेक गुफायें ढूंढते हुए हमें श्यामवर्ण और दीर्घकाय वाला एक भयंकर सर्प मिला है, उसे हम घड़े में डालकर यहां लाये हैं; यों कहकर उन्होंने वह घड़ा राजा के सामने रख दिया। राजा ने उस घड़े को धनंजय यक्ष के मंदिर में उसकी मूर्ति के सामने रखवा दिया और कोतवाल को आज्ञा दी कि जाओ उस पुरुष को यहां ले आओ। राजाज्ञा पाते ही शस्त्रधारी अनेक राजपुरुषों से परिवेष्ठित उस पुरुष को (मलयासुंदरी को) वहां पर लाया गया । उसके तेजस्वी और भद्राकृतिवाले चेहरे को देखकर प्रधान नागरिक आपस में कहने लगे – क्या ऐसी आकृति वाला पुरुष कभी चोर हो सकता है? यदि जल से अग्नि उत्पन्न हो, चंद्र से अंगार बरसे और अमृत से विष प्रकट हो तो ऐसे पुरुष से अकार्य हो सकता है । यह सोच विचारकर प्रधान

नागरिक राजा से बोले – महाराज! इसकी सुंदर और सौम्य मुखमुद्रा से यह मनुष्य कुलीन और किसी बड़े खानदान का मालूम होता है अतः ऐसे मनुष्य को इस तरह का भयंकर दिव्य देना योग्य नहीं है । उसकी सौम्यआकृति देख रानी ने भी ऐसी घोर परीक्षा लेने से राजा को निषेध किया ।

राजा – ''सज्जनो! कठिन दिव्य देने में किसी तरह का दोष नहीं है, जिस तरह सच्चासुवर्ण अग्नि में डालने पर विशेष तेजवान होकर शुद्ध होता है वैसे ही यदि यह पुरुष निर्दोष होगा तो इसकी कीर्ति में विशेष वृद्धि होगी । राजा के मुख से यह उत्तर सुनकर रानी व नागरिक लोग चुप रह गये ।''

राजा की आज्ञा से प्रधान मंत्री ने उस पुरुष को कहा – महाशय! आप कौन हैं, हमें इस बात का कुछ पता नहीं । आप पर चोरी का अपराध रखा गया है । इसके साथ ही महाबल कुमार के शरीर को नुकसान पहुंचाने का भी संदेह किया जाता है । इस विषय में तुम निर्दोष हो या सदोष हो यह निर्णय करने के लिए यहां पर तुम्हें कठिन परीक्षा देनी होगी । इस यक्ष के मंदिर में सर्प डालकर एक घड़ा रखा गया है, वह घड़ा खोलकर तुम्हें अपने हाथ से पकड़कर उसे घड़े में से सर्प को बाहर निकालना होगा । फिर अपने हाथ से ही उस सांप को घड़े में रख देना होगा; यदि इसके दरम्यान उस सांप ने तुम्हें न डसा तो तमाम जनता तुम्हें निर्दोष मानेगी । यदि तुम सदोष हुए तो अवश्य ही वह सर्प तुम्हें डंक मारेगा और इसीसे तुम्हारे दोष का तुम्हें दंड भी मिल जायगा। महाराज सूरपाल की आज्ञा से तुम्हारी निर्दोषता प्रकट करने के लिए यह कठिन परीक्षा ली जाती है। निर्दोष मनुष्य की यह सत्य प्रतीति वाला यक्षदेव अवश्य ही सहाय करता है।

प्रधान का कथनपूर्ण होते ही पुरुष वेषधारक मलयासुंदरी धैर्यधारणकर शीघ्र ही उस घट के पास खड़ी हुई । पंचपरमेष्ठी मंत्र को स्मरणकर, महाबल द्वारा बतलाये हुए उस श्लोक का भावार्थ याद कर उसने प्रसन्नतापूर्वक उत्साह से उस घड़े को उघाड़ा और जनता के आश्चर्यपूर्वक देखते हुए उसमें हाथ डालकर, सर्प को बाहर निकाला । मलयासुंदरी का हाथ लगते ही रस्सी के

समान होकर किसी स्नेही के जैसे वह सर्प उसका मुख देखने लगा । बहुत समय तक हाथ में रखने पर भी उस भयंकर सर्प ने मलयासुंदरी को कुछ भी नुकसान नहीं पहुंचाया। इससे उसकी सत्यता के लिए उपस्थित जनता खुशी होकर उच्चस्वर से निर्दोष, निर्दोष! पुकार कर तालियें बजाने लगी । मलयासुंदरी के हाथ में पाले हुए सर्प के समान रहे हुए उस भीमकाय सर्प ने अपने मुख से एक दिव्यहार उगला और धीरे से उसके गले में डाल दिया। यह आश्चर्य देख तमाम लोग विचारशून्य हो गये । अहा! यह कैसा आश्चर्य! राजा ने उस हार को पहचान लिया और वह बोल उठा – "अहो! यही वह लक्ष्मीपूंज हार है, जिसकी खोज के लिए महाबल कुमार गया है । तमाम मनुष्य एक दूसरे के सामने देखने लगे । इतने ही में उस सांप ने ऊपर फणा उठाकर अपनी जीभ से उस परीक्षा देनेवाले युवक का मस्तक चाटकर, उसके मस्तक पर लगे हुए तिलक को मिटा दिया । तिलक के मिटते ही वह नवयोवना स्त्री बन गयी । सर्प उसके मस्तक पर अपनी फणाओं को छत्राकार में विस्तारितकर आनंद से झूमने लगा । इस आश्चर्य को देखकर तमाम लोगों के छक्के छूट गये । किसी के भी मुंह से कुछ शब्द न निकला । वे भयभीत हो स्तब्ध से रह गये ।

इस चमत्कार को देख भय से कंपित हो, महाराज सूरपाल बोला – 'अरे! मैंने मूर्खता में आकर यह कैसा अयोग्य कार्य किया! जनता और रानी के मना करने पर भी मैंने इस दिव्य पुरुष की ऐसी भयंकर परीक्षा लेकर महाअनर्थ पैदा किया है । यह सर्प कोई साधारण सर्प नहीं है; परंतु कोई देव या दानव सर्प का रूप लेकर आया मालूम होता है । अथवा इस सत्पुरुष की सत्यता के कारण यह शेष नाग ही इसकी सहायता करने के लिए आया हो, या इस मंदिर का अधिष्ठाता धनंजय यक्षराज ही प्रकट हुआ हो यह अनुमान होता है । इस घटना का कुछ परमार्थ समझ में नहीं आता । मुझे इनकी आराधना करनी चाहिए । क्योंकि भक्ति से ही देवता स्वाधीन या अनुकूल होता है । यह सोचकर राजा ने पुष्प और धूप मंगाकर उस नाग देव की पूजा की और हाथ जोड़कर नम्रता से कहा

– 'हे पन्नगाधिराज! मैंने तुम्हें अनेक प्रकार से कष्ट पहुंचाया है, कृपाकर मेरा अपराध क्षमा करो ।

राजा जब यह कर रहा था तब मलयासुंदरी ने उस सर्प को नीचे जमीन पर रख दिया । राजा ने दूध मंगाकर उस सर्प के सामने रखा । जब सर्प ने दूध पी लिया तब राजा ने उस सर्प को लानेवाले गारुडियों से कहा इस नागराज को जहां से तुम लाये हो; उसी जगह इस तरह छोड़ आओ कि जिससे इसे जरा भी तकलीफ न होने पावे । यदि इस नागदेव को वहां छोड़ने तक जरा भी तकलीफ पहुंची तो मैं तुम्हें प्राणदंड की शिक्षा दूंगा । राजा का आदेश पाते ही गारुड़ी लोग उस सर्प को बड़ी हिफाजत के साथ उठाकर ले गये ।

अब राजा मलयासुंदरी से पूछने लगा – 'भद्रे! तूं पहले पुरुष रूप में थी और इस समय हमारे देखते हुए तेरा स्त्रीरूप बन गया, इस बात में क्या रहस्य है? अपना सच्चा वृत्तांत सुनाकर हमारे सबके मन को शांत कर । मलयासुंदरी इस समय यह विचार कर रही थी कि पहले भी मेरे मस्तक पर किये हुए तिलक को मेरे स्वामी के थूक से मिटाने पर मेरा स्वाभाविक रूप बन गया था और उन्होंने मुझे यह कहा भी था कि जब तक मैं अपने थूक से इस तिलक को न मिटा दूंगा। तब तक तेरा स्वाभाविक रूप कदापि न होगा; परंतु इस वक्त तो इस सर्प के ही तिलक चाटने से मेरा स्वाभाविक रूप बन गया! यह लक्ष्मीपूंज हार भी इस सर्प के मुख में से निकला, तो क्या मेरे स्वामी ने ही इस सर्प का रूप धारण किया होगा? यह बात समझ में नहीं आती । यदि इस वक्त मैं अपनी सत्य घटना राजा को सूना दूं तो उसमें किसी तरह की हानि मालूम नहीं होती यह सोचकर मलयासुंदरी बोली – महाराज! मैं चंद्रावती नरेश महाराज वीरधवल की मलयासुंदरी नामा पुत्री हूँ, इसके सिवाय और मैं कुछ नहीं जानती ।

भद्रे! तेरा यह वचन विश्वास करने योग्य नहीं है क्योंकि जब तूं पुरुष रूप में थी तब कुछ और कहती थी । फिर कहां चंद्रावती और कहां पृथ्वीस्थानपुर नगर! बासठ योजन का अंतर और फिर महाराज वीरधवल की कन्या यहां पर

एकाकी किस तरह आ सकती है? खैर यदि यह बात सच ही होगी तो इतमिनान होने पर या वहां से कोई इसकी खोज में आयगा तो इसका सत्कार कर उसके साथ इसे वापिस भेज दिया जायगा । अब रानी के सामने नजर कर राजा ने कहा प्रिये! लक्ष्मीपूंज हार सहित अभी तो तुम इस कन्या को अपने पास ही रखो । प्रतिज्ञा के अनुसार हार पांच ही दिनों में आ गया है । सत्य प्रतिज्ञा वाला कुमार भी किसी स्थान पर सुखी या दुःखी अवस्था में अवश्य होगा और वह अब जल्दी ही आ मिलेगा अतः अब तुम प्राण त्याग के अभिप्राय को त्याग दो, क्योंकि हार के लिए की हुई प्रतिज्ञा भी तुम्हारी पूर्ण हो चुकी है ।

रानी पद्मावती – प्राणनाथ! पुत्र रत्न को खोकर क्या इस हार की प्राप्ति से मुझे संतोष हो सकता है? मैं अपने इकलौते सद्गुणी पुत्र के सिवाय किस तरह जीवन धारण कर सकती हूँ? मेरी बुद्धिमत्ता को धिक्कार है, मैंने मूढ़ता में आकर इस हार के लिए अपने प्राणप्यारे पुत्र को संकट में डाला, सचमुच यह मैंने वैसा ही किया जैसे कोई मूर्ख मनुष्य नीम के लिए अपने घर में लगे हुए कल्पवृक्ष को नष्ट कर देता है । प्यारे पुत्र को खोकर अब मैं जीवित नहीं रह सकती । इसलिए महाराज मुझे आज्ञा दें मैं झंपापात करके प्राण त्याग करूंगी ।

देवी! मैंने तुम्हें प्रथम ही कह दिया कि कल तक धीरज धारण करो । जब लक्ष्मीपूंज हार मिल गया तो कुमार भी अवश्य आ मिलेगा । इस प्रकार रानी को धीरज देकर राजा महल में आया। लोग भी आश्चर्य पाते हुए अपने स्थान पर चले गये । मलयासुंदरी ने भी रानी के साथ राजमहल में आकर भोजनकर वह शेष दिन व्यतीत किया । राजकुमार की चिंता में राजा और रानी ने वह दिन और सारी रात बड़े कष्ट से पूर्ण की!

प्रातःकाल होते ही कुमार की खोज में भेजे हुए राजपुरुष चारों तरफ से जैसे गये थे वैसे ही वापिस आने लगे । धीरे – धीरे सबने वापिस आकर उदासीन हो कुमार के न मिलने का समाचार दिया । इस समाचार से राजा और रानी के हृदय में निराशा के घोर बादल छा गये । रानी पद्मावती ने झंपापात कर प्राण

त्याग दृढ़ निश्चय कर लिया । निरुपाय हो राजा को भी वैसा ही मंजूर करना पड़ा। अब वे पर्वत शिखर से गिरकर प्राण त्याग करने के लिए समीवर्ति अलंब नामक पहाड़ की तलाटी में आ पहुंचे शहर भर की जनता हैरान थी, मलयासुंदरी के दुःख का भी पार न था ।

पृथ्वीस्थान नगर के समीप प्रचंड प्रवाह में गोला नदी बह रही है । किनारे पर धनंजय यक्ष का मंदिर है । मंदिर से थोड़ी ही दूर एक विशाल घटादार वटवृक्ष है । शाखाप्रशाखाओं से विस्तार पाये हुए उस वटवृक्ष के नीचे अनेक मनुष्य और पशु गण विश्रांति लेते हैं । इसी वटवृक्ष की एक मजबूत शाखा के साथ लटकाकर आज से तीसरे दिन पहले लोहखुर नामक एक चोर को राजा की आज्ञा से मरवा दिया गया था, उस चोर के नजदीक की दो शाखाओं के मध्य में एक युवा पुरुष ओंधे मस्तक लटक रहा था, उसके दोनों पैर दो साखाओं के साथ मजबूत बंधनों से बंधे हुए थे; वह युवक अपने असह्य दुःख के कारण एक शब्द भी मुख से नहीं बोल सकता था। उस तरफ जानेवाले कई एक राहगीर वार्तालाप करते जाते थे कि महाराज सूरपाल तथा पद्मावती रानी पुत्र वियोग में आज झंपापातकर मरने के लिए इस समय पहाड़ की तरफ गये हैं । एक राहगीर का ध्यान लटके हुए महाबल की ओर गया, उसे कुछ संदेह हुआ और उसने राजा आदि परिवार जहां आया था । उस पर्वत की ओर दौड़कर उसने ठहरो – ठहरो महाबल कुमार मिल गया है ऐसी आवाज जोरो से लगायी । लोगों का ध्यान उस की ओर गया । राजा ने उसकी बात सुनकर सुभटों को खोज करने भेजा । सुभटों ने वहां आकर महाबल कुमार को वटवृक्ष से नीचे उतारकर वहां ले आये । महाबल कुमार को किसी तरह की चोट तो लगी ही न थी । सिर्फ बंधन और उलटे मस्तक से लटकने के कारण अत्यंत दुःख सहना पड़ा था । अब वे दोनों कारण दूर होने से धीरे – धीरे वह विशेष स्वस्थ होने लगा । सर्वथा शांति पाकर वह धीरे से बैठा हो गया और चारों और नजर घुमा कर देखने लगा। पास में बैठी हुई मलयासुंदरी पर जब उसकी दृष्टि पड़ी तब अकस्मात् उसके

चेहरे पर प्रसन्नता सी झलक उठी । अब वह माता – पिता के आग्रह से अपना विचित्र वृत्तांत सुनाने लगा ।

उस दिन मध्यरात्रि के समय महल में एक हाथ देखने में आया था, वहां से लेकर आधीरात को मलयासुंदरी को केलों के बगीचे में अकेली छोड़ एक औरत के रोने का शब्द सुन उसका कष्ट दूर करने की भावना से उस शब्द के अनुसार जंगल में गया था, वहां तक का सर्ववृत्तांत कह सुनाया । रुदन करती स्त्री के शब्दानुसार आगे जाते हुए मंत्रसाधन करने की सर्व तैयारी किये बैठा हुआ मुझे एक योगी देखने में आया । मुझे देखकर उसने अपना काम छोड़ दिया और सन्मान देकर विनयपूर्वक वह मेरे पास याचना करने लगा कि हे कुमार! आप परोपकार करने में प्रवीण है । मेरे पुण्योदय से ही आप इस समय अकस्मात् यहां आ पहुंचे हैं । मैंने एक महामंत्र सिद्ध करना प्रारंभ किया है । वह मंत्र सिद्ध होने पर सुवर्ण पुरुष की सिद्धि होगी । मैंने सर्व सामग्री तैयार कर रखी है । परंतु उत्तर साधक के अभाव से अटक रहा हूं । इसीलिए कुछ देर के वास्ते आप मेरे पास रहकर उत्तर साधक बनें, जिससे आपकी सहायता से मेरी मंत्रसिद्धि हो ।

पिताजी! योगी की प्रार्थना से मुझे दया आ गयी । इसीलिए उसकी प्रार्थना मंजूरकर और उसके कथनानुसार हाथ में खड्ग लेकर मैं उसका उत्तर साधक बना । योगी ने कहा – 'हे वीर पुरुष! जहां पर यह स्त्री रुदन कर रही है उस वटवृक्ष की शाखा से बंधा हुआ अक्षतांग वाला एक चोर का मृतक है । उसे आप जहां ले आवें । मैं तलवार हाथ में लिये वटवृक्ष के नीचे पहुंचा । वहां चोर के मुरदे के नीचे जमीन पर बैठी हुई रुदन करती मुझे एक स्त्री देखने में आयी । मैंने उससे पूछा – 'भद्रे! तूं कौन है? किस लिए करुण स्वर से रुदन करती है? और ऐसी भयंकर रात्रि में तुझे एकाकी स्मशान में आने का क्या कारण है?' मेरी बात सुनकर वह निश्चल दृष्टि से मेरे सन्मुख देखती हुई बोली – सत् पुरुष! मैं मंदभाग्या अपने दुःख की तुम्हें क्या बात सुनाऊँ? इस बड़ की शाखा से जो पुरुष लटकाया हुआ है वह अलंब पर्वत की गुफा में रहनेवाला और नगर को

लूटनेवाला लोहखुर नामक चोर है । आज से दूसरे दिन पहले राजपुरुषों ने छल प्रपंच से उसे पकड़कर राजा के पास हाजिर किया । राजा ने इसे क्रोध में आकर इस बड़ की शाखा से बंधवाकर मरवा डाला । मैं उसकी प्रिय स्त्री हूँ । इसी दुःख से मैं रुदन करती हूं । जिस दिन इनकी मृत्यु हुई उस दिन ही सुबह मैं इसे मिली थी । और पत्नी होकर रही थी । थोड़े ही समय में इसने जो मुझे प्रेम किया था वह अभी तक मेरे हृदय में खटकता है । सत्पुरुष! आप कोई ऐसा उपाय करें जिससे मैं उसके मुख पर चंदन का विलेपन करूँ ।''

उस स्त्री के करुणाजनक वचनों से मेरा हृदय – द्रवित हो गया । मैंने उसे कहा – तूं मेरे कंधों पर चढ़कर तुझे उचित लगे वैसा कर । वह स्त्री उत्कंठा पूर्वक मेरे कंधों पर चढ़ कर, उस शव की गर्दन में हाथ डालकर, ज्यों उसका आलिंगन करने लगी त्यों ही उस मृतक ने अकस्मात् अपने दांतों से उसकी नासिका पकड़ ली । वह दुःख से रुदन करती हुई कांपने लगी । जब उसने नासिका छुड़ाने के लिए पीछे को जोर लगाया तब मजबूत पकड़ी हुई होने के कारण वह मुर्दे के मुख में ही टूट गयी । यह आश्चर्य देख मुझे हंसी आ गयी । क्योंकि जिस चोर के प्रेम के लिए वह स्त्री रोती थी और जिसे आलिंगन करने के लिए अधिक उत्कंठा थी, उसी चोर के मृतक ने उसका नाक काट दिया । मुझे हंसता देख अकस्मात् उस मृतक के मुख से यह शब्द निकले – महाबल मेरा चरित्र देख कर तूं किसलिए हंसता है? कुछ समय के बाद तूं भी मेरे समान इसी वटवृक्ष की शाख पर लटकाया जायगा, अगली रात्रि में ही तेरे ऊंचे पैर और नीचा मस्तक करके तुझे यहां पर बांधा जायगा । पिताजी! उसके यह शब्द सुनकर निर्भीक होने पर भी मेरे हृदय में कुछ भय पैदा हुआ । महाबल के मुख से यह कथन सुन वहां पर बैठे हुए राजा आदि तमाम लोग विस्मय पाकर बोल उठे – कुमार! बड़ा आश्चर्य है, क्या कभी मुरदे भी कुछ बोलते हैं? पिता की तरफ देख कुमार बोला – पिताजी! आपका कहना सच है, मुरदा नहीं बोल सकता, परतु मुरदे के मुख में प्रवेशकर कोई व्यंतर आदि देव ही बोल सकता

है । मैं धैर्यवान् था तथापि देव – वाक्य मिथ्या नहीं होता यह जानकर क्षोभित हुआ ।

कांपती हुई स्त्री मेरे स्कंधों से नीचे उतरी, उसने मेरा नाम स्थान पूछा, मैंने भी अपना नाम स्थान सत्य बतला दिया । इससे उसे मुझपर कुछ विशेष विश्वास हुआ हो यह मालूम हुआ । जाते समय वह स्त्री मुझसे बोली; कुमार! जब मेरी नासिका अच्छी हो जायगी तब मैं आपके पास आकर इस चोर का गुफा में दबाया हुआ धनादि बतलाऊँगी । उसके चले जाने पर मन को दृढ़कर मैं वटवृक्ष पर चढ़ा । चोर के मुरदे को बंधन से छोड़कर जमीन पर गिराकर मैं नीचे उतरा । परंतु इतने ही मैं वह मुरदा उछलकर फिर वापिस शाखा से जा बंधा । मुझे फिर से वटवृक्ष पर चढ़ना पड़ा । मैं समझ गया कि यह कुछ दैवी चमत्कार है, अन्यथा जमीन पर पड़ा हुआ मुरदा स्वयं उठकर ऊपर नहीं जा सकता । ऐसी परिस्थिति में इस मुरदे को योगी के पास किस तरह ले जाया जा सकता है? मैंने एक उपाय सोचकर उस मृतक को बंधन से छोड़ उसके केशों को पकड़कर मैं उसके साथ ही नीचे उतरा और उसे पीठपर लादकर, योगी के पास लाकर रख दिया ।

महाबल कुमार की विचित्र घटना सुनते हुए श्रोताओं को कभी आश्चर्य, कभी शोक, कभी हास्य, कभी भय से कंपन, कभी आनंद और कभी दुःख का अनुभव होता था । इस तरह अनेक रस का अनुभव करते हुए लोगों को आगे क्या हुआ होगा; यह जानने के लिए एकाग्रमन से उत्सुकता हो रही थी । महाबल बोला – 'पिताजी! योगी ने उस मुरदे को स्नान कराकर चंदनादि के रस से उसका विलेपन किया । फिर एक बड़ा अग्निकुंड बनाकर उसमें अंगारे दहकाकर उसके पास उस मुर्दे को रख मुझे उत्तर साधक के तौर पर खड़ा रखा । इधर योगी ने पद्मासन लगाकर, आँखें मीच एकाग्र चित्त से जाप जपना शुरु किया । जाप जपते हुए सुबह होने आयी परंतु वह मृतक मंत्रप्रभाव से उठकर अग्निकुंड में न पड़ा। यह देख निराश हो योगी जाप जपने में शिथिल हो गया । इतने ही में वह मुरदा भयंकर अट्टहास्य करता हुआ आकाशमार्ग से उड़कर पहले के जैसे उसी वटवृक्ष

की शाखा पर जा लटका । योगी बोला – 'राजकुमार! मालूम होता है मंत्र साधना में कहीं पर मुझ से भूल हुई है । इसी कारण मंत्रसिद्ध नहीं हुआ और मृतक भी उड़कर चला गया । अब आगामी रात्रि में फिर से मंत्रसाधन करना पड़ेगा । इसीलिए मुझ पर कृपाकर आने वाली रात्रि तक आप यहां ही रहें । परोपकारी राजकुमार! आपकी सहाय बिना मेरा मंत्र सिद्ध होना अशक्य है । मुझे पूर्ण विश्वास है आप मेरी इस प्रार्थना को अवश्य ही मंजूर करेंगे । योगी के अत्यन्त आग्रह से और कुछ परोपकार की प्रेरणा के कारण अपनी परिस्थिति को भूलकर दूसरी रात में भी उसकी मंत्रसिद्धि में उत्तर साधक बनना मैंने मंजूर कर लिया।

भय के कारण योगी मुझ से बोला – 'कुमार! आपको मेरे पास रहा हुआ देख राजपुरुष या अन्य कोई मनुष्य यह शंका करेगा कि इस योगी ने राजकुमार को किसी छल प्रपंच से अपने स्वाधीन किया हुआ है । अतः इसे मारकर राजकुमार को छुड़ा लें, अन्यथा कुमार को साथ लेकर यह योगी अन्यत्र चला जायगा । इत्यादि कई कारणों से मुझ पर आपत्ति आने का संभव है । इसीलिए यदि तुम्हारी मर्जी हो तो सूर्य अस्त तक विद्याबल से मैं तुम्हारा रूप परिवर्तन कर दूं । पिताजी! मैंने योगी का कथन स्वीकार लिया, मेरे पास से यह लक्ष्मीपूंज हार न चला जाय यह सोचकर मैंने उसे अपने मुख में डाल लिया । योगी ने जंगल में से एक जड़ी लाकर उसे मंत्रित कर, मेरे मस्तक पर उसका तिलक किया, उसके प्रभाव से काजल से भी अधिक काला और देखने मात्र से भयंकर रूपवाला मैं एक दीर्घकाय सर्प बन गया । मुझे रहने के लिए नजीक में ही उसने एक गुफा बतलाकर वह स्वयं किसी कार्य के लिए अन्यत्र चला गया । पवन का पान करते हुए जब मैं दुपहरी में उस गुफा में समय बिता रहा था तब सर्प की खोज करते हुए वहां पर कई एक सपेरे आ पहुंचे । उन्होंने मंत्रबल से स्तंभितकर मुझे पकड़ कर एक घड़े में डाल दिया । और यक्ष के मंदिर में आपके पास ला रखा । आपने उस नवीन पुरुष को दिव्य करने के लिए (परीक्षादेने के लिए) आज्ञा दी । उसने भी निर्भीक हो मुझे पकड़कर घड़े से बाहर निकाला; उसे देखकर मैंने पहचान लिया, इसलिए अपने मुख में से हार निकालकर मैंने उसके

गले में डाल दिया । फिर वह पुरुष साक्षात् स्त्री बन गयी । उस वक्त भयभीत होकर आप लोगों ने धूप, पुष्प से सांप की पूजा की और उसे दूध पिलाया । फिर आपने उसे पर्वत की उसी गुफा में छुड़वा दिया। ये तमाम बातें आप सब को मालूम ही है ।

राजा – पुत्र! वह नवीन पुरुष हमारे देखते हुए अकस्मात् दिव्य रूपधारी स्त्री क्यों कर बन गयी?

महाबल – 'पिताजी! मध्यरात्रि में रुदन करती हुई उसी स्त्री का शब्द सुनने के बाद उसके शब्दानुसार जाते समय (मलयासुंदरी की ओर इशारा कर) 'इस' आपकी पुत्रवधू को मैं अपने वस्त्राभूषण सहित पुरुष के रूप में केलों के बगीचे में छोड़ गया था । प्रातःकाल होने पर किसी तरह वह फिरती हुई यहां आ गयी और आपने उसकी घट सर्प का भयंकर दिव्य देकर कठिन परीक्षा ली। आपके महान् पुण्योदय से उस परीक्षा में विधाता ने मुझे ही सर्प के रूप में भेज दिया। मैंने उसे पहचानते ही गुटिका के प्रयोग से पुरुष रूप बनानेवाला उसके मस्तक पर जो तिलक किया हुआ था वह तिलक अपनी जीभ से मिटा दिया । उसके मिटते ही वह आप लोगों के समक्ष अपने स्वाभाविक रूप में वीरधवल राजा की पुत्री हो गयी । यह राजकुमार की पत्नी है, यह निश्चय होते ही राजा आदि तमाम मनुष्य आदर और स्नेह की दृष्टि से मलयासुंदरी के सन्मुख देखने लगे । इस समय महाबल ने मलयासुंदरी के सन्मुख देख कुछ इशारा किया जिससे तुरंत ही उठकर मलयासुंदरी ने अपने वस्त्र संकोचकर मर्यादापूर्वक श्वशुर और सास के चरणों को हाथ लगाकर नमस्कार किया । उन्होंने भी प्रसन्न हो उसे अखंड सौभाग्यवती रहो, यह आशीर्वाद दिया।

इस वक्त अपने अपराध का पश्चात्ताप करते हुए महाराज शूरपाल के नेत्रों से अश्रु बहने लगे । मस्तक हिलाकर वह बोल उठा – ओ, कमनसीब शूरपाल! अपनी पुत्र वधू पर शत्रु के समान इतना अनुचित आचरण!! नगर के प्रधान नागरिक बोले – महाराज! इसमें आपका नहीं परंतु अज्ञानता का ही

अपराध है । रानी पद्मावती ने हाथ पकड़कर पुत्रवधू को अपनी गोद में बैठाकर स्नेह से कहा – पुत्री! तूंने उस समय अपना सच्चा वृत्तांत क्यों न मालूम किया? अथवा उस अवसर पर तेरा मौन रहना ही ठीक था । क्योंकि तुम्हारी यह विचित्र घटना उस वक्त सच कहने पर भी किसी के मानने में न आती । पुत्री! अज्ञानता के कारण हमने तुझे कैसा असह्य दुःख दिया है? हा, हा! यदि उस अवसर पर तेरा कुछ भी अनिष्ट होता तो हमारी क्या दशा होती? सचमुच ही अभी तक हमारे पुण्य का उदय है, इसी कारण इतना कष्ट सहकर भी हमारे कुल का उद्धार हो गया । बेटी! तुम परमार्थ को जाननेवाली कुलीन बाला हो अतः हमारा यह अपराध तुम्हें क्षमा करना चाहिए । तेरे सरीखी सद्‌गुणवाली राजकुमारी के साथ विधिपूर्वक विवाहकर वधू सहित सत्यप्रतिज्ञ राजकुमार को देख हम अपने मानवजन्म को सफल समझते हैं । यों कहकर रानी पद्मावती ने अपनी कीमती आभूषण देकर पुत्रवधू मलयासुंदरी का अच्छी तरह सत्कार क्रिया ।

राजा – बेटा! अलंबगिरि का गुफा में सर्परूप में फिर तुमने क्या क्या अनुभव किया? महाबल बोला – पिताजी! शेष दिन तो शांति से ही बीत गया था । संध्या समय योगी मेरे पास आया, उसने आकर दूध से मेरे मस्तक पर किये हुए तिलक को मिटा दिया, इससे मेरा स्वाभाविक रूप हो गया । वह फिर मुझसे बोला – कुमार! चलो फिर अपना मंत्र साधन शुरू करें । मैं उसके साथ चला गया । अग्नि से जाज्वल्यमान कुण्ड के पास जाकर योगी ने मुझे फिर उस कलवाले मृर्दे को लाने की आज्ञा दी । मैंने पहले के समान ही वटवृक्ष से मृतक को नीचे उतार दिया । मैंने पहले के समान ही वटवृक्ष से मृतक को नीचे उतार योगी के पास ला रखा । योगी ने उसे स्नान कराकर मंडल के अंदर लिटा दिया और उत्तर साधक के तौर पर मैं उसके पास खड़ा रहा । अब ज्यों – ज्यों उस योगी ने मंत्र जाप जपना शुरू किया त्यों – त्यों वह मृतक उठ उठ कर फिर वापिस नीचे पड़ने लगा । इस तरह जाप करते हुए आधी रात बीत गयी । तब आकाश में डमरू का शब्द सुनायी दिया । इसके बाद प्रत्यक्ष में यह ध्वनि सुन पड़ी "अरे! यह मृतक अशुद्ध है, इससे सुवर्ण पुरुष सिद्ध न होगा ।" यों

बोलती हुई कोपायमान हुई देवी आकाश से नीचे उतरी और कपाली योगी को केशों से पकड़कर ऊपर उछाल उसने उस दहकते हुए अग्नि कुंड में फेंक दिया। धैर्यवान होने पर भी मैं उस देवी की क्रूर और भयंकर आकृति देख शोभित हो गया। देवी ने एक नागपाश से मेरे हाथ बांध लिये और ऐसी सुंदर आकृतिवाले कुमार को मारना ठीक नहीं यों कहकर मेरा पैर पकड़ वह देवी मुझे आकाश मार्ग से ले चली। यहां आकर इस वटवृक्ष की शाखा में मेरे दोनों पैर बांधकर वह आकाश में चली गयी। मैं लटकता रह गया, वह चोर का मुर्दा भी वहां से उड़कर फिर यहां ही आ लटका।

लोगों ने गर्दन घुमाकर उस चोर के मृतक की तरफ देख कर कहा – 'अरे! यह मृतक तो अक्षतांग है, फिर देवी ने यह अशुद्ध है, ऐसा क्यों कहा होगा? राजा ने कुछ देर विचारकर मस्तक हिलाते हुए कहा – हां देवी का कहना ठीक था, जाकर देखो! उस स्त्री का टूटा हुआ नाक इसके मुख में होना चाहिए। और इसी कारण देवी ने इस मृतक को अशुद्ध बतलाया। पास में जाकर देखने से मालूम हुआ सचमुच ही उस मुर्दे के मुंह में उस स्त्री के नासिका का अग्रभाग था। महाबल खेदपूर्वक बोल उठा – अहा मुझे भी यह बात मालूम नहीं रही। वह घटना ही मैंने योगी को नहीं सुनायी। व्यर्थ ही बिचारे योगी के प्राण गये और उसका कार्य भी सिद्ध न हुआ। राजा बोला – बेटा! खेद न करो। होनहार होकर ही रहती है। आगे बोलो तुम्हारे हाथों पर बंधा हुआ नागपाश किस तरह छूटा? महाबल – पिताजी! उस सर्प की पूंछ इधर उधर हिलती हुई मेरे मुंह के आगे आ गयी। उस पूंछ को रोष में आकर मैंने अपने दांतों से ऐसी दबायी कि जिससे वह सांप धीरे – धीरे मेरे हाथों से ढीला होकर नीचे जा पड़ा। विषापहारी मंत्र और औषधी के प्रभाव से मेरे शरीर में उसका जहर न चढ़ा। ऐसे असह्य दुःख में रात्रि के अंतिम दोनों पहर मैंने बड़े कष्ट से बिताये। इस समय आपने आकर मेरा संकट दूर किया। यही मेरी सारी राम कहानी है।

कुमार का पूर्वोक्त चमत्कारि वृत्तांत सुन आश्चर्य और दुःख का अनुभव करते हुए शहर के प्रधान नागरिक बोल उठे – कुमार! धन्य है आपको! आपने

थोड़े ही समय में दुःख के भयंकर सागर को पार किया । ऐसे संकट में भी इतनी परोपकार बुद्धि और इतना धैर्य आपके बिना और कौन रख सकता है?

राजा के कहने से योगी के मंत्र साधन का स्थान देखने पर उस अग्निकुंड में पड़ा हुआ योगी का शरीर सुवर्ण पुरुष के रूप में देख पाया । उस सुवर्ण को वहां से उठवाकर राजा ने अपने खजाने में भिजवा दिया । सुवर्ण पुरुष का यह प्रभाव होता है कि संध्या समय उसके हाथ पैर काट लेने पर रात्रि में वह फिर वैसा ही अंगोपांग सहित हो जाता है । अब राजा अपने परिवार सहित नगर में आ गया । प्रजाजन भी अपने - अपने स्थान पर चले गये । परिवार सहित राजा के पुनर्जन्म की प्राप्ति की खुशी में नागरिक लोगों ने नगर में दश दिन तक महोत्सव किया । राजा ने भी याचकों को खूब प्रीतिदान दिया ।



◆ *नाशवंत पदार्थ की शरण ढूंढने वाले की शरण में जाना अज्ञता है । पर को अपना मानना आत्मवंचना है । ममत्वभाव जन्म मरण को बढ़ानेवाला है । अतः इन कारणों से आत्मा को बचाना हितावह है ।*

-जयानंद

सुख के दिन

कैसा गौरव पूर्ण दृश्य है । सूर्य अस्ताचल पर जा पहुंचा है । सारे आकाश में सूर्य के सिवा और कुछ नजर नहीं आता । चार पहर तक आकाश की मरुभूमि में चलकर, इस समय सारे जगत को लाल रंग कर सूर्य अस्त होने जा रहा है । जैसे गौरव के साथ उसका उदय हुआ था वैसे ही गौरव से अब उनका अस्त भी हो रहा है । यह लो अस्त हो गया । पीले आकाश का रंग अब धूसर हो रहा है । अब मानो देवताओं की आरती के लिए संध्या इस समय अस्त होते हुए सूर्य की ओर चुपचाप देखती हुई धीरे – धीरे विश्वास मंदिर में प्रवेश कर रही है ।

ऐसे प्रशांत समय में एक भव्य मकान में एक युवती बैठी हुई गीत गा रही है ।

प्यार करूं जिनको मैं वे भी, मुझको प्यार करें तो धन्य ।
निर्जन वन में या महलन में, उन्हें चाहती रहूं अनन्य ॥
चरण धूलि धोऊंगी उनकी, अपने आंसु के जल से ।
हृदय देवता उन्हें बनाकर, पूजूंगी मन निश्चल से ॥
मेरे मन मंदिर से स्वामी, बाहर न जावें कभी कहीं ।
सुखी रहूँ या दुःखी सदा मैं, पर वे हरदम रहें यहीं ॥

गाना पूरा भी न होने पाया था इतने ही में वहां पर एक प्रसन्नचित्त युवक ने प्रवेश किया। वह युवक उस युवती के पीछे आ खड़ा हुआ और सहसा बोल उठा अहा! आज तो देवी बड़ी प्रसन्न मालूम होती हैं, कल कैसा भयंकर कष्ट भोगा होगा क्या वह आज तुम्हें सर्वथा भूल गया? यह सुन युवती एक दम खड़ी हो गयी और उस युवक की ओर प्रेमभरी नजर से देखती हुई बोली–प्यारे! आप नहीं जानते क्या कठिन यात्रा का प्रवासी अपनी यात्रा के अंत में इष्ट देव के दर्शन या प्रवास के परिश्रम को सर्वथा भूल नहीं जाता? युवक बोला – प्रिये! मेरे अभाव में तुमने बड़े संकट का सामना किया?

युवती – हृदयेश्वर! मैं कोमलांगी अवश्य हूं परंतु आपके उपदेश से मुझ में सहन शक्ति बढ़ गयी है । प्यारे! आपके वियोग दुःख के सिवा मैं अन्य दुःखों को कुछ गिनती ही नहीं । दुःख में अनेक प्रकार की शिक्षा मिलती है । बल्कि मैं तो समझती हूं कि दुःख बहुत ही महत् और सुख बहुत ही नीच होता है । सुख में अहंकार होता है । उसका स्वर बहुत ऊंचा और कर्कश होता है, परंतु विषाद बहुत ही विनयी, बहुत ही नीरव होता है । दुःख में जो कुछ जमा किया जाता है, सुख में वही खर्च किया जाता है । दुःख जड़ की भांति मिट्टी में से रस खींचता है, परंतु सुख फूलों और पत्तों की तरह विकसित होकर उसी रस को व्यय करता है । दुःख वर्षा की तरह तपी हुई भूमि को शीतल करता है और सुख शरद् ऋतु के पूर्ण चंद्रमा की भांति आकर उस पर हंसता है । दुःख में त्याग होता है और सुख में भोग । दुःख किसानों की तरह खेत की मिट्टी तोड़ता है और सुख राजा के समान उसमें पैदा हुए अन्न का भोग करता है, इसी कारण दुःख मधुर लगता है ।

युवक – प्रिये! तुम्हारा कथन बिल्कुल यथार्थ है । दुःख पड़ने पर ही मनुष्य के गुणों का विकास होता है । हम दोनों ने तो अपने अशुभ कर्मों का उदय होने से दुःख का अनुभव किया ही परंतु हमारे कारण हमारे माता पिताओं को भी भारी कष्ट का अनुभव करना पड़ा । हमारे अकस्मात् चले आने के कारण तुम्हारे माता पिता अभी तक हमारे वियोग से महान् दुःख का अनुभव कर रहे हैं । यह समाचार अभी हमारी खोज में आये हुए तुम्हारे भाई के द्वारा मिला है।

पाठक महाशय! इस युवक और युवती को पुनः परिचय देने की हमें आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि इनकी वार्तालाप से ही आप समझ गये होंगे कि ये दोनों इसी कथानक के नायक नायिका हैं। पहले परिच्छेद में आपने पढ़ा होगा, महाबल राजकुमारी मलयासुंदरी के अकस्मात् गुम होने के कारण उनके वियोग से दुःखित हो महाराज वीरधवल ने उनकी तलाश में अपने पुत्र मलयकेतु को पृथ्वी स्थानपुर की तरफ रवाना किया था। अब वह बहन और बहनोई की खोज करता हुआ पृथ्वी स्थान पुर में आ पहुंचा है। राजसभा में आकर उन दोनों के यहां पहुंच जाने के समाचार सुन वह अत्यंत खुश हुआ और सूरपाल राजा तथा महाबल कुमार ने भी उसका बहुत ही स्वागत किया। उसीसे मलयासुंदरी के माता पिता को दुःखित होने का समाचार मालूम हुआ। मलय केतु का स्वागत करने में ही महाबल कुमार को आज राजा सभा में इतनी देर हो गयी थी।

राजा के साथ बातचीत किये बाद मलयासुंदरी ने अपने भाई मलयकेतु को रनवास में बुलवा लिया और उससे बड़े प्रेम पूर्वक मिलकर महाराज वीरधवल अपनी माता रानी चंपकमाला आदि का सुख समाचार पूछा। मलयकेतु ने कहा – 'बहन! तुम लोगों के अकस्मात् चले जाने से वे महान् दुःख का अनुभव कर रहे हैं।

महाबल – दैविक प्रयोग से ही हमारा आकस्मिक आगमन हुआ है, इससे मुझे इस बात का दुःख है कि मैं चलते समय उनकी आज्ञा प्राप्त न कर सका। इत्यादि कथन पूर्वक उसने अपनी तमाम घटना कह सुनायी। मलयकेतु - 'अहो! इतने थोड़े समय में आप लोगों ने बड़े भारी दुःख का अनुभव किया। यह कहकर उसने अपनी समवेदना प्रकट की, इसके बाद परस्पर प्रेम की बातें करते हुए उन्होंने अपनी भूख प्यास को भी भुला दिया।

कुछ समय तक आनंद से वहां रहकर एक रोज मलयकेतु ने महाराज शूरपाल से प्रार्थना की अब आप मुझे घर जाने की आज्ञा दें, जिससे कि मैं जमाई और पुत्री के अमंगल की चिंता से महान् दुःख का अनुभव करते हुए माता पिता

को जल्दी जाकर सांत्वना दूं। इनके सुख समाचार की बधाई देकर उनके हृदय को आनंदित करूं।

महाराज शूरपाल – कुमार! तुम्हारे विनयादि सद्गुणों के कारण तुम्हें विदा करने के लिए मेरा मन नहीं मानता तथापि तुम्हारे बतलाये हुए कारण से विवश होकर मैं तुम्हें इसी वक्त चंद्रावती जाने की आज्ञा देता हूं। तुम्हारे पिता से जाकर कहना, हमारा और उनका बहुत समय से प्रेम संबंध चला आ रहा है। अब इस रिश्ते के कारण वह और भी दृढ़तापूर्वक वृद्धि को प्राप्त हो गया। मलयकेतु बोला महाराज! जरूर कहूंगा और ऐसा ही होगा। इस प्रकार राजा की आज्ञा ले मलयकेतु ने अपनी बहन और बहनोई से जाने की आज्ञा मांगी। महाबल बोला – 'मेरी तरफ से मेरी सासू और श्वशुरजी को नमस्कार पूर्वक कहना कि आपकी आज्ञा लिये सिवाय आपके कन्या रत्न को लेकर चले आने से चोर का आचरण करनेवाले महाबल ने तुम्हें महान् दुःख दिया है। उस अपराध की वह आप से वारंवार क्षमा चाहता है। और आपके इस दुःख का किसी स्वार्थ वश नहीं किन्तु दैववशात् पराधीनता से ही मैं हेतु बना हूं।

मलयासुंदरी – बड़े भैया! दैवाधीनता के कारण ही हमारा यहां अकस्मात् आना हुआ है। यह बात माता पिता से जरूर कहना। अब वे मेरी तरफ से किसी प्रकार की चिंता न करें। मैं यहां पर सब तरह से महान् सुख में हूं। मेरे निमित्त से पैदा हुए माता पिता के दुःख के लिए तुम मेरी तरफ से क्षमा याचना करना और उनके चरण छूकर मेरा बार – बार नमस्कार कहना।

मलयकेतु कुमार ने उन तमाम संदेशों को स्नेहपूर्वक स्वीकार कर बहन बहनोई के वियोग से उत्पन्न हुए दुःख को अश्रु धारा से शांतकर चंद्रावती की तरफ प्रयाण कर दिया। थोड़े ही दिनों में चंद्रावती में आकार उसने जमाई और पुत्री के सुख समाचार की माता पिता को बधाई दी और शोक चिंता दूर कराकर उसने सबको आनंदित किया।

सांसारिक आनंद से सुख शांति प्राप्त किये दंपती एक रोज महल की खिड़की में बैठे हुए पुण्य की प्रबलता, कर्मों की विचित्रता और पाप की विषमता

के विषय में परस्पर वार्तालाप कर रहे थे । उस समय महाबल कुमार ने अपने महल के सामने से आती हुई एक स्त्री को देखा । उस स्त्री का नाक कटा हुआ था, उसकी तरफ देखकर महाबल ने मलयासुंदरी से कहा - 'प्रिये! सामने आनेवाली इस स्त्री को देखो! जिसका रुदन सुनकर उस दिन अंधेरी रात में दया से प्रेरित हो मैं तुम्हें बगीचे में अकेली छोड़ उसे संकट मुक्त करने गया था; वही यह स्त्री है । मलयासुंदरी ने उसकी और गौर से देखा और आश्चर्य के साथ उसने उसे पहचान लिया । अतः वह बोल उठी-स्वामिन्! अरे, यह तो वही कनकवती है, जिसे हमने उस दिन संदूक में बंधकर गोला नदी में बहा दिया था। यह यहां पर कहां से आ गयी होगी? यह आपके पास कुछ गुप्त बात कहने के लिए आती हो ऐसा मालूम होता है । अगर इसने मुझे पहचान लिया तो लज्जा के कारण यह कुछ भी न कहने पायगी । इसीलिए यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं परदे में जा बैठूं । महाबल ने उसे वैसा करने की संमति दी ।

द्वारपाल से महाबल की आज्ञा मंगाकार वह स्त्री महाबल के पास आयी और उसे नमस्कारकर एक तरफ खड़ी रही । महाबल ने भी उचित सन्मानपूर्वक उसे बैठने का इशारा किया । उसके बैठ जाने पर महाबल बोला भद्रे! तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? कहाँ से आयी हो? क्या तुम अपना परिचय मुझे दे सकती हो? कुछ विश्वास पाकर वह छिन्न नासिका बोली -राजकुमार! मैं विपदा की मारी तुम्हें अपना चरित्र क्या सुनाऊं! खैर फिर भी सुनाती हूँ सुनो मैं चंद्रावती नरेश महाराज वीरधवल की कनकवती नामा रानी हूं । एक दिन निष्कारण ही राजा ने मुझ पर कोप किया; मुझे भी उस बात से बड़ा क्रोध आया और उसी क्रोध में मैं तमाम वस्तुओं और अपने तमाम सुख को ठुकराकरक निकल आयी । रास्ते में मुझे एक परदेशी युवक मिला उसने मुझे गोला नदी पर मिलने के लिए संकेत किया । मैं भी रात्रि के समय उसके किये हुए संकेत स्थान पर उसको जा मिली । उस धूर्त ने मुझसे कहा - 'यहां पर चोर फिरते हैं इसलिए कुछ देर मौन धारणकर खड़ी रह और जो तेरे पास कुछ माल हो वह रक्षण के लिए मुझे दे दे । मैंने विश्वासकर अपने पास की उसे तमाम वस्तुयें दे दी । फिर

उसने मुझे वहां पर पड़ी हुई एक संदूक में कुछ देर तक छिप जाने के लिए कहा। मेरी दी हुई उन वस्तुओं में से एक हार और एक कीमती कंचुक निकालकर उसने बाकी के वस्त्रादि उस संदूक में डाल दिये। चोरों के डर से और उसके कहने से जब मैं उस संदूक में बैठ गयी तब उस पापी ने उस संदूक को ताला लगा दिया। फिर संकेत किये हुए एक दूसरे पुरुष को बुलाकर वह संदूक उन्होंने गोला नदी के प्रवाह में बहा दिया।

महाबल – भद्रे! क्या उन्होंने वह संदूक जान बुझकर नदी में बहा दिया था? क्या तुम उन्हें पहचानती हो? उन्हें वैसा करने का कारण तुम्हें मालूम है?

कनक – मैं उन निष्कारण अपने दुश्मनों को बिल्कुल नहीं पहचानती। मैंने उनका कुछ भी अपराध न किया था। तथापि उन्होंने मेरे साथ क्यों ऐसा किया यह मैं नही जानती।

महाबल – बिना प्रयोजन उन्होंने तुम्हारे साथ बड़ा अघटित आचरण किया। यों कह मस्तक हिला खैर, फिर वह संदूक कहां गया?

कनक – वह संदूक नदी प्रवाह में तैरती हुई प्रातःकाल होते ही यहां धनंजय यक्ष के मंदिर के पास आ लगी। लोहखुर नामक चोर ने उस संदूक को बाहर निकाला। ताला तोड़कर उसमें से मुझे बाहर निकाली। मुझे जीवन देनेवाले उस चोर के साथ मैं अलंबगिरि के विषमप्रदेश में बनाये हुए उसके मकान पर गयी। आपस में हमारा गाढ़ प्रेम हो गया। परस्पर अनन्य विश्वास हो जाने से नगर की चुरायी हुई तमाम लक्ष्मी उसने मुझे सन्मान और प्रेम से बतलायी। मैंने भी अपना नाम स्थान उसे सब कुछ बतलाया। दोपहर तक मेरे पास रहककर किसी कार्यवश वह नगर में आया। राजपुरुषों ने उसे पहचानकर पकड़ लिया। और राजा के स्वाधीन कर दिया। राजा ने उसे वटवृक्ष के साथ लटकाकर मरवा दिया। उस समय उसकी राह देखती हुई मैं पहाड़ के शिखर पर खड़ी थी। मेरा मिलाप होते ही थोड़े ही समय में उसकी यह दुर्दशा हुई देख मुझे बड़ा दुःख हुआ। रात्रि के समय मैं उसके पास जाकर शोक से रुदन कर रही थी। उस समय आपने वहां आकर मेरे दुःख का कारण पूछा। इसके बाद का

तमाम वृत्तांत आप जानते ही है । राजकुमार! यदि आप मेरे साथ चलें तो मैं आपको वह स्थान बतला सकती हूँ । वहां पर बहुत ही धन भरा है । उसे ग्रहणकर जिसका हो उसे आप वापिस दे दवें । मुझे अकेली को इतने धन की कोई आवश्यकता नहीं है । तथा गुप्त वैभव भोगते हुई राजपुरुषों को खबर होने पर मेरी भी चोर के जैसी दुर्दशा न हो इसलिए मैं उस द्रव्य को नहीं चाहती ।

महाबल उसी स्त्री को महाराज शूरपाल के पास ले गया और आवश्यकतानुसार कुमार ने महाराज को उसका परिचय दिया । राजा उस स्त्री को अपने आगेकर कुछ राजपुरुषों को साथ ले उस पहाड़ की गुफा में गया । वहां उस स्त्री ने बड़ा भारी दबा हुआ खजाना बतलाया । राजा ने वह तमाम माल बाहर निकलवाया और प्रजा को बुलाकर जिसकी जो वस्तु चुरायी गयी थी उनको वह - वह वस्तु दे दी । जिस धन का कोई मालिक न हुआ, वह वह पदार्थ सब लेकर राजा वापिस शहर में आ गया । उस स्त्री की योग्यता के अनुसार उस धन में से धन राजा ने उस स्त्री को दिया। उसे लेकर कुमार के साथ वह फिर उसके महल में आयी । वहां पर उसने गले में लक्ष्मीपुंज हार धारण किये आनंद रस में निमग्न हुई मलयासुंदरी को बैठे देखा । मलयासुंदरी को देखते ही उसके हृदय में भयंकर चोट पहुंची हो इस तरह वह सहसा स्तब्ध हो गयी । आश्चर्य में पड़कर वह विचारने लगी - अरे! यह दुष्ट लड़की किस तरह जीवित रही? अंधकूप में से कैसे निकली? और इस कुमार ने कब और किस तरह इसका पाणिग्रहण किया? ये तमाम बातें जानने की उसके हृदय में तीव्र जिज्ञासा हुई । परंतु कुछ भी पूछने का साहस नहीं हुआ । उसने सोचा यदि मैं इससे यह बात पुछूंगी तो यह मेरा तमाम विचित्र चरित्र प्रकट कर देगी और फिर मुझे यहां रहना तक भी मुश्किल हो जायगा । यह लक्ष्मीपुंज हार भी उस मेरे दुश्मन ने इसे लाकर दिया मालूम होता है । या क्या मालूम इन दोनों ने ही मिलकर, नदी किनारे मुझसे हार ले लिया हो । बिल्कुल ये दोनों मेरे दुश्मन हैं । इत्यादि विचार करती हुई कनकवती से मलयासुंदरी बोली - 'माता! आज यह अनभ्रा वृष्टि कैसे हुई? आप यहां अकेली कैसे आयी? और आपकी नाक की यह दुर्दशा कैसे और कहां हुई?

महाबल – ''प्रिये! यह बात तुम इनसे न पूछो, ये तमाम बातें मैं जानता हूं और समय पर तुम्हें सब कुछ बतला दूंगा, अभी तुम अंदर जाओ । महाबल की आज्ञा होते ही मलयासुंदरी अंदर के कमरे में चली गयी ।''

महाबल – कनकवती इस महल के बाहर नजदीक में ही एक राजकीय मकान है तुम वहां पर आ जाओ ।

ऊपर से मीठी परंतु दुष्ट हृदयवाली कनकवती कुमार के बतलाये हुए मकान में आ रही और धीरे – धीरे मलयासुंदरी के पास आने जाने लगी । जब मनुष्य को उसका भाग्य चक्र में डालता है तब उसकी तीक्ष्ण बुद्धि भी कुछ काम नहीं आती । अविश्वास में से राजनीति सीखने पर भी विश्वास किया जाता है; इसी कारण एक महान् अपराधी को भी महाबलकुमार ने रहने के लिए स्थान दे दिया । इसके परिणाम में उसे कैसा भयंकर विपाक भोगना पड़ेगा इस बात की उसे स्वप्न में भी खबर न थी, या यों कहना चाहिए कि कर्म विपाक के सामने मनुष्य की तमाम चतुराई बेकार है । कनकवती की बोलचाल, हंसना और वार्तालापादि इतना चित्ताकर्षक था कि तीक्ष्ण बुद्धिवाला कुमार उसकी धूर्तता को न जान सका । धीरे – धीरे राजमहल में उसका आना जाना बढ़ने लगा । परंतु जिस तरह बिल्ली नित्य चूहे के ही ध्यान में रहती है वैसे ही निष्कारण दुश्मन वह मलयासुंदरी को मारने या वैसे ही किसी महान् संकट में डालने के लिए निरंतर उसके छल देखने लगी । यद्यपि वे दंपति इस समय अद्वितीय संसार सुख का अनुभव कर रहे हैं परंतु अपने ही हाथ से उन्होंने अपने आंगन में भविष्य में कटुफल देने वाला विषवृक्ष लगा लिया है ।

संसार रूपी वृक्ष का सुखरूपी मधुर फल भोगते हुए, मलयासुंदरी ने गर्भ धारण किया। महाबलकुमार ने उसके तमाम मनोरथ पूर्ण किये । गर्भ के साथ ही मलयासुंदरी का प्रतिदिन लावण्य वृद्धि को प्राप्त होने लगा । सुख से समय बिताते हुए गर्भ प्रसूति का समय भी अब नजीक ही आने लगा ।

एक दिन महाराज सूरपाल महाबल से बोले बेटा महाबल! हमारे राज्य

की पूर्व सरहद पर रहनेवाला – क्रूर नामक पल्ली पति हमारे देश में घुसकर प्रजा को लूट ले जाता है । उसके पास कुछ सेनाबल भी हो गया है । मैंने उस पर आक्रमण करने के लिए दो दफा सेनापति को भेजा, परतु वह पराजित न हो सका उलटा हमें ही बहुत कुछ नुकसान उठाना पड़ा । तुम्हारे सिवा उसके बढ़ते हुए गर्व को और कोई नहीं उतार सकता । सीमा समीप की किसी भी ताकात को बढ़ने देना हमारे लिये खतरनाक है । इसीलिए मेरी राय है कि इस समय प्रबल सेना साथ लेकर तुम खुद ही उस पर आक्रमण करो और उसे परास्तकर अपने सीमाप्रांत को सदा के लिए निरुपद्रव करो । यह सुनकर विनयपूर्वक हाथ जोड़कर राजकुमार बोला – पिताजी! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । आप आज ही सेनापति को सेना तैयार करने की आज्ञा फरमावें । आपके आशीर्वाद से मैं आपकी आज्ञानुसार आक्रमण कर उसे आपका सेवक बनाकर ही वापिस लौटूंगा।

राजाज्ञा से सेना में पल्लीपति पर चढ़ाई करने की तैयारियां होने लगी। राजकुमार स्वयं सेनापति बनकर पल्ली पति पर आक्रमण करेंगे यह सुनकर सैनिकों में उत्साह का पार न रहा । वे दूने उत्साह से समर की तैयारी करने लगे।

अब पिता को नमस्कारकर महाबल अपने महल में गया । पिता की आज्ञा सुनाकर उसने युद्ध में जाने के लिए मलयासुंदरी से विदा मांगी, वह बोली - प्राणनाथ! आप खुशी से युद्ध करें, परंतु मैं आपके साथ ही चलूंगी । आप मुझे यहां रहने के लिए विवश न कीजिए । आपके परोक्ष में ही मुझ पर विपत्ति के पहाड़ टूट पड़ते हैं । इसीलिए आप इस दासी को जुदी न करें ।

महाबल – प्यारी! समर भूमि में तुम्हें साथ ले जाने का समय नहीं है। तुम सगर्भा हो और पूरे दिन होने आये हैं । थोड़े ही दिन बाद भावी राज्य कर्ता का जन्म होनेवाला है । ऐसी परिस्थिति में मेरे साथ चलना तुम्हारे लिये सर्वथा अनुचित है । प्रसूति का समय आ रहा है । इस वक्त पहाड़ी मार्ग की विषमता और युद्ध का प्रसंग, ये तमाम बातें तुम्हारे इस नाजुक शरीर के लिए बिलकुल प्रतिकूल है । तुम धैर्य धारण कर यहां ही रहो । यहां तुम्हें सब तरह से आराम रहेगा । शत्रु को परास्तकर मैं शीघ्र ही समर से वापिस आ जाऊंगा । कभी विषम

प्रसंग आ जाने पर मैं तुम्हें पुरुष रूप धारण करने की ये गुटिकायें दे जाता हूं । आम के रस में घिसकर तिलक करने से स्त्री का पुरुष रूप बन जाता है । इन गुटिकाओं को हर वक्त संभालकर अपने पास रखना । प्यारी! मैं स्वयं तुम्हारा वियोग सहने के लिए असमर्थ हूं, परंतु क्या किया जाय! कुलीन पुत्रों का पिता की आज्ञा पालन करना परम कर्तव्य है । अतः प्रिये! तुम मुझे प्रसन्न होकर समर के लिए विदा करो ।

पति की आज्ञा से विवश हो अपने दिल को मसोसती हुई मलयासुंदरी मंद स्वर से बोली-''स्वामिन्! इच्छा न होने पर भी आपकी आज्ञा को शिरोधार्यकर मैं यहां ही रहती हूं । आप जल्दी इतना कहते हुए उसका कंठ भर आया । वह आगे कुछ न बोल सकी । आंखों से गालों पर मोती से आंसु ढलक पड़े । यह देख कुमार ने उसे छाती से लगा लिया और प्रेम से उसका मुख चूम लिया । प्रेमी हृदयवाले राजकुमार को भी अपनी प्राणप्यारी से जुदा होने में बड़ा दुःख हुआ । उसकी आंखों भर आयी तथापि वह कठिन मन कर रुमाल से आंखें पोंछता हुआ महल से बाहर निकल गया । तमाम सेना तैयार होकर खड़ी थी । महाबल अपने घोड़े पर सवार हो सेना के साथ पल्लीपति पर चढ़ाई करने के लिए सीमा प्रदेश की ओर चल पड़ा ।

कनकवती अपने मकान में बैठी हुई अपने मलीन हृदय के अनुसार विचार तरंगों में गोते खा रही है । मलयासुंदरी को किस तरह कष्ट में डालूं? कोई उपाय नहीं सूझता कि जिससे उसे संकट में डालकर अपने चित्त को शांत करूं । न जाने क्यों उसे देखकर मेरे दिल में दाह पैदा होता है । मैं जरूर मौका पाकर उसे संकट में डाल अपने कलेजे को ठंडा करूंगी । इन्हीं विचारों की उधेड़बुन में उसे महाबल के युद्ध में जाने का समाचार मिला । अब मलयासुंदरी को अकेली रही देख उसे बड़ी खुशी हुई । उसने सोचा महाबल के यहां रहते हुए मेरा कोई भी उपाय काम न आ सकता था । यह ठीक हुआ मलयासुंदरी अकेली रह गयी । यदि महाबल के परोक्ष में भी मैं किसी उपाय से इससे बदला न ले सकी तो फिर मेरे लिये कोई भी ऐसा सुअवसर नहीं मिल सकता । यह सोच वह शीघ्र ही

उठकर मलयासुंदरी के महल में आयी । इस समय मलयासुंदरी अपने महल में उदास होकर बैठी थी । पति वियोग के दुःख से उसके नेत्रों से आंसुओं की बूंदे पड़ रहीं थीं । वह हाथ पर मुख रखे हुए विचार दशा में निमग्न हो रही थी। कनकवती के आने की आहट सुन उसने ऊंची गर्दनकर अपनी सौतेली माता को आयी देख उसने उसे कुछ आदर दिया । अवसर देखकर कनकवती ने उसकी उदासीनता को दूर करने के लिए कोई ओर विषय छेड़ा; उसकी बातों के प्रसंग से मलयासुंदरी का सारा दिन सुख शांति में व्यतीत हुआ । पतिवियोग के दुःख में उसकी मीठी बातें सुन सरल हृदया मलयासुंदरी बोली – माता! तुम रात को भी यहां ही रह जाया करो जिससे दिन के समान तुम्हारे समागम से मेरी रात भी सुख से बीत जायगी । मन को इच्छित होने के कारण कनकवती ने खुशी से उसकी बात स्वीकार कर ली । रात को भी कनकवती ने दिन के समान ही अनेक बातों से मलयासुंदरी के मन को प्रसन्न रखा । प्रातःकाल होते ही कुछ सोच विचारकर कनकवती ने मलयासुंदरी को कहा – बेटी! तुझे उपद्रव करने के लिए रात्रि में यहां पर एक राक्षसी फिरा करती है । रात को जब तूं सो गयी थी उस समय मैंने प्रत्यक्ष उसको देखा था। जागृत रहने के कारण मैंने तुझ पर उसका कोई उपद्रव नहीं होने दिया । यदि तेरी मर्जी हो तो मैं भी उस राक्षसी के साथ उसके जैसा ही वेष धारण कर उसे ऐसी शिक्षा दूं कि जिससे वह फिर कभी इधर देखे तक भी नहीं । क्योंकि मैं भूत प्रेतों को निग्रह करने के मंत्र तंत्रादिक भी जानती हूं । क्या तुम्हें मालूम नहीं कि राक्षसी और चुड़ेलों को निवारण करने के अनेक प्रकार के तांत्रिक प्रयोग होते हैं ।

विचारशील होने पर भी भाग्य के चक्र में पड़कर मलयासुंदरी ने उस दुष्टा की बात मंजूर कर ली । दैववशात इस समय नगर में मारी बिमारी का जोर बढ़ रहा था । कोई दिन ऐसा न जाता था कि जिस दिन दस पंद्रह मनुष्य मृत्यु के ग्रास न बनते हों । मलयासुंदरी को पूर्वोक्तप्रकार से समझाकर अपने घर जाने का बहाना ले कनकवती सीधी महाराज शूरपाल के पास पहुंची । वहां जाकर उसने राजा से एकांत में बात करने की प्रार्थना की प्रार्थना मंजूर होने पर उसने महाराज

शूरपाल से कहा – महाराज! यदि आपकी मुझ पर पूर्ण कृपा हो तो मैं आज आपके हित की एक बात करनी चाहती हूं। राजा बोला – भद्रे! मैं तुझे अभय वचन देता हूं; चाहे जैसी गुप्त बात हो तूं निःशंक होकर कह। यदि उससे तुझे कुछ भय उत्पन्न होने की संभावना हो तो मैं तेरी पूर्ण रक्षा करूंगा।

कनकवती – महाराज! आपको मालूम ही होगा आपके शहर में कितनेक दिनों से 'मारी' नामक रोग चल रहा है। यह उपद्रव किसी राक्षसी का किया हुआ है। चाहे साक्षात् वह राक्षसी यहां पर न भी आती हो तथापि राक्षसी के जैसी चेष्टायें करने से रोग की उत्पत्ति या उसकी वृद्धि हो सकती है। ऐसा करनेवाली को राक्षसी कहने में किसी प्रकार का दोष नहीं है। इस प्रकार का जनसंहार करनेवाली राक्षसी यदि आपके ही राजकुल में हो तो क्या आप उसे शिक्षा देकर अपनी प्रजा को नहीं बचा सकते? यह सुन राजा बोला – भद्रे! मेरे राजकुल में ऐसी कौन दुष्टा है? सच बोल मैं उसे पूर्ण शिक्षा देकर अपनी प्रजा का रक्षण करूंगा। कनकवती बोली – महाराज! सच पूछो तो गुलाब में कांटे के समान आपकी प्रजा का संहार करनेवाली आपकी पुत्रवधु मलयासुंदरी ही है, यदि आपको मेरे इस वचन पर विश्वास न हो तो रात्रि के समय आप दूर रहकर उसकी चेष्टायें प्रत्यक्ष देखकर, निश्चय करें। वह रात्रि के समय राक्षसी का रूप धारणकर अपने गृहांगण में भ्रमण करती है, कूदती है, नाचती है, चारों तरफ देखती है और मंद – मंद स्वर से भयंकर फुंकार करती है, इस कारण शहर में मारी नामक रोग विशेष वृद्धि को प्राप्त होता है। ये चेष्टायें देखकर यदि आप रात्रि में उसी समय उसे पकड़ना चाहेंगे तो वह आपको भयंकर उपद्रव करेगी इसीलिए सुबह होने पर आप उसे सुभटों द्वारा पकड़वाकर इच्छित शिक्षा करें। इस प्रकार कपट प्रपंच की बातें कर कनकवती मौन रह खड़ी रही।

राजा प्रथम से ही शहर में पसरी हुई मारी का कारण जानने के लिए उत्सुक था। अब यह कनकवती की बातें सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह एक औरत के कपटपूर्ण वचनों से प्रेरित हो, विचारने लगा। अहो! यह कैसी बात! मेरे निर्मल कुल में ऐसा कलंक! क्या सचमुच ही मेरी पुत्रवधु मलयासुंदरी

राक्षसी है? क्या उसी ने नगर में यह मारी फैला रखी है? यह बात मेरा हृदय मंजूर नहीं करता। परंतु इस औरत का असत्य बोलने में क्या स्वार्थ होगा? खैर, आज रात्रि को देखने से इस बात का निश्चय हो जायगा। यह विचारकर चिंताग्रस्त हो राजा ने कनकवती से कहा- भद्रे! यह बात तुम अन्य किसी के समक्ष न करना। ऐसी बात जनता में प्रकट होने से मेरे निर्मल कुल को कलंक लगता है। इस बात की सच्चाई का निर्णय आज रात को ही हो जायगा फिर जो योग्य होगा सो किया जायगा। कनकवती बोली - महाराज! मैं इतनी अज्ञान नहीं हूं, इसी कारण तो मैंने एकांत में यह प्रार्थना की है। अच्छा अब तुम जाओ, यों कह राजा ने कनकवती को विदाय किया।

राजमहल से विदा हो कनकवती सीधी अपने मकान पर आयी और वहां आकर राक्षसी का रूपधारण करने के योग्य वह तमाम सामग्री को साथ ले मलयासुंदरी के पास आ पहुंची। रात पड़ने पर वह मलयासुंदरी से बोली - बेटी! आज मैं उस राक्षसी का निग्रह करूंगी। जब तक मैं उसे निग्रह करके मकान के अंदर न जाऊं तब तक तूं कमरे से बाहर गृहांगण में न आना। यदि उस समय तूं कमरे से बाहर निकली तो भयंकर उपद्रव होने का संभव है। मलयासुंदरी को इस तरह की शिक्षा दे वह बाहर आयी और नग्न होकर उसने अनेक प्रकार के रंग बिरंगे चित्रों द्वारा राक्षसी के समान अपने शरीर को विचित्र किया। साक्षात् राक्षसी की भांति रूप बनाकर उसने अपने मुख में लंबे - लंबे दांत लगा लिये। एक हाथ में खप्पर और दूसरे हाथ में लंबा छुरा लेकर जिस तरह राजा को समझाया था उसी प्रकार की चेष्टायें करनी शुरू की, इस समय महाराज शूरपाल कितनेक सुभटों के साथ ले थोड़ी दूर पर रहे एक महल पर चढ़कर गुप्तरीति से उसकी तमाम चेष्टायें जानने के लिए आ खड़े हुए। उसने दूर रहकर मलयासुंदरी के गृहांगण में राक्षसी के सारे आचरण अपनी नजर से देखे। वह मन ही मन विचारने लगा ओहो! कनकवती की बतलायी हुई तमाम बातें सच ही निकलीं। इस स्त्री के द्वारा मेरा निर्मल वंश कलंकित हुआ। अब मुझे इस विषय में विलंब या सोचविचार न करना चाहिए। इसके निग्रह का

जल्दी ही उपाय करना अच्छा है । यह बात जनता में फूट जाने पर मेरे कुल की बदनामी होगी । और शीघ्र ही कुछ उपाय न करने से प्रजा का विशेष संहार होगा । इस कुलकलंकिनी राक्षसी को इसी समय शिक्षा करनी चाहिए । मेरे साथ में बहुत से सुभट हैं, वह मुझे क्या उपद्रव कर सकती है? अब रात्रि के समय में ही शिक्षा करने से जनता में भी यह बात प्रकट न होगी । इस प्रकार सोचकर क्रोध से विचार शून्य हो राजा ने अपने विश्वासपात्र सुभटों को आज्ञा दी अरे! सुभटो! तुम इसी वक्त जाकर इस दुष्टा को पकड़ लो । एक रथ में बैठाकर इसे रौद्रअटवी में ले जाकर किसी को मालूम न हो इस तरह मार डालो । राजा का आदेश होते ही हथियार बंद अनेक सुभट उसे पकड़ने के लिए दौड़ पड़े । उन राजपुरुषों को आते देख वह दुष्टा भयभ्रांत हो मलयासुंदरी के पास आकर कंपित स्वर से बोली – बेटी! कितने एक राजसुभट शस्त्र हाथ में लिये मुझे मारने के लिए आ रहे हैं । मालूम होता है मैं राजा की आज्ञा बिना रात के समय तेरे पास रहती हूं । इसी कारण राजा मुझ पर क्रोधयमान् हुए हैं । संभव है राजपुरुष मुझे अवश्य ही मार डालेंगे । इसलिए तूं मुझे ऐसी जगह छिपा, जहां पर ढूंढने से भी उन्हें मेरा पता न लगे । दया की प्रेरणा से उसके कपट को न समझने वाली मलयासुंदरी ने वैसे ही वेष में कनकवती को एक संदूक में छिपाकर बाहर से ताला लगा दिया । बस इतने ही में राजा के भेजे हुए शस्त्रधारी सुभट वहां पर आ पहुंचे ।

❀

◆ *एक ही पेट में दोनों साथ – साथ रहकर साथ – साथ जन्मे, खेले पढ़े, उम्र लायक बने । शादी – शुदा बन गये । योगानुयोग आनेवाली भी जुड़वा बहनें थी । स्वार्थता ने वहां भी कार्य कर दिखाया। एक घर के दो विभाग, संपत्ति का बंटवारा तो ठीक, माता – पिता के अलग – अलग खर्चा देने के प्रसंग से माता–पिता का बंटवारा हो गया। एक देता है माता का खर्चा, दूसरा देता है पिता का खर्चा, देखा कृत्रिम स्नेह / प्रेम का नाटक । 'स्वार्थता की कहानी और आगे बढ़ती है ।'*

निर्वासित जीवन

प्रातःकाल का समय है । सैनिकों की एक कतार लगी हुई है । घोडे पर चढ़ा हुआ एक तेजस्वी युवक अपने सैनिकों को उपदेशकर रहा है । भाइयो! आज युद्ध का दिन है । इतने दिनों तक मैंने जिस शिक्षा की तैयारी की है आज उसकी परीक्षा का समय है । मैं समझता हूं कि जंगली पल्ली पति के साथ जबरदस्त सेना है तथापि हम सुशिक्षित क्षत्रिय पुत्रों के सामने वह युद्ध में अधिक समय तक नहीं ठहर सकती । इसलिए मुझे पूर्ण विश्वास है कि विजय हमारे साथ है । बस अब देरी करने का समय नहीं है । शत्रु सेना पर आक्रमण करो ।

कैसा भयंकर युद्ध ठना हुआ है । युद्ध के बाजें बज रहे हैं । सैनिकों के हृदय में उत्साहपूर्ण वीरता की लहरें उमड़ रही हैं । अतः उन्मत्त होकर सैनिक लोग शत्रुओं पर आक्षेप कर चिल्ला रहे हैं । घोड़े हिनहिना रहे हैं । हाथी चिंघाड़ रहे हैं । मरणोन्मुख सिपाही कराह रहे हैं । एक ओर पल्ली पति की अगणित सेना और दूसरी और महाबल की छोटी सी किन्तु शिक्षित सेना शत्रुओं पर झपट रही है । सैनिकों के हाथ में रहे हुए तीर, तलवार, भालें आदि शस्त्र खून से सने हुए हैं। महाबल कुमार विलक्षण साहस धारणकर वीरता के साथ शत्रु सेना के सेनापति पल्ली पति पर टूट पड़ा । महाबल और उसके सैनिकों का पराक्रम देखकर शत्रुसेना में भगदड़ मच गयी । जिस क्रूर नामक पल्लीपति को दो दफा आक्रमण करने पर भी महाराज शूरपाल का युद्ध कुशल सेनापति परास्त न कर सका था उसी प्रबल शत्रु के आज समर भूमि में महाबल कुमार ने अपनी वीरता से दांत खट्टे कर दिये । उस भग्नसेना – पल्लीपति ने महाबल का पराक्रम देख निराश हो उसे आत्मसमर्पण कर दिया । अब शत्रु को कैदकर और विजय की रणदुंदुभी बजाते हुए हर्षपूर्वक अपनी सेना के साथ महाबल कुमार अपनी राजधानी की तरफ चल पड़ा ।

इधर राजपुरुषों ने मलयासुंदरी ने महल में प्रवेश किया और उसका स्वाभाविक रूप देख वे आपस में बोलने लगे – 'अरे! हमारे भय से इतने शीघ्र

ही अपने राक्षसी रूप को त्यागकर कैसा सुंदर रूप बना लिया ।' दूसरा बोला – कुछ भी हो महाराज की आज्ञा होने से हम इसे छोड़ नहीं सकते । तिरस्कार के शब्दों से वे मलयासुंदरी को बोले – अरे पापिनी! अभी तक तूं कितने मनुष्यों का संहार करेगी? अरे भाई! देखते क्या हो? इसे पकड़कर बांध लो! यों कह राजपुरुषों ने मलया सुंदरी को पकड़कर मजबूत बंधनों से बांध लिया और उसे महल से बाहर ले आये । राजा ने पहले से ही द्वार पर रथ तैयार रखाया था । मलयासुंदरी को उसमें बैठाकर शीघ्रता के साथ उस रथ को भयंकर अटवी की तरफ ले जाया गया । इस आकस्मिक घटना से मलयासुंदरी एकदम स्तब्ध हो गयी । उसने सोचा – मैंने क्या अपराध किया है कि जिससे ये राजपुरुष मेरा इतना तिरस्कार कर रहे हैं? मालूम होता है; किसी कारण ये मुझे मारने के लिए या कहीं भयानक जंगल में छोड़ आने के लिए ले जा रहे हैं? हाय कर्म की कैसी विचित्र गति है! मेरे सामने कोई नजर भर के भी नहीं देख सकता था । परंतु आज एक पतिदेव के अभाव में मुझ पर कितना भयंकर जुल्म किया जा रहा है! न मालूम इसका क्या कारण होगा? मैंने राजा का ऐसा क्या अपराध किया होगा? या मेरा पुण्य पूर्ण होने पर किसी पूर्व जन्म के अशुभ कर्म का फिर से उदय हुआ है । मनुष्य को मालूम नहीं होता, क्लिष्ट कर्मों के विपाक का किस वक्त उदय होगा? हे हृदय! अब तूं इन दुःखों को सहने के लिए फिर से वज्र के समान कठिन बन जा ।' मन को धीरज देकर वह महाबल के बतलाये हुए श्लोक का स्मरण करने लगी ।

रथ सहित मलयासुंदरी को लेकर राजपुरुष मनुष्यों से रहित और हिंसक पशुओं से व्याप्त एक भयानक अटवी में आ पहुंचे । उसे रथ से नीचे उतारा गया। उसका राजतेज सुंदर और करुणा पैदा करनेवाली सौम्य मुखमुद्रा तथा उसके अंबुज समान नेत्रों से मोतियों के जैसे टपकते हुए अश्रु बिन्दु देखकर उनमें से एक क्षत्रिय राजपुरुष का हृदय द्रवित हो उठा । वह अन्य सुभटों से बोला – भाइयो! किसी भी कारण राजा ने इस भद्राकृति वाली स्त्री को राक्षसी समझकर हमें इसके वध की आज्ञा दी है; परंतु इस स्त्री की करुणाजनक मुखाकृति देखकर यह

सर्वथा निर्दोष मालूम होती है । ऐसी निर्दोष अबला पर शस्त्र चलाना यह महान निर्दयता वाले कर्म चांडाल का काम है । पहले जन्म में किये हुए अशुभ कर्म के कारण यहां दूसरे के सेवक बने हैं । अब निर्दोष स्त्री की हत्याकर न जाने कैसी नीच गति को प्राप्त होंगे । इसीलिए हमें चाहिए कि इस स्त्री की हत्या अपने शिर पर न लेकर हिंसक पशुओं से परिपूर्ण इस अटवी में इसे जीवित छोड़ जायें । किसी हिंसक प्राणी का शिकार बनकर यह स्वयं अपने प्राणों को त्याग देगी और हम इस पाप से बच जायँगे । वे परस्पर विचार कर मलयसुंदरी को जीवित ही उस निर्जन जंगल में छोड़ वापिस लौट आये । उन्होंने राजा से आकर कह दिया - महाराजा! आपकी आज्ञानुसार हम उस स्त्री को निर्जन जंगल में मार आये । यह सुन राजा बड़ा खुश हुआ और विचारने लगा कि उस राक्षसी के मर जाने से अब नगर की सारी बिमारी खुद बखुद शांत हो जायगी । अब कनकवती को खुश करने के लिए राजा ने नगर में उसकी तलाश करायी परंतु उसका कहीं पर भी पता न लगा । अब राजकुमार का महल सूना रहने के कारण राजा ने तमाम दरवाजों पर ताले लगा उन पर सिल लगवा दिये।

महाबल की सेना विजय के गर्व से आनंद मनाती लौट रही है । उसके सैनिकों को अपनी- अपनी वीरता पर गर्व के साथ पूर्ण विश्वास हो रहा था । यों तो महाबल के सैनिकों में सभी तलवार के धनी थे । बात पर जान देनेवाले, उसके इशारे पर आग में कूदनेवाले, उसकी आज्ञा पाकर एकबार आकाश के तारे तोड़ने को भी चल पड़ते; किन्तु युद्ध कुशलता में महाबल सबसे बढ़ा हुआ था। वह अन्य वीरों की भांति अक्कड, मुंहफट या घमंडी न था । और लोग अपनी वीरता को खूब बढ़ा - बढ़ा कर कथन करते । आत्मप्रशंसा करते हुए उनकी जबान न रुकती थी। महाबल जो कुछ करता शांतभाव से और विचारशील से करता । अपनी प्रशंसा करना तो दूर रहा - वह चाहे किसी शेर ही को क्यो न मार आया हो उसकी चर्चा तक न करता । उसकी विनयशीलता और नम्रता संकोच की सीमा से भी बढ़ गयी थी । और लोग समर में रात्रि के समय मीठी नींद सोते, परंतु महाबल तारे गिनगिनकर रात काटता था । क्योंकि वह शरीर

से समरभूमि में आया था परंतु उसका हृदय अपनी प्राणप्यारी मलया के पास ही रह गया था । अब वह मलयसुंदरी को शीघ्र जा मिलने की उत्सुकता से विलंब रहित प्रयाण से पृथ्वीस्थानपुर के समीप ही आ पहुंचा है । रास्ते में कई जगह उसे अपशकुन भी हुए, बांई आंख भी फड़की परंतु विजय की खुशी और प्रिया से मिलने की उत्सुकता में उसने उस ओर कुछ ध्यान ही न दिया । अब वे राजनगर में आ पहुंचे । राजसभा में आकर महाबल ने पिता के चरणों में नमस्कार कर विजय का समाचार सुनाया । पल्लीपति को जीतने का समाचार सुनकर राजा को बड़ा भारी हर्ष हुआ और उसने कुमार की प्रशंसा की । पिता की आज्ञा ले मलयासुंदरी से मिलने की उत्कंठा में कुमार अपने महल की तरफ चल पड़ा परंतु तुरंत ही रोककर महाराज शूरपाल ने उसका हाथ पकड़ एकांत में ले जाकर मलयासुंदरी के राक्षसी होने का तथा उसे दी हुई शिक्षा का सर्व वृत्तांत कह सुनाया । पिता के मुख से यह वृत्तांत सुनते ही दीर्घ निश्वास के साथ हाथ से हाथ घिसते हुए कुमार के मुख से एकदम चीत्कार निकल पड़ा । वह रुद्ध कंठ से बोला – हा! हा! पिताजी! आपने महान् अनर्थ कर डाला । उसके प्राणों के साथ आपने मेरे भी प्राण ले लिये । आपने मुझे और अपनी पुत्रवधू को शत्रु से भी बढ़कर असह्य दंड और अन्याय दिया है । मलयासुंदरी राक्षसी थी यह भ्रमणा आपको कहां से पैदा हुई? पिताजी! आपकी इतनी विचारशून्यता! आपकी दीर्घ दृष्टि कहां चली गयी? यदि आपको उसमें कोई दोष मालूम हुआ भी था तथापि मेरे आने तक तौ धैर्य रखना था । जिस छिन्न नासिका स्त्री के कहने से आपने मुझ पर यह अनर्थ ढ़ाया है उस कपट की खान कनकवती को मैं भलिभांति जानता हूं । पिताजी! आप उस धूर्त स्त्री के वचनों से सचमुच ही ठगे गये । आप मुझे जल्दी बतलाइए कि वह मेरी निष्कारण दुश्मन नाक कटी कहां पर है ? मैं उससे तमाम बातें पूछूं तो सही! कुमार के इस प्रकार के दुःख, शोक और तिरस्कारपूर्ण वचनों से राजा शूरपाल का मुखमंडल मुरझा गया । उसने नीचे देखते हुए कहा – 'बेटा! इस घटना के बाद हमने उसकी सब जगह तलाश की परंतु वह स्त्री कहीं पर भी देखने में न आयी । अगर सच ही यह उसका प्रपंच होगा तो शायद वह उसी रात को कहीं अन्यत्र भाग गयी होगी ।

महाबल - पिताजी! उस पापिनी के असत्य वचनों से प्रेरित हो आपने व्यर्थ ही अपने निर्मल कुल में कलंक लगाया है; इतना ही नहीं परंतु आपने अपने वंश का विच्छेद किया है । इस प्रकार बोलता हुआ पत्नी के वियोग से दुःखित हुआ राजकुमार उदासीनता धारण किये अपने महल की तरफ चल पड़ा । पुत्र के दुःख से दुःखित हो राजा भी कुमार के पीछे - पीछे उसके महल में आया और दरवाजों पर लगे हुए सिल तोड़कर, ताले खोल दिये । एक जगह की तरफ दृष्टिकर राजा बोला - देखो बेटा! इस जगह तुम्हारी प्रिया मलयासुंदरी राक्षसी के रूप में नग्न होकर नाचती, कूदती अनेक प्रकार के फूत्कार करती हुई मैने कई सुभटों के साथ बहुत देर तक उस सामनेवाले मकान पर से देखी थी । इसलिए उसे शिक्षा करने में मेरा अपराध ही क्या है? यदि शरीर का कोई अंगउपांग गल जाय तो क्या उसे नहीं कटवा दिया जाता? कुमार मन ही मन विचारने लगा ठीक है अब बोलने की कोई कीमत नहीं । अगर वह जिन्दी मिल गयी तो तमाम बातें मालूम हो जायेंगी, इत्यादि विचार करते हुए वह अपने मकान में रखी हुई सार वस्तुयें देखने लगा । क्रम से उस संदूक का ताला खोलने पर बिल्कुल नंगी राक्षसी के रूप में क्षुधा से दुर्बल हुई वह छिन्न नासिका कनकवती संदूक में पड़ी नजर आयी । उसे देखते ही राजा आदि सबही स्तब्ध हो गये । महाबल जोश में आकर बोल उठा पिताजी! राक्षसी के रूप में नाच करती हुई आपने उस रात में इसी स्त्री को देखा था? यों कह कुमार ने उस स्त्री का हाथ पकड़कर उसे संदूक से बाहर निकाली । जब उस पर निष्ठुरता पूर्वक कुमार ने ठोकरों की मार शुरू की तब उसने कांपते हुए अपना तमाम प्रपंच प्रकट कर दिया । अब अविचारित किये हुए कार्य का राजा को महान् पश्चात्ताप करना पड़ा । ***सचमुच ही ऐसे उलझन भरे प्रसंगों में ही बुद्धिमानों की बुद्धिमत्ता, धैर्यवानों की धीरता, विवेकी पुरुषों की विवेकता, दीर्घ दर्शियों की दीर्घ दर्शिता और विचार शीलता का निर्णय होता है ।***

राजा के पश्चात्ताप और गुस्से की हद न थी, वह इस कार्य से लोगों में मुख दिखाने लायक भी अपने आपको न समझता था; इसीलिए छिन्न नासिका

कनकवती को उसने तुरंत ही देश निकाले की शिक्षा दी । परंतु इससे महाबल की दुःखित आत्मा को क्या शांति मिल सकती थी? पूरे दिन की गर्भवती और निर्दोष पत्नी के ऐसे अनिष्ट भविष्य को महाबल के शोक या दुःख का पार न रहा, उसका हृदय पराधीन बन गया । उसने मन को मसोसकर किसीसे बोलने तथा भोजन करने का त्याग कर दिया । उसके नेत्रों से रह रहकर सावन भादों के वर्षा की भांति आंसुओं की झड़ी लग गयी । विशेष क्या कहें वह अपनी निर्दोष प्रिया के वियोग से फकीर बनकर मरने के लिए तैयार हो गया । सचमुच ही *मोह के उदय में मनुष्यों के अंतर नेत्रों पर पड़दा पड़ जाता है ।* राजकुमार को मृत्यु के लिए उत्सुक देख राजा और रानी भी वैसी ही दुःखद अवस्था का अनुभव करने लगे । इस समय राजकुल में ही नहीं बल्कि सारे नगर में शोक उदासीनता का साम्राज्य छाया हुआ था । दीर्घ निश्वास के सिवा किसी के मुंह से और कोई शब्द न निकलता था।

दैववशात् इस समय कहीं से फिरता हुआ वहां पर एक निमित्तज्ञ पुरुष आ पहुंचा । मालूम होने से उसे राजसभा में बुलाया गया । उसके हाथ में एक अष्टांग निमित्त की पुस्तक थी । प्रधान मंत्री ने उसका आदर सत्कारकर उसे उचित आसन पर बैठाया ।

प्रधान – निमित्तज्ञ महाशय! महाबल कुमार की पत्नी मलयासुंदरी निर्दोष होने पर भी एक स्त्री के प्रपंच से निकाल दी गयी है । इसी कारण आज हम उसके वियोग से दुःखित हो शोक सागर में डूब रहे हैं । इसका परिणाम हमें बहुत भयंकर मालूम होता है । इसीलिए यदि आपके निमित्त बल से आप यह बतला सकते हैं कि वह कुमार की पत्नी किसी जगह जीवित है या नहीं। तो कृपया बतलाकर हम पर उपकार करें । प्रश्नकुंडली बनाकर और उसे अच्छी तरह देख निमित्तज्ञ बोला – महाशयजी! राजकुमार की पत्नी जीवित है और वह एक वर्ष के बाद कुमार को अवश्य मिलेगी । मलयासुंदरी जीवित है यह अमृत के समान वचन सुनकर, पुनर्जन्म सा प्राप्तकर, कुमार एकदम बोल उठा – पंडितजी! विलंब न कीजिये, आप मुझे कृपया शीघ्र बतलाइए कि वह इस समय

कहां पर है?

निमित्तज्ञ! - कुमार! आपकी पत्नी जंगल में है या बस्ती में, दुःख में है या सुख में, इत्यादि विस्तारवाली बातें, मैं नहीं जान सकता । तथापि यह मैं निश्चित रूप से कहता हूं कि वह सुंदरी जीवित है और उसकी आयुष्य आपसे लंबी है । यह बात सुनकर राजा के मन में शक पैदा हुआ कि उसे मैने निर्जन अटवी में भेजकर मरवा डाला है। तब फिर वह जीवित किस तरह रह सकती है? इस बात का निर्णय करने के लिए उसने फौरन उन सुभटों को बुलवाया जिनको मारने के लिए भेजा था ।

राजा - सुभटो! मैं तुम्हें यह बात पूछने से पहले अभयदान देता हूं, सच बोलो मैंने तुम्हें मलयासुंदरी को अटवी में ले जाकर मार डालने का आदेश दिया था । क्या तुमने सचमुच उसे ले जाकर मार डाला था?

सुभट - महाराज! हम सच कहते हैं, आपकी आज्ञा पाकर, जब हम उसे रथ में बैठाकर, उस निर्जन अटवी में ले गये तब प्रातःकाल हो गया था । हमने उसे रथ से नीचे उतारा । उस समय उसका शरीर भय से कांप रहा था, आंखों से आंसु बह रहे थे । हमने उसकी सौम्य मुखमुद्रा को देख विचार किया कि महाराज को उसके राक्षसी होने का किसी ने यों ही भ्रम डाल दिया है । ऐसी सुंदर आकृति और सुलक्षणों वाली स्त्री कदापि राक्षसी नहीं हो सकती । इसीलिए महाराज की आज्ञानुसार यदि हम इसका वध करेंगे तो हमें निष्कारण ही दो प्राणियों की हत्या का पाप लगेगा। अतः यह समझकर कि इस हिंसक पशुओंवाली अटवी में वह किसी हिंसक पशु का शिकार बन जायगी, उसे जंगल में छोड़कर हम वापिस चले आये और हमने आपके समक्ष आकर भय से आपको उसके मारने का असत्य समाचार दिया था ।

राजा - (दीर्घ निश्वास ले पश्चात्तापपूर्वक) अहो! इन नौकरों में जो दया और बुद्धिमत्ता है उतनी भी दया और बुद्धि मुझ में नहीं! धन्य है ऐसे दयालु और विचारशील मनुष्यों को । मेरे जैसे विचार एवं दयाहीन मनुष्यों को धिक्कार है । उन लोगों की प्रशंसाकर राजा ने सुभटों और निमित्तज्ञ को बहुत सा धन देकर

उनका आदर सत्कार किया । कुमार बोला – ज्ञानी महाशय! आपका कहना बिल्कुल सच है, सुभटों ने भी उसे जीवित ही छोड़ दिया है । (फिर पिता की तरफ देख) पिताजी! जिस जगह सुभटों ने उसे जंगल में छोड़ दिया था वहां जाकर तलाश तो करें । राजपुरुषों को भेजकर चंद्रावती में भी खबर करायें, न जाने हमारे पुण्योदय से वह किसी तरह अपने पिता के वहां पहुंच गयी हो । कुमार के कहने से राजा ने जगह – जगह राजपुरुषों को भेजकर मलयासुंदरी की शोध कराना शुरू कर दिया । राजा ने कुमार को समझा बुझाकर भोजन कराया और खुद ने भी भोजन किया ।

मलयासुंदरी की खोज में भेजे हुए राजपुरुष कुछ समय के बाद जहां तहां ढूंढकर वापिस आने लगे और उसके न मिलने का समाचार देने लगे । उनके समाचार से कुमार की आशा निराशा में परिवर्तित हो गयी । वह अपनी प्रिया के संबंध में नाना प्रकार की कल्पनायें करने लगा। युद्ध में जाते समय प्रेम भरे शब्दों से साथ चलने की उसकी प्रार्थना को यादकर विशेष दुःखित होने लगा ।वह मन ही मन उसे समक्ष समझकर कहने लगा – प्यारी! राजमहल के उत्तम सुख का थोड़ा सा अनुभवकर अब तूं दुःख के अगाध समुद्र में जा पड़ी । प्रिये! ऐसे घोर दुःखों का अनुभव तूं किस तरह करती होगी? इन्हीं विचारों से महाबल को किसी भी जगह चैन न पड़ती थी । सूक्ष्म ज्वरवाले रोगी के समान अपनी प्रिया के वियोग से उसे खाना पीना बिल्कुल अच्छा न लगता था । उसने निरुपाय होकर एक रोज यह निश्चय किया "जब उस अष्टांगनिमित्तज्ञ ज्ञानी ने यह बतलाया है कि एक वर्ष के बाद वह मुझे जीवित मिलेगी तब मुझे स्वयं क्यों न उसकी तलाश करनी चाहिए? उसके बगैर मेरा अब यहां पर क्या रखा है? यदि वह एक वर्ष पर्यन्त ढूढने पर भी न मिली तो मुझे यहां न आकर स्वयं भी उसके वियोग में प्राणत्याग कर देना चाहिए । यह निश्चयकर एक रोज रात के समय किसी को मालूम न हो इस प्रकार हाथ में तलवार ले वह अपने शहर से निकल गया । अब यह भयानक जंगलों, बस्ती और ग्रामों में मलयासुंदरी की शोध करता हुआ भूख प्यास सहनकर, निद्रा को त्यागकर भिखारी के समान फिरने

लगा ।

इधर प्रातःकाल होने पर जब ढूंढने से भी राजकुमार का पता न लगा तब राजा के दुःख का पार न रहा । वह समझ तो गया कि अपनी प्रिया के वियोग से कुमार यहां पर नहीं रह सका। उसकी खोज के लिए ही वह रात में एकाकी चला गया मालूम होता है । अभी तक महाराज शूरपाल को एक ही चिंता थी किन्तु कुमार के जाने से उन पर डबल चिंता का भार आ पड़ा । उसने दोनों की तलाश में चारों तरफ राज पुरुषों को भेजा ।

सूर्य निकल आया, वैसा ही जैसा चमकीला और सूर्ख रंग का हंमेशा निकला करता है। आसमान भी वैसा ही नीला है । जंगल के दरखतों का वैसा ही नीला रंग देख पड़ रहा है, सब कुछ वैसा ही जैसा कि मैं बचपन से देखती आ रही हूं । परंतु दुर्भाग्यवश खुद मैं ही वह नहीं हूं जो कल थी । यह मैं जानती हूं कि बदनसीबी अकेली ही नहीं आती, किन्तु अपने साथ और भी नयी नयी आफतों को ले आती है । जब संकटों का सिलसिला शुरु हुआ है तब वह अपना पूरा जोर दिखाये बिना न रहेगा । हतभाग्य मलयासुंदरी! अब तूं आनेवाले इन तमाम संकटों का सामना करने और निर्वासित जीवन बिताने के लिए कठिन हृदय बन जा । राजा और राजपुरुषों को इसमें क्या दोष है! ***मेरा अशुभ कर्म उदय होने पर वे सब निमित्त बन गये हैं ।*** परंतु मेरे हृदय में यह बात अधिक खटकती है कि मुझे मेरे बुद्धिमान श्वसुर ने किस अपराध में निर्वासित किया है? इस प्रकार का अविचारित कार्य करने के लिए उन्हें अवश्य ही महान् पश्चात्ताप होगा ।

हे नाथ! आप तो मेरे सुख के लिए ही मुझे घर छोड़ गये थे । परंतु आपके बिना मेरे नसीब में सुख कहां लिखा है! जब आप युद्ध से वापिस लौटेंगे तब मेरी यह दुर्दशा सुनकर आपके प्रेमी हृदय को कितना दुःख होगा! प्यारे! क्या इस जीवन में मुझे फिर से आपका समागम हो सकेगा? हा! मैंने जो कुछ भी अपने सुख के लिए किया था वह सब कुछ उल्टा हो गया । इन्हीं विचारों में वह पागल सी बनकर नीचे का गाना गाने लगी –

घर बसाया चैन को, जाना न था अंजाम ।
आग से वह जल गया, बस मैं रही ना काम ॥१॥
अमृत सागर में गयी, गोता लगाया जाय ।
विष हुआ तकदीर से, मेरे लिये वह हाय ॥२॥

छोड़ नीचे को चढी, ऊंचे बढ़ाकर पांव ।
अगम पानी में गिरी, कोई चला नहीं दाव ॥३॥

चाह प्रिय सुख की मुझे थी, नाथ जी के साथ ।
प्राप्त कर वह रत्न खो, आयी गरीबी हाथ ॥४॥

प्यास की मारी गयी मैं, मेह के जो पास ।
गिर पडी बिजली, न पूरी, हुई मेरी आस ॥५॥

चारों तरफ सन्नाटा देख अब वह कुछ जागृत सी हुई । उसने रोने धोने से अपनी आंखें सुजा ली थी; परंतु रुदन और चिंता का कुछ भी अच्छा परिणाम न देख उसने स्वयं अपने आपको ढाड़स दिया । संध्या के समय विलाप और चिंता के कारण उसके गर्भपूर्ण उदर में पीड़ा होने लगी। कुछ दर वेदना सहकर जिस तरह प्रातःकाल में पूर्व दिशा तेजस्वी सूर्य बिम्ब को पैदा करती है वैसे ही मलयासुंदरी ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया ।

जिस राजरमणी के पास अनेक दास दासी हाजर रहते थे । जिसका प्रसूतीकार्य गगनचुंबी राजमहलों में प्रसूति करानेवाली कुशल स्त्रियों की देख - देख में होना था और जिसे ऐसे प्रसंग में अनेक प्रकार की सुविधाओं की आवश्यकता थी, वही राजरमणी भाग्य चक्र में पड़कर निर्वासित हो आज एक भिखारन के समान जंगली पशुओं की स्थिति में रहकर पुत्र को जन्म देती है ।

इस समय उसे बाह्य और अभ्यंतर कितना दुःख हुआ होगा यह तो कोई ज्ञानी या वह स्वयं ही जानती है । ऐसी दुःखद स्थिति में भी पुत्र प्राप्ति ने उसे कुछ आश्वासन दिया । बच्चे को साफसूफ कर गोद में बैठाकर माता प्रेमभरी दृष्टि से उसके मुख तरफ एकटक देखने लगी । इस समय वह अपने ऊपर पड़े हुए तमाम दुःखों को भूल गयी । उस पुत्र की मुख मुद्रा सूर्य बिंब के समान तेजस्वी और सुंदर देखकर माता के नेत्रों से हर्ष के अश्रु बहने लगे । वह अपनी स्थिति को यादकर पुत्र के सन्मुख देख कहने लगी – हे पुत्र! आज हजारों मनोरथों के साथ तेरा जन्म हुआ है, परंतु तेरी हतभाग्य माता ऐसे भयंकर अरण्य में तेरा जन्मोत्सव कर सकती है? यदि तेरा जन्म घर पर हुआ होता या तेरे पिता के पास होता तो आज के दिन राज्यभर में महोत्सव मनाया जाता । घर – घर मंगल गाये जाते । बेटा! मुझ कमनसीब स्त्री के तमाम मनोरथ मन में ही विलीन हो गये । यों बोलते हुए फिर से उसका हृदय भर आया और वह फूट – फूट कर रोने लगी। अरण्यवासी हिंसक पशुओं के भय से सावधान रहकर उसने बड़ी मुश्किल से रात बितायी ।

मनुष्य की दुःखित अवस्था में सुकुमार शारीरिक परिस्थिति भी कठोरता धारण कर लेती है, एवं अधिक समय तक रहनेवाला दुःख भी उसके हृदय में घर कर लेता है । राज पुत्री होने के कारण धैर्य और साहस धारणकर वह वहां से पूर्व दिशा की ओर चल पड़ी । कुछ दूर जाने पर उसे एक नदी बहती हुई नजर आयी । नदी पर जाकर उसने अपनी तमाम अशुचि को दूर कर पास में रहे वृक्षों के नीचे पड़े हुए कुछ, पके हुए फल खाकर अपनी क्षुधाशांत की । नदी के किनारे पर वृक्षों की सघन घटा घिरी हुई थी; उन वृक्षों के एक निकुंज में रहकर मलयासुंदरी अपने पुत्र का पालन करते हुए अपने निर्वासित जीवन के दिन बिताने लगी ।

एक दिन बहुत से परिवार सहित बलसार नामक सार्थवाह ने उसी नदी के किनारे पर अपना पड़ाव डाला जहां दुर्दैव पीड़ित मलयासुंदरी अपने संकटपूर्ण समय को बिता रही थी । संध्या के समय बलसार दिशाफराकत के

लिए अपने तंबू से निकला । जब वह दिशा जाकर उस घनी-वृक्षघटा के पास से वापिस लौटा तब उसने वहां पर एक बच्चे के रोने की आवाज सुनी। इससे उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । वह सोचने लगा ऐसे भयंकर जंगल में छोटे बच्चे की आवाज कहां से आ रही है । बच्चे के शब्दानुसार जाकर उसने वनदेवी के समान पुत्र को गोद में लिये वृक्ष के निकुंज में बैठी मलयासुंदरी को देखा । वह चकित हो साहसकर पूछने लगा - 'भद्रे! तुम कौन हो? ऐसे जंगल में अकेली क्यों बैठी हो? तुम्हारी मुखाकृति से मालूम होता है कि तुम किसी उत्तम कुल में जन्मी हो। मैं बलसार नामक सार्थवाह हूं और सागर तिलक नामक शहर में रहता हूं । व्यापार के निमित्त प्रायः देश देशांतरों में विशेष घूमता रहता हूं । तुम मुझसे किसी तरह का भी संकोच मत करो । और इस नजीक के पड़ाव में मेरे साथ मेरे तंबू में चलो ।

मलयासुंदरी की रूपराशि को देखकर बलसार का मन विचलित हो गया था । अतः उसका दुःख दूर करने के लिए नहीं किन्तु अपनी कामवासना से प्रेरित ही वह मलयासुंदरी को अपने तंबू में ले जाना चाहता था । बलसार का भाव मलयासुंदरी समझ गयी थी । अतः उसने उसे उत्तर दिया - श्रीमान्! मैं एक चांडाल की पुत्री हूं । माता पिता के साथ क्लेश होने के कारण क्रोधावेष में आकर मैं यहां भाग आयी हूं । अब मैं वापिस अपने घर चली जाऊंगी । आप जाइए, मैं आपके साथ हरगिज नहीं आऊंगी । सार्थवाह भी इस बात को ताड़ गया कि इसकी बोलचाल मुखाकृति से सचमुच यह ऊंच खानदान की स्त्री है। परंतु किसी कारणवश यह अपने आपको छिपाती है । वह बोला - सुंदरी! तुम मेरे साथ चलो! मैं तुम्हारा चांडालपन किसी के सामने प्रकट न करूंगा और जैसे तुम कहोगी वैसा ही करूंगा । इस तरह बोलता हुआ सार्थवाह मलयासुंदरी के नजदीक आ पहुंचा और जिस तरह कोई लुटेरा किसी का धन छीनकर ले जाता है, वैसे ही वह मलयासुंदरी की गोद से बच्चे को उठाकर अपने पड़ाव की तरफ चल दिया ।

मलयासुंदरी एक आपत्ति पर दूसरी आपत्ति आयी देख अधिक सावधान

हो गयी । उस महासती ने प्राणांत कष्ट आने पर भी सदाचार से विचलित न होने के लिए अपने मन को खूब दृढ़ बना लिया । परंतु पुत्र मोह से प्रेरित हो जैसे गाय अपने बछड़े के पीछे चली जाती है वैसे ही पुत्र को वापिस लेने के लिए दीनता भरे वचन बोलती हुई वह सार्थवाह के पीछे - पीछे चली गयी। मलयासुंदरी को अपने पीछे आती देख सार्थवाह को बड़ी खुशी हुई । तंबू में जाने पर मलयासुंदरी ने अपने बच्चे को वापिस लेने के लिए बहुत ही दीनता प्रकट की, परंतु बलसार ने न तो उसे उसका पुत्र ही दिया और न ही उसे यहां से वापिस जाने दिया । पुत्र को पैदा हुए अभी आठ ही दिन हुए थे इसलिए स्तनपान न मिलने के कारण उसके मृत्यु की शंका से मलयासुंदरी ने भी पुत्र को छोड़ वापिस जाना उचित न समझा । पुत्र की रक्षा के लिए इच्छा न होने पर भी वह बलसार के पटावास में रह गयी । बलसार ने किसी को मालूम न हो इस तरह उसके रहने का प्रबंध कर दिया और उसका दिल जानने के लिए उसके पास एक दासी भी नियुक्त कर दी । उसे विश्वास दिलाने के लिए सार्थवाह उचित वचनों से संबोधित करने लगा । अब वह अपने सार्थ के साथ मलयासुंदरी को लेकर अपने सागरतिलक नामक शहर में आ पहुंचा । वहां आकर उसने एक गुप्त मकान में मलयासुंदरी के रहने का प्रबंध किया । एक दिन बलसार मलयासुंदरी के पास आकर नम्र शब्दों में बोला - सुंदरी! तुम्हारा नाम तो बतलाओ । मलयासुंदरी ने मंदस्वर में उत्तर दिया मेरा नाम मलयासुंदरी है । यह नाम सुनकर करके उच्च खानदान के विषय में जो उसका अनुमान था वह और भी दृढ़ हो गया । वह बोला - सुंदरी! तुम मुझे अपना स्वामी स्वीकार करो तो मैं सदा के लिए तुम्हारा सेवक बनकर रहूंगा और मेरी इस अतुल संपत्ति का मालिक तुम और यह तुम्हारा पुत्र ही होगा; क्योंकि मेरे कोई संतान नहीं है ।

मलयासुंदरी - सार्थवाह! आप भी बड़े उच्च कुलीन मालूम होते हैं, इसीलिए आप विचार करें कि पर स्त्री गमन करना संसार में महान् पाप माना है। उसमें भी सती स्त्री के सतीत्व पर हाथ डालना यह और भी अधिक घोर पाप गिना जाता है । आप जैसे कुलीन पुरुषों के लिए यह काम सर्वथा अनुचित है । तथापि मेरे सर्वस्व का नाश हो और शरीर के टुकड़े टुकड़े हो जाने पर भी चंद्रमा

के समान निर्मल मैं अपने शील को कलंकित न करूंगी । बलसार अभी तक यह समझ रहा था कि स्त्री जाति है, समझाने बुझाने से और खातिर करने पर खुद बखुद धीरे - धीरे रास्ते पर आ जायगी । परंतु मलयासुंदरी के निश्चयात्मक वचन सुन उसके तमाम मनोरथों पर पानी फिर गया । अब उसके हृदय में मलयासुंदरी पर के प्रेम ने क्रोध का रूप धारण कर लिया। उसने क्रोध में आकर फिर से उसके बच्चे को छीन लिया और उसे एक मकान में बंदकर वह अपने घर चला गया । घर पर अपनी प्रियसुंदरी नामक स्त्री के पास जाकर बोला - प्रिये! आज मैं अशोक बगीचे में गया था वहां पर मुझे श्रेष्ठ लक्षणोंवाला और सुंदर रूपवान यह लड़का पड़ा हुआ मिला है । निःसंतान होने से हमें रातदिन पुत्र की चिंता रहती थी । आज हमें परमात्मा ने यह पुत्र दिया है । तुम बड़ी हिफाजत के साथ इस का पालन पोषण करो । निःसंतान प्रियसुंदरी भी उस सुंदर बालक को देख बड़ी खुश हुई । बलसार ने उसका नाम भी अपने नाम पर 'बल' रखा और उसका पालन करने के लिए एक धाय भी रख दी ।

सागरतिलक भी एक बड़े बंदरगाह का शहर था । वहां पर कंदर्प नामक राजा राज्य करता था और व्यापारी लोग भी वहां पर बड़े धनाढ्य थे । उन बड़े व्यापारियों में से ही एक यह बलसार सार्थवाह भी था । बलसार अति धनाढ्य होने पर भी उसके हृदय में सारी दुनिया का धन बटोरकर अपने घर में एकत्रित कर लेने की लोभ की भावना सदैव जागृत रहती थी । इसीलिए वह प्रायः व्यापार के निमित्त परदेश में ही अधिक फिरा करता था । अब उसने व्यापार के निमित्त समुद्र मार्ग से बर्बरकूल जाने की तैयारी की । जहाज तैयार हो गये । मोहांध बलसार ने मलयासुंदरी को बलात्कार से अपने साथ ले लिया । समुद्र मार्ग में गमन करते हुए जहाज में बैठी हुई मलयासुंदरी के हृदय में अनेक प्रकार की भावनायें पैदा होने लगीं । क्या यह दुराशय सार्थवाह मुझे समुद्र में डाल देगा? या परदेश में ले जाकर कहीं बेच देगा? खैर मेरा चाहे जो हो परंतु इस दुष्ट ने न जाने मेरे पुत्र को कैसी स्थिति में रखा होगा? पुत्र के दुःख से दुःखित हो उसने फिर बलसार से पूछा - तुमने मेरे बच्चे को कहां रखा है? यह सुन बलसार

ने फिर वही अपनी पुरानी याचना प्रकट की । मलयासुंदरी चुप हो रही ।

पवन अनुकूल होने से बलसार सार्थवाह के जहाज थोड़े ही दिनों में बर्बरकूल जा पहुंचे। उसने अपना तमाम माल वहां पर काफी नफे से बेच डाला। मलयासुंदरी से किसी तरह की अपनी इच्छापूर्ण होती न देखकर उस दुष्ट ने उसे बहुत सा धन लेकर किसी रंग करनेवाले निर्दय रंगरेज लोगों के हाथ बेच दिया । वहां पर भी उसे विषयवासना से अंध बने और उसके रूप से मोहित हुए युवक पुरुषों ने काम याचना के लिए बहुत ही समझाया बुझाया परंतु उसकी मानसिक दृढ़ता को देखकर वह अपने कार्य में सफल न हुए । मलयासुंदरी ने जब उनका कहना मंजूर न किया तब उन निर्दययुवक रंगरेजों ने उसके शरीर में सुईयाँ चुभोकर उसका रुधिर निकाला । इससे मलयासुंदरी को असह्य वेदना के साथ मूर्च्छा आ गयी । कुछ दिन के बाद जब उसके शरीर में फिर से रुधिर भर आया तब फिर उन्होंने पूर्व के समान ही उसके शरीर से खून निकाला । इस तरह हमेशा खून निकालकर वे उस खून को कपड़े रंगने में उपर्युक्त करते थे । इस जगह मलयासुंदरी को जो वेदानायें सहनी पड़ीं वैसे दुःख उसने कभी कानों से भी न सुने थे ।

एक दिन उन लोगों ने फिर मलयासुंदरी के शरीर से रुधिर निकाला, इससे मलयासुंदरी असह्य वेदना के कारण मूर्च्छित हो मृतक की तरह जमीन पर पड़ी थी । उसका सारा शरीर रुधिर से सना हुआ था । उस समय उस घर के तमाम मनुष्य किसी एक प्रसंग से घर के अंदर गये हुए थे । ठीक इसी समय आकाशमार्ग से अकस्मात् एक भारंड पक्षी वहां आ पहुंचा । वह पक्षी उस मकान के गृहांगण में अन्य कोई न होने से बेहोश पड़ी मलयासुंदरी को मांस का लोथड़ा समझकर ऊठाके ले गया ।

भारंडपक्षी बहुत बड़ी पांखोंवाला होता है । सुना है कि उसमें हाथी को भी उठा ले जाने का सामर्थ्य होता है । वही भारंडपक्षी मांसपिंड की भ्रांति से मलयासुंदरी को उठा ले गया । अब वह समुद्र पर से उड़ता हुआ किसी द्वीप की तरफ जा रहा था । रास्ते में सामने से आता हुआ एक भारंडपक्षी और मिल गया।

उस मांस के लोथड़े को देख सामने आनेवाले भारंड ने उस पर आक्रमण किया। दोनों की लड़ाई में मलयासुंदरी उस भारंड के पंजों से निकल पड़ी, भारंड के पंजों से नीचे गिरती हुई को उसे कुछ ठंडी हवा लगने के कारण होश आ गया था। अतः वह पंच परमेष्ठि मंत्र का स्मरण करने लगी और स्मरण करते हुए ही वह समुद्र के अगाध जल में आ गिरी।



◆ *रोगग्रस्त हो, अशक्त हो, अपंग हो, ऐसे वासना - ग्रस्त आत्माओं की वासना पूर्ति के सरलतम साधन टी.वी. एवं वीडिओ।*

◆ *मोह मदिरा का पान करवाने हेतु मेहमानों को आमंत्रित करने में नये युग की बिना लिखी नये डिजाइन की आमंत्रण पत्रिका है टी.वी. एवं विडिओ।*

◆ *अज्ञानी लोग कहते हैं कि टी.वी., विडिओ मनोरंजन के साधन हैं। पर ज्ञानी कहते हैं मन - भंजन के ये निकृष्टतम साधन हैं।*

दुःख में वियोगी मिलन

दिन ढल चुका था। आज कुछ विशेष कार्य न होने से राजा कंदर्प ने अपने सभासदों से कहा, चलो भाई! आज बंदरगाह की तरफ घूमने चलें। 'जी हजूर' कहकर सभासदों ने उसकी आज्ञा को स्वीकार किया। घोड़े तैयार होकर आ गये। राजा कंदर्प अपने साथियों के साथ बंदरगाह की तरफ चल पड़ा। बंदरगाह की ओर से घूमते हुए जब वे समुद्र के किनारे पूर्व की तरफ जा रहे थे तब उनमें से एक सवार बोल उठा - अहो! कैसा आश्चर्य है? समुद्र मार्ग से कोई मनुष्य मगरमच्छ जानवर पर बैठा हुआ समुद्रतट की ओर आ रहा है। यह सुन तमाम मनुष्यों का ध्यान उसी तरफ खिंच गया। कुछ नजदीक आने से मालूम हुआ कि कोई एक मनुष्य मगर - मच्छ पर सवार हो पूर्णवेग से उन्हीं मनुष्यों की तरफ देखता हुआ चला आ रहा है। कंदर्प राजा सहित तमाम मनुष्य आश्चर्य के साथ मौन धारणकर, उसी तरफ देखते हुए खड़े रहे। जिस तरफ वे मनुष्य खड़े थे; उससे दूसरी तरफ समुद्रतट के पास आकर वह मच्छ खड़ा रहा। उसने अपनी पीठ पर बैठे हुए उस मनुष्य को मृदुशुण्डाकार मुख से धीरे - धीरे भूमि पर उतार दिया। और उसे बार - बार देखता हुआ वह मच्छ वापिस समुद्र में चला गया।

पाठक महाशय! आप स्वयं समझ गये होंगे कि मगरमच्छ पर बैठकर जल मार्ग से समुद्रतट पर आने वाली व्यक्ति मलयासुंदरी के सिवा और कोई नहीं है। जिस समय पंचपरमेष्ठि नवकारमंत्र को उच्चारण करते हुए वह भारंड पक्षी के पंजों से निकल समुद्र में गिरी थी। उस वक्त उसके पुण्योदय से पानी में पड़ने की जगह एक मगर मच्छ तैर रहा था। मलयासुंदरी उसकी पीठ पर पड़ी थीं। अब उसने अपने जीवन की आशा सर्वथा छोड़ दी थी, इसलिए अंतिम समय सावधानता पूर्वक वह परमात्मा का नाम स्मरण कर रही थी। उसका शब्द सुनकर आश्चर्य चकित हो मगर - मच्छ ने गर्दन झुकाकर अपनी पीठ की तरफ देखा। मलयासुंदरी को अपनी पीठ पर बैठी देख वह एकदम स्तब्ध सा हो गया।

कुछ देर पानी पर स्थित रहकर वह समुद्र तट की ओर ऐसा चला जैसे कोई शीघ्र वेगवाली किस्ती दौड़ती है । मच्छ की यह प्रवृत्ति देख देख विस्मय के साथ मलयासुंदरी विचारने लगी - 'यह मत्स्य मुझे इस तरह कहां ले जायगा? सचमुच ही किसी हितैषी मनुष्य के समान यह मच्छ बार - बार मेरे सन्मुख देखता है । यह अज्ञानजलचर प्राणी भी मुझ पर कितना उपकार करता है । इस प्रकार विचार करती हुई मच्छ पर मलयासुंदरी किनारे की तरफ आने लगी । थोड़े ही समय में शीघ्रगामी किस्ती के समान वह सागर तिलक नामक नगर के बंदरगाह के पास आ पहुंची ।

मलयासुंदरी का शरीर अनेक वर्णों से परिपूर्ण था । इस समय वेदना, क्षुधा, तृषा और परिश्रम से उसका शरीर बिल्कुल अशक्त हो गया था । उसमें उठकर चलने और अच्छी तरह बात करने की भी ताकात न रह गयी थी । मच्छ के वापिस लौट जाने पर कंदर्प राजा अपने साथियों सहित मलयासुंदरी के पास आया । अशक्त शरीर होने पर भी मलयासुंदरी की लावण्यता सर्वथा नष्ट न हो गयी थी । अतः उसके सन्मुख देख राजा अपने साथियों से बोला- यह तो कोई बड़ी सुंदर युवती है । घने काले भीगे हुए बालों की चोटी बड़ की जटा के समान पीठ पर से होकर नीचे तक लटक रही है । शीरे के समान साफ और चमकता हुआ ललाट मानो नौकरों को मालिक के समान आज्ञा दे रहा है । इसकी बड़ी - बड़ी आंखें संध्या समय के कमल दलों के समान मुंदी हुई हैं । कौन कह सकता है कि इनके अंदर कैसी दृष्टि छिपी हुई है ? उठी हुई लंबी नाक के नीचे होठों में राजसी दर्प से युक्त हास्य छिपा हुआ है । उसके नीचे ठोड़ी मानों सुधापात्र के समान उस विगलित हास्य को ग्रहण करने के लिए तैयार है । ऊंची और टेढ़ी गर्दन से इस समय भी अभिमान प्रकट हो रहा है । सिकुड़े हुए गीले कपड़ों के नीचे इसका यह गोरा बदन उसी प्रकार शोभ रहा है जैसे पतले बादलों से घिरा हुआ आकाश में चंद्रमा । ऐसी दुर्दशा में भी इस सुंदरी का तेजवान् एवं सौम्य मुखमंडल कितना सुंदर और लुभावना है! परंतु इस मस्त्य का इसके साथ क्या संबंध? इस तरह प्रयत्नपूर्वक वह जलचर प्राणी इसे समुद्र के किनारे क्यों छोड़

गया होगा? ये तमाम बातें इस स्त्री से ही मालूम होंगी । इसके शरीर पर नक्रचक्रादि जलचर प्राणियों के किये हुए ही ये अनेक व्रण मालूम होते हैं। इससे यह भी साबित होता है कि यह स्त्री किसी जहाज के डूब जाने से समुद्र में बहुत दिनों से पड़ी होगी । इन तमाम बातों को जानने की उत्सुकता से कंदर्प बोला - सुंदरी! मैं सागर तिलक बंदर का कंदर्प नामका राजा हूं । तूं जरा भी भय न रखना। सच कहो, तुम कौन हो? तुम्हारी ऐसी स्थिति क्यों हुई? यह मच्छ कहां से यहां पर तुम्हें ले आया? राजा के शब्द सुनकर मलयासुंदरी को कुछ आनंद और कुछ खेद पैदा हुआ। यह सोचने लगी - अहा! अभी तक भी मेरे भाग्य का अवशेष जागृत है । यहां पर कुछ आशा किरणों के पड़ने का संभव होता है । उस दुष्ट सार्थवाह ने भी मुझे पुत्र सहित प्रथम यहां ही लाकर रखा था । जिस शहर में उसने मेरे पुत्र को रखा है । वही यह सागर तिलक शहर है । कर्मों ने मुझे फिर यहां ही ला पटका, संभव है किसी तरह मुझे यहां मेरे प्यारे पुत्र के दर्शन हो जायें।

दूसरी तरफ मुझे यहां पर यह भय भी है, कि यह कंदर्प राजा मेरे पिता और मेरे श्वशुर का कट्टर दुश्मन है । इसके सामने मुझे बड़ी सावधानता से रहना होगा। इसको अपना परिचय देना मेरे लिये और भी भयंकर संकट दायक होगा! यह सोच मलयासुंदरी ने उत्तर दिया ।

राजन् ! इस दुर्भाग्य मनुष्य का वृत्तान्त सुनने की आपको क्या आवश्यकता है ? मेरे वृत्तान्त से आपको कुछ भी लाभ न होगा । मैं दूर देश की रहनेवाली अपने पुण्य नाश के कारण ऐसी दशा को प्राप्त हुई हूँ । मलयासुन्दरी के दुःख पूर्ण उद्‌गार सुनकर राजा के साथी बोले - महाराज ! यह बेचारी इस समय दुःखभार से दबी हुई है, अपने इष्ट मनुष्यों के वियोग से दुःखित हुई मालूम होती है । इसी कारण अच्छी तरह यह बोल भी नहीं सकती । इस समय इससे कुछ भी न पूछकर इस पर कुछ उपकार करना चाहिए । राजा फिर बोला - भद्रे ! इस समय तूं अत्यन्त दुखी मालूम होती है ; तथापि अपना नाम तो बतला । मलयासुन्दरी ने मंदस्वर से उत्तर दिया- "मेरा नाम मलया है । राजा

ने तुरन्त ही राजपुरुषों से पालखी मँगवायी और मलयासुन्दरी को पालखी में बैठाकर वह अपने राजमहल में ले गया । उसने वैद्यों को बुलाकर संरोहिणी औषधी द्वारा मलयासुन्दरी का शरीर ठीक कराया । औषधी के प्रभाव और दासियों की परिचर्या से उसका शरीर थोड़े ही दिनों में पहले जैसा कान्ति और तेजवान् हो गया ।

मलयासुन्दरी का शरीर अच्छा होने पर उसके सौन्दर्य और तेज़ को देख राजा ने उसे एक जुदे महल में रखकर उसकी सेवा में अनेक दास - दासियाँ नियुक्त कर दीं, अब उस का सुन्दर वस्त्रालंकारों से विशेष सत्कार किया जाने लगा । इस सत्कार के कारण मलयासुन्दरी को कंदर्प राजा का मनोगत भाव जानने में कुछ भी देर न लगी । यह सोचती थी कि यह विशेष सम्मान मुझे सुखदाई न होगा । कुछ दिनों के बाद उसका किया हुआ अनुमान सच मालूम हुआ । उसके रूप और लावण्य से मुग्ध हो राजा कन्दर्प ने अपनी दासी के द्वारा मलयासुन्दरी के समक्ष अपने मन का भाव प्रकट किया । उसने उसे अपनी पटरानी बनाने के लिए तरह - तरह के प्रलोभन दिये। परंतु मलया सुन्दरी अपने सतीत्व को प्राणाधिक समझकर जरा भी विचलित न हुई । जब दासियों द्वारा और खुद अपनी प्रार्थनाओं से भी कार्य सिद्ध होता हुआ न देखा तब वह एक रोज मलयासुंदरी के पास जाकर बोला - सुन्दरी ! दोनों तरफ से प्रेम से ही सांसारिक सुख का आनन्द आता है, इसलिए मैं तुम्हें बार - बार समझाता हूँ कि तुम मुझे प्रेमपूर्वक अंगीकार करो अन्यथा मैं तुम्हें अपनी पत्नी तो बनाऊँगा ही । मुझे तुम्हारे रूप और सौन्दर्य ने मुग्ध बना दिया है मलयासुन्दरी - धिक्कार है मेरे इस सौन्दर्य को, जिसके कारण मैं नरक के समान मानसिक और शारीरिक यातनायें भोगती हूँ । महाराज ! आप एक प्रजा के राजा हैं; राजा का कर्तव्य है कि वह पुत्री के समान अपनी प्रजा का पालन करे । जब आपके जैसे न्यायवान् राजा न्याय को छोड़कर अन्याय में प्रवृत्ति करें तो संसार में न्याय किसके पास रहेगा ? रक्षक स्वयं भक्षक बन जाय तो फिर उसकी रक्षा कहाँ होगी ? दूसरी यह भी बात है कि एक सती के शील को विध्वंस करने का प्रयत्न करनेवाले पापी मनुष्य संसार में अपनी अपकीर्ति फैलाते हैं और जन्मान्तर में नरकादि की घोर

वेदनायें भोगते हैं । महाराज ! सती के शील का खंडन करना केसरी सिंह की केसरायें ग्रहण करने के समान है या दृष्टिविष सर्प के मस्तक पर रहे हुए मणि को ग्रहण करना और सती के शील पर हाथ डालना एक सरीखा है । इसलिए हे राजन् ! आपको यह विचार परित्याग करना चाहिए । आप ऐसे कृत्यों के द्वारा अपने निष्कलंक कुल को कलंकित न करें ।

इस तरह समझाने पर भी कंदर्प अपने दुष्ट अभिप्राय से जरा भी पीछे न हटा । उसने निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ भी हो मैं इसे अपनी स्त्री अवश्य बनाऊंगा । मलयासुन्दरी ने यह निश्चय कर लिया था अगर किसी भी उपाय से मैं अपने शील की रक्षा होती न देखूंगी तो उस दुष्कृत्य से पहले मैं अपने प्राणों की आहुती दे दूंगी । इधर वासना का दास बना हुआ राजा कंदर्प उसे वश करने के लिए अनेक प्रकार के उपाय सोचता है, परन्तु उसे किसी भी उपाय में सफलता प्राप्त नहीं होती । अब उसने मलयासुन्दरी को हमेशा छेड़कर हठिली बनाना उचित न समझा। अब वह यह सोचकर कि जो काम बल से नहीं होता वह प्रेम और कपट छलसे सिद्ध हो जाता है मलयासुन्दरी को देशान्तरों से भेट में आये हुए अच्छे – अच्छे पदार्थ भेजने लगा । एक दिन राजा अपने महल पर टहल रहा था उसी समय एक तोता कहीं से पका हुआ एक आम्रफल लिये जा रहा था; दैवयोग से वह उसके चोंच से निकल जाने के कारण राजा के सामने आ पड़ा । राजा उस सुन्दर फल को हाथ में उठाकर सोचने लगा – अहो ! फाल्गुन मास में यह आम्रफल कहाँ से आया ? विचार करते हुए उसे मालूम हुआ शहर के नजदीक में जो छिन्नटंक नामक पहाड़ है उसी के एक विषम प्रदेश में ऐसा वृक्ष है जिस पर सदा काल फल लगते रहते हैं । उसी वृक्ष का फल लेकर कोई पक्षी आकाश से जा रहा होगा; उससे छूटकर यह फल मेरे सामने गिरा है । यदि मैं इस फल को उस स्त्री को दूंगा तो शायद उसका मन मेरी ओर झुके । यह सोच उसने एक नौकर के द्वारा वह आम्रफल मलयासुन्दरी के पास भेजा और सेवकों को यह भी आज्ञा दी कि आज उस स्त्री को जनाने महल में ले जाओ । बलात्कार से भी मैं आज अपने मनोरथ पूर्ण करुंगा । सेवक ने यह पका हुआ आम्रफल

मलयासुन्दरी के हाथ में जा दिया । मलयासुन्दरी ने आश्चर्य और हर्ष के साथ उस आम्रफल को ले लिया । वह इस अवस्था में आम्रफल मिलने पर अपने कुछ पुण्य का उदय समझ बड़ी खुश हुई । राजा की आज्ञा से अब उसे अन्तेउर में छोड़ा गया यह समाचार राजा को सुनाया गया कि आम्रफल देखकर वह सुन्दरी बहुत प्रसन्न है और उसे अन्तेउर में पहुँचा दिया गया है । मलयासुन्दरी को यह बात समझने में कुछ भी देर न लगी कि आज उसे उसका शीलभंग करने के लिए ही अन्तेउर में लाया गया है ।

युद्ध को जाते समय महाबल ने मलयासुन्दरी को जो रूप परिवर्तन की गुटिका दी थी वह उसके पुण्योदय से अभी तक पास हीं थी । अतः समय देख अन्य कोई देख न सके इस तरह उसने एक गुटिका को आम्ररस में घिसकर अपने मस्तक पर तिलक कर लिया । बस फिर तो देरी ही क्या थी दिव्य गुटिकावाले तिलक के प्रभाव से क्षणभर में वह पुरुष रूप में हो गयी । अब उसकी खुशी का पार न था । वह निर्भय हो प्रसन्न चित्त से अन्तेउर में टहलने लगा । अन्तेउर में रहनेवाली अन्य राजरमणियों ने उसे देखकर बड़ा आश्चर्य प्राप्त किया । जिन्हें राजा के सिवाय अन्य किसी पुरुष का दर्शन न होता था आज वे अनन्य रूप राशि धारण करनेवाले युवक को देखकर विषयवासना से प्रेरित हो उस पर मोहित हो गयी और आपस में कहने लगी अहा ! आज अन्तेउर में महाराज के सिवाय यह सुंदर युवक कहाँ से आ गया ? यह तो कोई देव या विद्याधर मालूम होता है । इस तरह बोलते हुए उनके हृदय में विकार की तरंगे उसी तरह उछलने लगीं जैसे चंद्र बिम्ब को देख समुद्र की लहरें उमड़ती हैं । जिस भाँति किसी पके फल वाले वृक्ष को देखकर भूखे बन्दरों का समूह उसके फल खाने के लिए उत्सुक और लालायित होता है वैसे ही रणवास में रहनेवाली राज महलायें उस पुरुष के साथ कामक्रीड़ा करने के लिए उत्सुक हो उसके सन्मुख अनेक प्रकार के हावभाव और कटाक्ष करने लगीं ।

अंतेउर की यह चेष्टा देख आश्चर्य को प्राप्त हुई एक दासी ने राजा के पास जाकर प्रार्थना की, महाराज ! आज अकस्मात् आपके अन्तेउर में एक कोई सुन्दर

युवापुरुष बैठा है, और तमाम रानियां उसके साथ हँसी मजाक कर रही हैं। यह समाचार सुनते ही कंदर्प शीघ्र ही महल में आया और साक्षात् कामदेव के समान सुन्दर रूपवान उस नवीन पुरुष को देख वह आश्चर्य में पड़ गया। वह एक दम बोल उठा – ''यह पुरुष कौन है ? इसने महल में किस तरह प्रवेश किया ? इस प्रश्न के उत्तर में राजा को कुछ भी जवाब न मिला। अकस्मात याद आने से राजा ने मलयासुन्दरी की तलाश करायी; परंतु ढूंढने पर भी उसका पता न लगा। अतः आँखें चढ़ा उसने द्वारपाल से पूछा – अरे ! वह जो आज नयी स्त्री यहाँ पर भेजी गई थी वह कहाँ है हाथ जोड़कर नम्रता से द्वारपाल बोला – महाराज ! थोड़ी ही देर हुई वह स्त्री यहाँ ही बैठी थी ; वह महल से बाहर बिलकुल नहीं गयी, क्योंकि मैं दरवाजे पर सावधान हो पहरा दे रहा हूँ। यह सुन राजा विचार ने लगा – किसी प्रयोग से उस सुन्दरी ने पुरुष रूप तो नहीं धारण किया है ? जानने के लिए राजा ने उससे प्रश्न किया अरे ? तूं कौन है !

मलया – ''मैं कौन हूँ ? क्या तू स्वयं अपनी नजर से नहीं देख सकता? राजा ने कुछ देर तक विचारकर निश्चयकर लिया कि यह उस सुन्दरी ने ही मेरे स्वाधीन न होने के कारण किसी तरह अपना रूप परिवर्तन कर लिया है। अगर यह यहाँ पर रहेगा तो कुछ और अनर्थ होने का संभव है। यह विचारकर वह बोला – सूभटों ! क्या देखते हो ? इस पुरुष को महल से बाहर निकाल दूसरे मकान में नजर कैद रखो ! राजाज्ञा होते ही राजपुरुषों ने उसे बाहर निकालकर नज़दीक के एक मकान में अपनी निगरानी में नज़र कैद किया।

मलयासुन्दरी को इससे बड़ा हर्ष हुआ। अपने शील की रक्षा देख उसके आनन्द का पार न था। परन्तु इतने मात्र से ही उसके रूप में मुग्ध बना राजा कंदर्प उसे छोड़ नहीं सकता था। थोड़ी ही देर के बाद वह फिरसे पुरुषरूपा मलया सुन्दरी के पास आया और अनेक प्रकार के अनुकूल उपचारों से पूछने लगा, सुन्दरी ! तुमने अपना यह पुरुष रूप किस लिए और किस प्रयोग से बना लिया ? किस प्रयोग से फिर तुम्हारा स्त्री रूप बनेगा ? मलयासुन्दरी ने इस बात का कुछ भी उत्तर न दिया। इससे क्रोधातुर हो राजा ने उसकी बहुत ही ताड़ना – तर्जना की। पराधीनता में अभागन मलयासुन्दरी को वह सब कुछ मौन रहकर सहना

पड़ा । कामान्ध कंदर्प ने जब उस पर प्रतिदिन मार पीट का क्रम शुरु कर दिया तब अति दुःखित हो उसने सोचा, कितने दिन तक इस नारकीय दुःख को सहा जाय ! ऐसी कदर्थनाओं से आत्महत्या करना श्रेयस्कर है । परन्तु यहाँ से किसी तरह निकल भागूं तब न ? पुरुष रूप में अब मुझे अपने शील भंग होने का कहीं पर भी भय नहीं । और इसी कारण इस तरह की यातनायें भी मुझे अन्यत्र न सहनी पडेंगी ।

एक दिन रात के समय जब कि उसका पहरेदार निद्रा में पड़ा सो रहा था अन्य कोई न जान सके इस तरह वहाँ से निकल मलयासुन्दरी शहर से बाहर आ पहुँची । स्त्री जाति होने के कारण एवं अनुभव और धैर्य के अभाव से वह वहाँ से दूर भाग जाने के लिए समर्थ न हुई । दुःख से मुक्त होने के लिए मृत्यु का शरण लेने के सिवा उसे अन्य कोई उपाय न सूझा । वह आत्महत्या करने का निश्चयकर वहाँ पर रहे हुए एक जीर्ण मठ की दीवार के पास खड़ी हो गयी। उसी दीवार के पास एक बड़ा अंधकूप नामक पानी रहित कुआ था; वह मलया सुन्दरी के देखने में आ गया; उसमें झंपापात करने के इरादे से वह उस कुएँ के किनारे पर खड़ी हो विचारने लगी – प्रातःकाल होने पर मुझे वहाँ पर न देख अवश्य ही राजा और राजपुरुष मेरी खोज में मेरे पीछे आयेंगे और क्रोंधांध हो मुझे बुरी मृत्यु से मारेंगे । इससे इस कुएँ में कूदकर स्वयं मर जाना अच्छा है । यह सोच उसने पंच परमेष्ठि मंत्र का स्मरण किया । मरने का निश्चय करने पर भी वह महाबल कुमार का प्रेम और भक्तिभाव भूल न सकी । अतः अंत में दुर्दैव को उपालंभ देते हुए वह बोल उठी – हे दुर्दैव ! तूने मुझे मेरे बन्धु से वियोगन बनायी । और तूंने ही निःस्सीम प्रेमवाले मेरे प्रियतम महाबल से मुझे जुदा कराया ! हे दैव ! जन्मान्तर में तो तूं अवश्य ही मुझ पर प्रसन्न हो मेरे प्रियतम के साथ मेरा मिलाप करा देना । हे जंगल के पशुपक्षियों ! अगर तुम्हें कहीं पर भी मेरे स्वामी महाबल मिल जायँ तो उन्हें मेरा अन्तिम नमस्कार पूर्वक यह संदेश सुनाना कि उस तुम्हारी वियोगिनी मलया सुन्दरी ने दुःख से कायर हो, आपको याद करते हुए इस अंधकूप में प्राण त्याग किये हैं । इस प्रकार दैव को उपालम्भ देकर और पशुपक्षियों को अपना संदेश महाबल से सुनाने की

याचनाकर मलयासुन्दरी उस अंधकूप में कूद पड़ी ।

मलयासुन्दरी की खोज में महाबल को लगभग एक वर्ष पूर्ण होने आया था । उसने भूख, प्यास और निद्रा को त्यागकर देशभर के बड़े - बड़े तमाम शहर, जंगल, पहाड़, और गुफायें ढूँढी, परन्तु उस मलयासुन्दरी का समाचार तक भी कहीं न मिला । सिर्फ एक सागर तिलक शहर ही बड़े शहरों में से खोज किये बिना रहा हुआ था, सो यहाँ भी वह आज संध्या के समय आ पहुँचा है। भूख प्यास और रास्ते के परिश्रम से आज वह बहुत ही थक गया था । परन्तु उसके मनमें जो अपनी प्रिया का प्रेम था वह जरा भी कम न हुआ था । इसी कारण आज उसके मनमें ये विचार पैदा हुए - ''निमित्तज्ञ ज्ञानी के कथनानुसार आज सालभर से अधिक समय हो गया, परन्तु मिलने की तो बात दूर रही प्रिया का कहीं पर समाचार तक भी नहीं मिला । यदि कल इस शहर में भी कुछ पता न लगा तो आत्मघात कर इस भारभूत निरस जीवन का अन्त कर देना योग्य है।

रात पड़जाने से महाबल शहर से बाहर ही उसी पुराने मठ में ठहर गया था जिसके पास खड़ी होकर कुछ देर पहले मलयासुन्दरी ने मरणोन्मुख होकर पूर्वोक्त उद्‌गार निकाले थे । उस मठ में पड़े हुए महाबल ने पूर्वोक्त विचारों की उधेड़बुन में मलयासुंदरी के अन्तिम शब्दों को सुन लिया था । इससे वह एकदम चकित हो उठ बैठा और बोला - ''अहा ! यह तो मेरी ही प्रिया के सरीखी किसी दुखित सुन्दरी के मृत्यु सूचक अन्तिम शब्द मालूम होते हैं । यह विचारकर और यों बोलता हुआ ''सुंदरी ! ठहरो ! साहस मत करो; वह दौड़कर उस अन्धकूप के पास आया । परन्तु दुर्दैववशात् महाबल के वहाँ पहुँचने से पहले ही वह अन्धकूप में झंपापात कर चुकी थी। महाबल का भी अपनी प्रिया के प्रति कुछ कम प्रेम न था । अतः उसने भी मलयासुन्दरी के पीछे उसी कुएँ में झंपापात कर दिया ।

उस जल रहित कुएँ में पड़ने बाद महाबल ने अपनी तकलीफ कुछ न गिनते हुए अपने से पहले पड़े हुए मनुष्य को देखा तो मालूम हुआ कि यह गाढ़ मूर्च्छा में पड़ा है । और किसी विशेष वेदना का अनुभव करते हुए मंदस्वर से

अव्यक्त स्थिति में प्यारे महाबल ! दासी को भूल न जाना, यह शब्द बोलता था। यह सुन महाबल विस्मित हुआ । उसने अपने हाथ से उसके शरीर की शुश्रुषा करनी शुरु की । कुछ देर के बाद उसे कुछ चैतन्य आया । अतः महाबल बोला– साहसिक युवक ! तुम कौन हो ? और किस दुःख से तुम इस कुएँ में पड़े हो? मलयासुन्दरी ने अपने स्वामी महाबल का शब्द सुनकर कुछ उसीके विषय में अनुमान किया । इसलिए उसने कहा – मुझे भी आपसे यही सवाल पूछना है। परन्तु आप इससे पहले यह काम करें कि अपने थूक से मेरे मस्तक पर लगे हुए तिलक को मिटा दें । वैसा करने से मलयासुन्दरी का वास्तविक रूप हो गया । वह अपने प्राण प्यारे को सन्मुख देख उसके गले में हाथ डालकर एकदम भेट पड़ी और उसके परोक्ष में सहे हुए असह्य दुःखों को यादकर वह फूट फूटकर रोने लगी । इस समय कुएँ की भींत के एकगड्ढे में रहे हुए साँप ने अपनी फणा बाहर निकाली । उसकी फणापर दैदीप्यमान् मणि होने से कुएँ के अन्दर दीपक के जैसे प्रकाश फैल गया । वियोगी दम्पती ने एक दूसरे के दर्शन किये । मणि द्वारा प्रकाशकर उस सर्प ने भविष्य में होनेवाले उनके उदय की सूचना दी । प्रिया से मिलने की उत्कंठा से ग्राम, नगर, और जंगलो में भटकनेवाला महाबल एक वर्ष के बाद ऐसे विषमस्थान में मणि के प्रकाश में मलयासुन्दरी के साक्षात् दर्शनकर हर्ष से गद्‌गद् हो उठा । उसने अत्यंत प्रेम से उसे अपनी छाती से लगा लिया । इस समय वे दोनों अपने ऊपर पड़े हुए तमाम दुःखो को भूलकर जिस अनिर्वचनीय सुख का अनुभव कर रहे थे । भला उस सुख को लिखने की इस निर्जीव लेखनी में शक्ति कहाँ ? दोनों की आँखों से आनन्द के अश्रु बहने लगे। कुछ देर तक आनन्द के वेग से हृदय भर आने के कारण वे एक – दूसरे से कुछ भी न बोल सके । जब अश्रुओं के द्वारा हृदय का वेग दूर हो चुका तब महाबल बोला : प्रिये ! तुम आज तक का तुम्हारा अनुभव किया हुआ मुझे सर्व वृत्तान्त सुनाओ ।

मलयासुन्दरी ने पति की आज्ञा से कंपित – शरीर, दुःखित हृदय, और अश्रुपूर्ण नेत्रों से अनुभव किया हुआ अपना दुःख गर्भित वृत्तान्त कह सुनाया।

उसके दुःख का वृत्तान्त सुनकर महाबल का हृदय दुःख से भर आया, फिर से उसके नेत्रों से आँसु बहने लगे । वह बोल उठा – हा ! हा ! सुन्दरी ! क्या ऐसे दुःखों का अनुभव करने के लिए ही तुम्हारा मुझसे सम्बंध हुआ था ? प्रिये ! भोग के योग्य तुम्हारे इस सुन्दर शरीर ने किस तरह उन असह्य दुःखों को सहा होगा? प्रिये ! बलसार ने तुमसे छीनकर उस हमारे पुत्र को कहाँ रखा है।

मलया – ''स्वामिन् ! उस सार्थवाह ने इसी नगर में किसी गुप्त स्थान पर पुत्र को रखा है । परन्तु निश्चित स्थान के बिना यह बालक हमें किस तरह मिल सकता है ?''

महाबल – ''प्रिये ! किसी प्रकार इस कुएँ से बाहर निकल जायें फिर कुमार की तलाश करुंगा ।''

मलया – स्वामिन् ! मेरे निकाले बाद आपने किस तरह इतना समय बिताया । इस प्रश्न के उत्तर में महाबल ने पल्लीपति की विजय से लेकर आज तक का सर्व वृत्तान्त कह सुनाया । अपनी बीती बातों में ही उन्होंने शेष रात पूरी की । इधर प्रातःकाल होने पर जब मलयासुन्दरी को गायब पाया तब पहरेदार ने शीघ्र ही राजा कंदर्प को उसके भाग जाने का समाचार दिया । राजा अनेक राजपुरुषों को साथ ले मलयासुन्दरी के कदम दर कदम के अनुसार चल उसकी खोज निकालता हुआ उसी अन्धकूप के पास आ पहुँचा । कुएँ में देखने से वे दोनों स्त्रीपुरुष देखने में आये । राजा समझ गया कि यह पुरुष कोई इस स्त्री का अवश्य सगा – सम्बन्धी होगा । इसीलिए उसने इस वक्त अपना स्वाभाविक स्त्री रूप बना लिया है और उससे वार्तालाप कर रही है । इत्यादि कुछ सोचकर राजा ने उनसे कहा – मैं तुम दोनों को अभयदान देता हूँ । तुम दोनों कुएँ से बाहर निकलो । रस्सियों के साथ बाँधकर माचियाँ कुएँ में लटकायी जाती है; उन पर चढ़ बैठो। मैं उन्हें खिचवाकर तुम्हें बाहर निकलवाता हूँ । मलयासुन्दरी ने महाबल से कहा – प्रियदेव ! यही वह कंदर्प राजा है जो विषयांध होकर मेरी *अत्यंत कदर्थना कर रहा है । अब यह मेरे पदचिन्ह देखता हुआ यहाँ आ पहुँचा*

है । मुझे यह शक है कि मुझ पर आसक्त होने के कारण यह दुष्ट आपको न मार डाले । महाबल बोला – प्रिये ! इस बात का मुझे भय नहीं है, किसी तरह इस कुएँ से बाहर निकल जाऊँ फिर तो इसके निग्रह का कोई न कोई उपाय ढूँढ़ निकालूँगा । तुम किसी तरह का भय मत करो, एक मंचिका पर तुम बैठ जाओ और दूसरी पर मैं बैठता हूँ । मलयासुन्दरी पति की आज्ञा मंजूरकर एक मंचिका पर बैठ गयी और दूसरी पर महाबल ! मंचिकायें खींची जाने लगीं, मानो राजा अपना वंश उच्छेदन करने के लिए पाताल से नागकुमार को आकर्षण कर रहा हो इस तरह उन दम्पती के मंचको को उसने खिंचवाया । जब वह मंचिकायें कुएँ के किनारे तक आ गयी तब राजा ने पहले मलयासुन्दरी की मंचिका बाहर निकलवायी । किनारे के नजदीक आयी हुई मंचिका पर नागकुमार के समान रूपवान बैठे हुए महाबल को देखकर राजा विचार में पड़ गया । ऐसे सुन्दर पतिवाली स्त्री ताड़ना – तर्जना करने पर भी मेरे जैसे मनुष्य को कदापि स्वीकार न करेगी । इसलिए इस सुन्दर युवक को बाहर निकालना ठीक नहीं । यह सोच उसने तलवार से महाबल के मंच का रस्सा काट दिया । रस्सा कटते ही निरालम्बन हो महाबलकुमार अपने मंचसहित शीघ्र ही वापिस कुएँ में जा गिरा । यह देख मलयासुन्दरी भी फिर से वापिस कुएँ में गिरने के लिये छटपटायी । परन्तु उसे राजा ने झट से पकड़ लिया और उसे वह अपने महल में ले गया । महल में लाकर राजा ने मलयासुन्दरी से कहा – ''सुन्दरी ! वह मनुष्य कौन था? उसका नाम क्या है ? वह तुझे किस तरह मिला ? और वह कहाँ का रहनेवाला है । इत्यादि अनेक प्रश्न पूछे परन्तु मलयासुन्दरी को इन प्रश्नों का उत्तर देने का समय ही कहाँ था ? उसे अपने पति के वियोग में विवश हो रुदन करने के सिवा और कुछ न सुझता था खाने – पीने के लिए आग्रह करने पर उसने साफ कह दिया कि जब तक मैं उस मनुष्य का दर्शन न करुँगी । तब तक अन्नजल ग्रहण न करुँगी । कंदर्प ने सोचा उस पुरुष को कुएँ से बाहर निकलवाना मेरे लिए किसी तरह भी लाभदायक नहीं है और इसे अन्तेउर में रखना भी योग्य नहीं । क्योंकि यदि इसने वहाँ पर रहकर पुरुषरूप कर लिया तो यह मेरे सारे अन्तेउर को खराब करेगा । इत्यादि विचारों से मलयासुन्दरी को राजपुरुषों के विशेष पहरे में राजा

ने एक पुराने महल में रखा । वह सारा दिन मलयासुन्दरी ने पतिवियोग में रुदन करते हुए ही पूर्ण किया ।

जिस मकान में वियोगीनी मलयासुन्दरी को रखा गया था वह राज कैदियों को बंद करने के लिए एक पुराना कारागृह था । उसके पास एक भी दासी नहीं रखी । सिर्फ उस महल के बाहर चारों तरफ राजा के सिपाही घूम रहे थे । रात्रि पड़ने पर चारों तरफ अंधकार पसर गया । मलयासुन्दरी पति दुःख से दुःखित हो जलहीन मीन के समान जमीन पर तड़फने लगी । इसी समय उस जगह कहीं से एक भयंकर जहरी सर्प आ गया और उसने मलयासुन्दरी को डंक लगाया।

मृत्यु बुरी चीज है । मलयासुन्दरी एकदम चिल्ला उठी – हाय मेरे पैर में यह दुष्ट सर्प आ लिपटा । यों बोलकर वह देव गुरु का स्मरण करने लगी । चिल्लाहट सुनकर एकदम पहरेदार आ पहुँचे । उन्होंने वहाँ साँप को देखकर उसे किसी शस्त्र से मार डाला और शीघ्र ही जाकर राजा को खबर दी कि मलयासुन्दरी को जहरीले साँप ने डस लिया है । विषय स्नेही राजा यह खबर सुन आकुल व्याकुल हो शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचा । राजा ने तुरन्त ही शहर में से मंत्रवादियों को बुलवाया । जड़ी बूंटी साँप का जहर उतारने के तमाम साधन मंगाये । और उनका प्रयोग भी करवाया परन्तु तमाम प्रयोग निष्फल गये ।

- *सिनेमा टी. वी. एवं विडिओ आदि आधुनिक दुर्गतिदायक साधन मानव को दानव बनाने का कार्य करते हैं ।*
- *सिनेमा आदि साधन आत्म – गुण घातक नये युग के नये शस्त्र हैं।*

– जयानंद

दुःखों का अन्त

उठायी हर तरह तकलीफ पर परकी भलाई की ।
अमर कर नामरख्ख दी शान अपनी वीरताई की ।।

प्रातःकाल का समय है । सूर्य देव ने उदयाचल पर चढ़कर अपनी सुनहरी किरणों से जगत भर को पीला बना दिया है । शहर के आलसी लोग तो अभी तक उठे भी नहीं हैं । ऐसे समय राजा की ओर से ढींडोरा पिट रहा है "परदेश से आयी हुई उस स्त्री को रात्रि में भयंकर सर्प ने डस लिया है, जो मनुष्य उसका विष उतार देगा उसे राजा अपना रणरंग हाथी, एक राजकन्या और देश का एक प्रान्त देगा । शहर भर में डिंडिम नाद बजता फिरा परन्तु एक भी मनुष्य उसे स्वीकार करनेवाला न मिला । जब वे राज पुरुष वापिस राजमहल को लौट रहे थे तब उन्हें एक विदेशी युवक मिला । उसके पूछने पर उन्होंने उसे सब समाचार कह सुनाया । वह परदेशी युवक बोला चलो मुझे राजा के पास ले चलो, मैं उस स्त्री को अच्छा करुँगा । राजपुरुष उसे साथ ले शीघ्र ही राजा के पास आये । उस युवक को देख राजा एक दम आश्चर्य चकित हो उसकी ओर आँखें फाड़कर देखता हुआ सोचने लगा "यह तो वही मनुष्य मालूम होता है जिसे हमने वापिस कुएँ में डाल दिया था ! इसे किस दुष्ट ने बाहर निकाला होगा ? नौकरों से बोला - यह कौन मनुष्य है नौकर बोले - महाराज ! सारे शहर में पटह बजाया गया परन्तु किसी भी मनुष्य ने स्वीकार न किया । रास्ते में यह परदेशी मनुष्य मिल गया, यह उस स्त्री का विष उतारना मंजूर करता है। राजा - (गुस्से को दबाकर) हाँ फिर आप खुशी से शीघ्र ही उन सुन्दरी का विष उतारीये, मैं आपको अपना रण रंग हाथी, एक राज कन्या और देश का एक प्रान्त दूँगा ।

महाबल - महाराज ! मुझे आपका इनाम कुछ नहीं चाहिए । मैं प्रदेशी मनुष्य हूँ । और यह मेरी ही पत्नी है । यह दैव की मारी घर से निकली हुई

है । मैं इसका विषापहारकर अवश्य ही इसे आराम कर दूँगा आप इसे ही मुझे दे देना । यह सुन राजा स्तब्ध - सा हो गया । उसे कुछ भी उत्तर देना न सुझा। वह कुछ देर सोचकर बोला - अच्छा ऐसा ही सही, एक काम हमारा बतलाया हुआ और कर देना फिर हम तुम्हें इस स्त्री को ही दे देंगे । महाबल ने यह बात भी मंजूर कर ली । राजा महाबल को साथ ले मलयासुन्दरी के पास आया । इस समय मलयासुन्दरी के सारे शरीर में विष व्याप्त हो चुका था और वह गाढ मूर्च्छा में अचेतन हो पड़ी थी । अपनी प्रिया की यह दुर्दशा देख महाबल का हृदय भर आया । उसने बड़ी महेनत से अपने अश्रु प्रवाह को रोका। यह राजा से बोला - राजन् ! इसके शरीर में तो श्वासोश्वास की क्रिया भी मालूम नहीं होती, तथापि मैं अपना प्रयोग शुरु करता हूँ । आप यहाँ पर सुगन्धीवाला जल छिड़कवाकर तमाम मनुष्यों को बाहर चले जाने की आज्ञा करें । महाबल ने उस जगह को पवित्र कराकर वहाँ पर एक मंडल बनवाया और फिर राजा आदि सबको बाहर बैठ जाने की आज्ञा दी ।

एकाकी महाबल ने विष उतारने का प्रयोग शुरु किया । उस मण्डल का मंत्रार्चन से विधि पूराकर महामंत्र का स्मरण करके उसने अपने पास से एक विषापहारक मणि निकाला । उसे स्वच्छ जल से धोकर वह पानी मलयासुन्दरी के नेत्रों पर छिड़का । उस पानी की असर से धीरे धीरे उसके नेत्र झबकने लगे। फिर उसने वह पानी उसके मुख पर छिड़का इससे धीरे - धीरे उसका श्वासोश्वास गति आ गति करने लगा । फिर उसने मणिधौत जल उसके सारे शरीर पर छिड़का और कुछ उसके मुँह में भी डाला । ऐसा करने से मलयासुन्दरी को धीरे - धीरे होश आया। वह कुछ देर बाद महाबल के आनन्द के साथ बैठी हो गयी। अपने पास महाबल को बैठा देख उसके हर्ष का पार न रहा । वह एकदम उससे भेट पड़ी और हर्ष के आँसु बहाती हुई बोल उठी- प्रियतम ! आप उस अन्धकूएँ से किस तरह निकले ?

महाबल - ''प्रिये ! जब राजा ने मेरे मँचकी रस्सी काट दी थी तब मैं मँचसहित वापिस कुएँ में गिर पड़ा था । मंचिका पर बैठा होने के कारण मुझे

विशेष चोट न लगी । जिसने अपनी मणि से कल रात को हमारे मिलन समय प्रकाश किया था वह सर्प भी उस कुएँ में ही था । वह फिर से निकला तब मैंने उसके मणिप्रकाश में कुएँ के चारों तरफ देखा । जिस जगह वह सर्प बैठा था ; उसी जगह मैंने एक द्वार देखा । परन्तु उस पर एक शिला लगायी हुई थी । दरवाजा होने की शंका से मैंने उस शिला को दूसरी तरफ खींच लिया । द्वार खुल गया और वह सर्प धीरे – धीरे उसके अन्दर चलने लगा । मैंने भी साहसकर उस द्वार में प्रवेश किया । वह सर्प रात में मशाल धारी के समान मेरे आगे – आगे चल पड़ा । मणि के प्रकाश से मुझे उस गुफा में बड़ी सहाय मिली । मैंने यह निश्चय किया कि यह सुरंग किसी चोर की बनायी हुई होनी चाहिएँ । और इस कुएँ से बाहर निकलने का इसका द्वार भी अवश्य होना चाहिए । इन्हीं विचारों मैं कुछ दूर जब आगे गया; तब अकस्मात् वह साँप न जाने किस तरफ गुम हो जाने से सुरंग में अन्धकार छा गया। परन्तु मैं भी फिर साहस धारण किये जन्मांध के समान उस घोर अन्धकार में आगे ही बढ़ता गया। इसी तरह चलते हुए मैं एक शिला के साथ टकरा गया । उस शिला पर जोर के साथ लात मारने से सुरंग का दरवाजा खुल गया । जिस तरह गर्भाशय में से प्राणी बाहर निकलता है उसी प्रकार मैं उस गुफा से बाहर निकला । फिर मैंने उस साँप की घसीट देखी । मैं उसके अनुसार कुछ दूर तक गया तो वह सर्प मुझे एक शिला पर कुण्डली लगाये बैठा मालूम हुआ । नागदमनी विद्याद्वारा मैंने उस सर्प को वश किया और अचिंत्य प्रभाववाला उसके मस्तिष्क से वह मणिग्रहण किया । पहाड़ से उतरनेवाली नदी के नजदीक श्मशान भूमि में सुरंगद्वार होने से मुझे विश्वास होता है कि वह अवश्य ही किसी चोर का बनाया हुआ गुप्त स्थान है । परन्तु यह भी मालूम होता है कि उस गुफा में बहुत दिनों से किसी मनुष्य का आना – जाना न होने के कारण वह चोर शायद मर गया होगा । उस सुरंग द्वार को मैं फिर उसी पत्थर से ढक कर यहाँ आया हूँ।

यह राजा मुझ पर अनर्थ और अन्याय करेगा यह जानते हुए भी तेरे विरह को सहन करने में असमर्थ होकर शहर में आकर मैंने पटह बजता सुना । अतः

उसका कारण पूछने पर मालूम हुआ कि तुम्हें साँपने डस लिया है । इसी कारण मैं राजपुरुषों के साथ राजा के पास आया और उसकी सम्मति से अपने साथ लाये हुए इस प्रभाविक मणि से मैंने तुम्हें इस समय जीवित किया है । प्रिये ! अब तुम जरा भी चिंता न रखना । मैंने राजा से खुशी पूर्वक तुम्हें अपने साथ ले जाने का वचन ले लिया है । इससे मुझे विश्वास है कि अब तुम्हें वह मेरे स्वाधीन कर देगा। यह बात सुन मलयासुन्दरी अत्यंत खुश हुई ।

महाबल ने अब राजा को अन्दर बुला लिया और कहा – ''राजन् ! देखिये, मैंने इस सुन्दरी को बिल्कुल अच्छा कर दिया । मलयासुन्दरी को अपने पति के साथ अच्छी अवस्था में बैठी बात करती देख राजा प्रेमावेश से पराधीन हो मस्तक हिलाकर बोला – अहा हा ! जिसके जीवन की आशा न रही थी। उसे हमारे सुख के साथ तुमने जीवित दान दिया है । धन्य है तुम्हारे विद्या सामर्थ्य को । सत्पुरुष ! तुम्हारा नाम क्या है ? महाबल बोला – राजन् ! मेरा नाम सिद्धराज है। राजा बोला सिद्धराज ! कल से इस स्त्री ने भोजन नहीं किया अतः इसे जो रुचे सो तुम भोजन कराओ ।

राजा की आज्ञा होते ही राजसेवकों ने तमाम सामग्री ला रक्खी । महाबल ने मलयासुन्दरी को भोजन कराया । सिद्धराज – राजन् ! अब आप मुझे आज्ञा दें । अपने वचन को पालन करें । मैं अपनी स्त्री को साथ लेकर अपने देश को जाऊँ । राजा ने इस बात का कुछ भी उत्तर न दिया । उसके मौन का आशय समझ नगर के प्रधान नागरिकों ने भी उसे खूब समझाया । महाराज ! अब यह इसकी स्त्री इसे दे देनी चाहिए । अपने वचन का पालनकर इन बेचारे दुःखित दंपती को सुखी करना चाहिए ।

विषयान्ध राजा को नगर निवासियों की बातें बिल्कुल न सुहाती थी । वह हित शिक्षा की बातें सुन उल्टा मन ही मन उन पर क्रोधित होता था । कुछ देर सोचकर वह बोला – सिद्धराज! तुमने एककाम हमारा और भी करना मंजूर किया हुआ है । वह कार्य सिर्फ यही है ''मेरे मस्तक में सदा दर्द हुआ करता है'' शान्ति नहीं मिलती । वैद्यों का कथन है यदि कोई कभी उत्तम लक्षणवाला पुरुष मिल

जाय, तो उसे चिता में जीवित को जलाकर और उस चिता की राख मस्तक पर लगायी जाय तो यह दर्द मिट सकता है ।

ये शब्द सुनकर महाबल विचार में पड़ गया । सचमुच यह राजा मलयासुन्दरी पर आसक्त है और मुझे मारना चाहता है । इसीलिए इस दुष्ट आशय से इसने मुझसे पहले एक कार्य कराने का वचन ले लिया है । इसने मुझे खूब फसाया । अगर मंजूर किया हुआ मैं इसका यह कार्य न करुँ तो यह मलयासुन्दरी को कदापि मुझे नहीं देगा और इधर यह कार्य भी मृत्यु के मुख में गये बिना नहीं हो सकता । कुछ सोचकर धैर्य धारणकर वह बोला – राजन्! इस औषधि के सम्बन्ध में आपको कुछ भी चिंता न करनी चाहिए । यद्यपि यह औषधि प्राप्त करना बड़ा कठिन काम है तथापि मैं आपको यह दवा ला दूँगा । आप यह कार्य होने पर मेरी स्त्री को मुझे सौंप देना ।

दुष्ट परिणामवाला राजा कुछ हँस कर बोला – परोपकारी सिद्धराज ! यह आप क्या कहते हैं ? क्या मेरे वचन पर विश्वास नहीं ? यह कार्य करने पर मैं तुरंत ही आपकी स्त्री को आपके सुपूर्द कर दूँगा । महाबल बोला – राजन् ! उत्तम लक्षणवाला पुरुष जल मरने के लिए और कहाँ मिल सकता है ? मैं खुद ही चित्ता में प्रवेशकर अपने मृतक की राख आपको ला दूँगा । आप श्मशान भूमि में बहुत – सी लकड़ियें भिजवा दें । और चिता तैयार करावें । महाबल की ये बातें सुन कंदर्प को बड़ी खुशी हुई । और उसने अनेक गाड़ियाँ भरकर लकड़ियाँ श्मशान भूमि में भिजवा दी । यह बात नगर में पसरने से नागरिक लोगों में कोलाहल मच गया । वे आपस में बोलने लगे राजा का कितना अन्याय है ? बेचारे परदेशी पुरुष को जीवित जलाने का आग्रह कर रहा है । क्या कभी मनुष्य की राख लगाने से भी सिर के दर्द मिटे हैं ?

महाबल कुमार अन्तिम अवस्था का वेष धारणकर संध्या समय श्मशान भूमि में आया। अनेक राजसुभट उसके चारों तरफ खड़े थे । दया दुःख और आश्चर्य से हजारों मनुष्य एकत्रित हो इस दुर्घटना को देख रहे थे । मलयासुन्दरी को भी यह बात मालूम हो गयी अतः उसे बड़ा दुःख हुआ । वह अपने आपको

धिक्कारने लगी और उसने यह प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक मैं अपने प्राणप्रिय पतिदेव के दर्शन न करुँगी तब तक अन्न जल ग्रहण न करुँगी । महाबल का सौन्दर्य तेज और साहस देख उस पर प्रसन्न हुए प्रजा के अनेक प्रधान पुरुषों ने दुःखित हो राजा के पास जाकर प्रार्थना की – ''राजन् ! यह महान् अन्याय हो रहा है'' राख के बहाने से ऐसे निरपराधी परोपकारी उत्तम पुरुष को पशु के समान मार डालना यह बात किसी तरह भी योग्य नहीं है । ''ऐसा अन्याय करने की अपेक्षा उसे जीवित ही अपने देश को जाने देने की आज्ञा देना विशेष योग्य है ।'' राजाबोला – ''प्रजाजनो ! इस पुरुष के जीवित रहते हुए यह स्त्री तो मेरे सन्मुख भी नहीं देखती। और इस स्त्री के बिना मेरे चित्त को शांति नहीं होती। मैं इस तरह दोनों तरफ से संकट में पड़ा हूँ। इसलिए मेरे पास तुम्हारे लिये कोई उत्तर नहीं । राजा का जीवा नामक प्रधान बोला – भाइयो ! इस बात में तुम्हें पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है । अगर सिद्धराज मरता है तो मरने दो । क्या उसके लिए हम राजा को संकट में पड़ा देख सकते हैं ? मंत्री के शब्द सुन निराश होकर वे वापिस लौट आये । परन्तु राजा और मंत्री की ओर से उनके हृदय में घृणा और तिरस्कार पैदा हो गया।

श्मशान भूमि में एक स्थान पसन्दकर महाबल ने राजपुरुषों को वहाँ पर चिता बनाने की आज्ञा दी । उन्होंने शीघ्र ही बहुत – सी लकड़ियें लगाकर खूब ऊँची चिता रच दी । महाबल चिता के बीच में बैठ गया और उसने अपने चारों और खूब लकड़ियाँ लगाने के लिये सूचना कर दी । उस समय चिता के चारों तरफ राजपुरुष इस आशय से कि वह चिता से निकल कर कहीं भाग न जाय सक्त पहरा दे रहे थे । चिता ठीक हो जाने पर उसमें अग्नि चेतायी गई । यह देख लोगों के हृदय में भी दुःखाग्नि सिलग उठी । चिता खूब जल उठने पर भी उसके अन्दर से महाबल का किसीने सीत्कार तक भी न सुना । इससे लोग उसके अनन्य धैर्य की प्रशंसा करने लगे । जब चिता संपूर्ण जल चुकी तब राजपुरुषों ने वापिस आकर राजा को महाबल के चिता में भस्म होने का सारा वृत्तान्त कह सुनाया । उस रात को कंदर्प और मंत्री जीवा के सिवा प्रायः नगर के तमाम लोगों को सुख से निद्रा न आयी ।

प्रातःकाल होने पर जब शहर में वहाँ के लोग महाबल के धैर्य और राजा के अन्याय की परस्पर बातें कर रहे थे तब लोगों ने अकस्मात् सिर पर छोटी सी गठरी रखे हुए श्मशानभूमि की तरफ से आते हुए सिद्धराज को देखा । उसे जीवित आते देख जनता के हृदय में आश्चर्य और आनन्द का पार न रहा । आश्चर्य चकित हो वे बोल उठे धैर्यवान सत्पुरुष ! आप किस तरह वापिस आये ? और यह सिर पर गठड़ी में क्या लाये हो । राजा के लिए उस चिता की राख लेकर आया हूँ । इतना ही कहकर महाबल राजमहल की तरफ चला गया । राजसभा में राजा के समक्ष राख की गठरी रखकर सिद्धपुरुष बोला – ''राजन् ! आपकी दुर्लभ में दुर्लभ औषधी यह उस चिता की राख है । अब आप अपनी इच्छा के अनुसार जितनी चाहिए उतनी राख अपने मस्तक में डालें जिससे आपके मस्तक की व्याधि शान्त हो । साश्चर्य राजा बोला – सिद्धराज ! तू चिताग्नि में दग्ध न हुआ ? सिद्धराज ने समयानुसार विचारकर उत्तर दिया – महाराज ! मैं चिता में जलकर भस्मीभूत हो गया था परन्तु मेरे सत्व के प्रभाव से वहाँ पर देव आ पहुँचे और उन्होंने चिता को अमृत से सिंचन किया । इससे मैं फिर सजीवित हो आया हूँ । इसलिए महाराज ! आप इस रक्षा को ग्रहण करें, और अपने बोले हुए वचनों का पालनकर मेरी स्त्री मेरे सूपूर्द करें । यह सुन राजा विचारने लगा – सचमुच ही यह कोई महाधूर्त है । सुभटों की नजर बचाकर मालूम होता है यह चिता से बाहर निकल गया है । सिद्धराज के गुणानुरागी या कंदर्प की अनीति से राजद्रोही बने मनुष्यों ने मलयासुन्दरी को राख लेकर सिद्धपुरुष के जीवित आने की खबर दी । यह खबर पाते ही मलयासुन्दरी इस तरह विकसीत हो गयी । जिस तरह रातभर की मुरझाई हुई कमलिनी प्रातःकाल सूर्य के समागम से विकसीत हो जाती है । सिद्धराज राजसभा में राख की गठरी रख मिलने के लिए उत्कंठित हुई मलयासुन्दरी के पास पहुँचा । उसे देख मलयासुन्दरी हर्ष से गद्‌गद् हो उठी ! वह बोली – प्राणनाथ ! चिता में प्रवेश करने पर भी आप किस तरह वापिस आ गये। महाबल प्रिये ! मैं उस अन्धकूप में से जिस सुरंग के रास्ते से बाहर निकला था उसी सुरंग के मुखद्वार पर मैंने चारों तरफ बड़ी चिता लगवायी थी और बीच में अपने बैठने के लिए जगह खाली

रखवाई थी । चिता में प्रवेश किये बाद जब वह सुलगायी गयी थी तब मैं सुरंग द्वार की शिला दूरकर उसके अन्दर चला गया और अन्दर से फिर मैंने द्वार बंद कर लिया । जब चिता जलकर ठंडी हो गयी तब पिछली रात में मैं धीरे - धीरे द्वार के पास आया और उसे खोलकर बाहर निकला उस समय वहाँ पर कोई भी मनुष्य न था । इसलिए राख की गठरी बाँध और शेषरात पूरीकर प्रातःकाल होते ही मैं यहाँ आ गया ।

इस प्रकार परस्पर जब वे बातें कर रहे थे तब राजा उनके पास आकर बोला - अरे भाई! सिद्धराज ! इस बेचारी को कुछ भोजन कराओ । इसने कल से बिल्कुल अन्न जल नहीं लियां सिद्धराज ने उसे भोजन कराया और फिर राजा से कहा..... महाराज ! मैंने आपका कार्य कर दिया है अब आप अपना वचन पालन कीजिए और अपनी स्त्री के साथ मुझे अपने देश जाने की आज्ञा दीजिए। यह सुन राजा घबराया, उसे कुछ भी उत्तर देते न बना । वह मलयासुन्दरी को कदापि महाबल को देना न चाहता था परन्तु इस समय एकाएक वह साफ इन्कार भी न कर सकता था । इसलिए उसने अपने पास रहे हुए प्रधान मंत्री जीवा के सन्मुख देख सहज में इशारा किया । मंत्री ने कुछ देर विचार कर राजा की इच्छानुसार महाबल से कहा सिद्धराज ! आपने राजा का यह काम कर हम पर बड़ा उपकार किया है । आपके धैर्य और परोपकार की भावना को हम धन्यवाद देते है । परन्तु सिर्फ एक कार्य आप राजा का और कर दें और फिर इच्छानुसार अपने देश को चले जाइए ।

इस शहर के पास जो छिन्न टंक नामक पहाड़ है उसमें एक विषम शिखर के पिछले हिस्से में निरंतर फल देनेवाला एक आम्रवृक्ष है । पूर्व दिशा की ओर से उस शिखर की चोटी पर चढ़ा जा सकता है । क्योंकि अन्य किसी तरफ से इतने ऊंचे चढ़ने का कोई मार्ग नहीं है । उस शिखर की चोटी से नीचे की तरफ उस विषम खीण में वह आम्रवृक्ष दीखता है । उसे लक्ष्य कर वहाँ से कूदना और आम्र के पके फल लेकर फिर उस विषम मार्ग से वापिस आकर वे फल राजा को देना । सत्पुरुष ! यह काम यद्यपि बड़ा कठिन है तथापि तुम्हारे जैसे साहसी

पुरुषों के लिए यह बनने योग्य है । हमारे राजा को सदैव पित्त की पीड़ा रहती है और वैद्यों का कथन है कि आम्रफल के खाने से वह पित्त पीड़ा शान्त होगी।

प्रधान के ये शब्द सुनकर कुमार विचारने लगा – यह आदेश तो सर्वथा अति दुष्कर है। इसमें तो मेरी बुद्धि भी कुछ काम नहीं करती । इस कार्य में मेरे मृत्यु की संभावना है । तथापि किसी विधियोग से यदि यह कठिन कार्य मुझसे हो गया तो मुझे जीवन और स्त्री दोनों की प्राप्ति होगी । इसलिए इस कार्य को भी करने का मुझे प्रयत्न तो करना चाहिए । मेरे कार्यों से और राजा की अनीति सें यहाँ की जनता का मुझ पर पूर्ण प्रेम है । यह भी मेरे विजय का चिन्ह है । इत्यादि विचारकर साहस धारणकर महाबल बोला – मंत्रीवर ! मैं आप का यह *कठिन कार्य भी अगर कर दूँ तो आप बार – बार अपने वचनों से अब न फिरना* । यदि आप फिर भी वैसा ही करेंगे तो आप लोगों के हक में अच्छा परिणाम न होगा । इतना कहकर महाबल अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ ।

संसार में साहस के द्वारा कठिन से कठिन कार्य सिद्ध होते हैं । साहस में प्रबल प्रयत्न, उत्साह और अतुल पराक्रम है । साहसियों का अनेक मनुष्य आश्रय लेते हैं । इसलिए साहस में अगाध शक्ति है ।

इस बात का समाचार मलयासुन्दरी को भी मिल चुका था । इसलिए उसके हृदय में अति दुःख होना स्वाभाविक ही था । उसकी आँखों से अश्रु टपकते हुए देखकर भी महाबल धैर्य धारणकर छिन्न टंक नामक पहाड़ के संमुख चल पड़ा । साहसी लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने में विलम्ब नहीं किया करते। इस समय भी उसके प्रेम और सहानुभूति से महाबल के पीछे संख्या बद्ध मनुष्य पहाड़ की तरफ जा रहे थे । क्योंकि स्वामी प्रेम की अपेक्षा संसार में सदैव गुणों पर अधिक प्रेम होता है । महाबल मार्ग दर्शक राजपुरुषों के साथ उस विषम पर्वत पर चढ़ गया । इस समय भी जनता के हृदय में शोक सन्ताप और राजा तथा जीवा मंत्री के हृदय में आनंद छा रहा था । शिखर की तीक्ष्ण चोटी पर चढ़कर राजपुरुषों ने बहुत दूरी पर नीचे विषम खीण में रहा हुआ इशारे से एक आमतरु बतलाया । महाबल ने उसको लक्ष्यकर पंचपरमेष्ठि मंत्र को स्मरणकर

और इस जिन्दगी में मैंने यदि कुछ न्यायपूर्वक शुभ कर्म उपार्जन किया हो तो उसके प्रभाव से मेरा यह साहस सफल हो, यों कहकर जनता के हाहारव करते हुए पर्वत शिखर से झंपापात कर दिया । वह देखते ही देखते मनुष्यों की नजर से अदृश्य हो गया । राजपुरुषों ने यह समाचार राजा को आ सुनाया । राजा और मंत्री ने निश्चय कर लिया था कि बस अबके वह अवश्य ही खतम हो जायगा ।

प्रातःकाल होते ही पके हुए आम्रफलों का करंडिया सिर पर रक्खे हुए प्रसन्नता धारण किये महाबल कुमार को जब नागरिक लोगों ने आते हुए देखा तब उनके हर्ष और विस्मय का पार न रहा । वे एकदम आश्चर्य में पड़कर विचारने लगे । अहो ! कैसी विचित्रता है ! यह कोई दिव्य पुरुष है या कोई विद्याधर ? ऐसे – ऐसे मरणान्त संकटों में भी जाकर यह राजा का कार्य सिद्ध कर लाता है। सचमुच ही इसका सिद्धराज नाम सार्थक ही है । मालूम होता है इसके कोई देवता वश में है । इसी कारण यह उसकी सहाय से असाध्य कार्यों को भी सिद्ध कर लाता है । इत्यादि विचार करते हुए वे हर्षित हो दौड़ते हुए उसके पास आये और बोले – सत्पुरुष सिद्धराज ! आप किस तरह वापिस आये ? आपके शरीर को कुछ इजा तो न पहुँची ? सिद्धराज बोला – महानुभावो! आप मुझ से इस समय कोई सवाल न कीजिए । कुछ देर पश्चात् आपको सब कुछ मालूम हो जायगा। इस तरह उत्तर देते हुए वह अनेक मनुष्यों के साथ राजसभा में आया। बहुत से मनुष्यों के साथ महाबल को राजसभा में आया देख राजा का चेहरा श्याम पड़ गया । वह उसके सामर्थ्य को देखकर कुछ भयभीत – सा हो गया, इसलिए उसने महाबल का कुछ भी आदर सत्कार न किया । परन्तु राजा को मौन देख जीवा मंत्री बोला – सिद्ध पुरुष ! ऐसा दुष्कर कार्यकर आप बहुत ही जल्दी आ गये । ! कहिए, आपके शरीर में तो कुशलता है न ?

जी हाँ मेरा शरीर कुशल है, कहते हुए महाबल ने अपने सिरसे आम के फलों का करंडिया उतारा । और जहाँ राजा व मंत्री बैठे थे वहाँ ही उनके पास वह करंडिया रख दिया । महाबल बोला– राजन् ! इन पके हुए आम्रफलों को खाकर आप अपने पित्त रोगों को शान्त करो । उसके गंभीर शब्द सुन और ऐसा

विषम कार्य करने का सामर्थ्य देख सभासदों के दिल में भी कुछ भीति पैदा हुई। इस समय तमाम राजसभा मौनावलंबी हो महाबल के अतुल सामर्थ्य का विचार कर रही थी। महाबल ने करंडिये का मुँह खोलकर उसमें से दो चार सुन्दर फल ले राजा से कहा – ''आप इसमें के फल खाइए; मैं अपनी स्त्री के पास मिल आता हूँ, यों कह वह दुःखित हुई मलया सुन्दरी के पास आया। महाबल को पास आया देख मलयासुन्दरी पूर्व के समान ही हर्षित हो उससे भेट पड़ी। वह प्रसन्न मुख से बोली, प्राण प्यारे ! ऐसे कठिन कार्य में आपको किस तरह सफलता मिली ?

महाबल – ''प्यारी ! तुम्हें याद होगा पहले जो योगी मेरी सहाय से सुवर्ण पुरुष सिद्ध करते हुए अग्निकुण्ड में गिरकर मर गया था, वह मरकर व्यंतर देव हो गया था। हमारे सद्भाग्य से वह इस आम्र वृक्ष पर ही रहता है। पर्वत शिखर की चोटी से झंपापात करते हुए उसने मुझे देखा और मेरे अंतिम शब्द सुनें। उस व्यंतर देव ने अपने ज्ञान से मुझे पहचान लिया। जिस वक्त झंपापात करके मैं नीचे आम्र वृक्ष के पास पहुँचा उस वक्त उसने मुझे नीचे न पड़ने देकर अधर ही धारण कर लिया। उसने प्रत्यक्ष होकर मुझसे कहा – परोपकारी राजकुमार ! आप जरा भी भीति न करना। पृथ्वीस्थानपुर के श्मशान में उत्तर साधक बनकर तुमने मुझ पर उपकार किया है; परन्तु मेरी किसी भूल के कारण सुवर्ण पुरुष सिद्ध न हुआ। मैं वहाँ से मरकर व्यंतर देव की योनि में पैदा हुआ हूँ। इस समय मुझे तुम्हारे उपकार का बदला देने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है। इत्यादि उसने मुझे अपना सर्व वृत्तान्त सुनाया। मैं निर्भय होकर उसके पास ही रहा। *सचमुच ही किसी पर किया हुआ उपकार निरर्थक नही जाता।* प्रातःकाल होने पर व्यंतर देव ने कहा ''राजकुमार ! आप मेरे अतिथी हैं। घर आये अतिथि का सन्मान करना ही चाहिए। इसलिए आप फरमायें मैं आपका कौन – सा इष्ट कार्य करके आपका स्वागत करुँ ? मैंने कहा कंदर्प राजा मुझे जो कार्य बतलावे मैं उस कार्य को करने में शक्तिमान बनूँ आप मुझे इस तरह की सहाय करें।

व्यंतर – कंदर्प राजा तो आपको मारना चाहता है। इसलिए आपकी

सम्मति हो तो मैं उसे पूरी शिक्षा कर दूँ। मैंने कहा आपकी सहायता से मैं उसका कार्य पूर्ण करुँ तथापि वह अपने दुष्ट अभिप्राय से बाज़ न आवे तो फिर आपको जो उचित मालूम दे सो करें। व्यंतर देव ने मेरी बात मंजूर करली और कहा यह तो मैं करुँगा ही परन्तु और भी आपको कभी कोई असाध्य कार्य करना पड़े तो आप अवश्य ही मुझे याद करें। याद करते ही सेवक के समान मैं आपकी सेवा में आकर आपकी इच्छानुसार सहाय करुँगा। यों कहकर वह किसी जगह से एक करंडिया ले आया और उसमें पके हुए सुन्दर फल भरकर करंडिये सहित वह मुझे इस शहर के उद्यान में ले आया। "कुमार ! इस करंडिये को लेकर तुम राजा के पास चलो; मैं भी अदृश्य होकर तुम्हारे साथ ही चलता हूँ और वहाँ पर जैसा उचित होगा वैसा किया जायगा, यों कहकर वह अदृश्य हो गया। मैं फलों का करंडिया राजसभा में रखकर इस समय तुम्हारे पास आया हूँ। प्रिये ! अब घबराने की आवश्यकता नहीं है। मुझे विश्वास है इस देव की सहाय से अब हमारे शीघ्र ही संकट दूर होंगे।"

महाबल जिस समय अपनी प्रिया के साथ अपने दुःख - सुख की बातें कर रहा था; उस समय राजसभा में रखे हुए उस आम्रफलों के करंडिये में से यह भयानक शब्द निकलने लगा "राजा को खाऊँ या मंत्री को, करंडिये से निकलते हुए बार - बार इस भयानक शब्द को सुनकर राजा भयभ्रान्त हो गया और वह लोगों की तरफ देखकर बोला - सचमुच ही यह सिद्धराज कोई चमत्कारिक पुरुष मालूम होता है; अन्यथा ऐसे दुष्कर कार्य भी लीलामात्र से किस तरह कर आवे? संभव है हमारा सर्वनाश करने के लिए वह इस करंडिये में आम्रफलों के बहाने कोई विभीषिका ले आया है। इस प्रकार राजा को भयभीत हुआ देख जीवा मंत्री हँसते हुए बोल उठा- महाराज ! इस तरह डरने से काम न चलेगा। ऐसे तो बहुत ही धूर्त फिरते हैं। क्या हम इससे डर जायेंगे ? यदि ऐसी छोटी - छोटी बातों से भयभीत होने लगें तब फिर राज्यकार्य किस तरह चल सकता है? इस तरह बोलते हुए प्रधान ने उठकर करंडिये की तरफ हाथ लंबाया। राजा ने उसे बहुत मना किया कि मंत्री ! ठहरो इस कार्य में हमें बल दिखाने की जरुरत नहीं है। तुम उस करंडिये के पास न जाओ। परन्तु "विनाशकाले

विपरीतबुद्धिः'' इस उक्ति के अनुसार राजा के मना करने पर भी मंत्री करंडिये के पास आकर जब उसका ढक्कन उठाने लगा तब फिरसे मृत्यु की दुंदुभी के समान वही शब्द सुनायी दिया ''राजा को खाऊँ या मंत्री को'' इस भयानक शब्द का भी अनादर कर करंडिया उघाड़कर आम्रफल लेने की इच्छा से मंत्री ने जब उसके अन्दर हाथ डाला उस समय यमराज की जीभ के समान उस करंडिये से भयंकर अग्निज्वाला प्रकटी । इस भयंकर अग्निज्वाला में जीवा मंत्री पतंग के समान भस्मसात् हो गया । वह अग्निज्वाला इतने से ही शान्त न होकर उसने विकराल रूप धारण कर लिया । देखते ही देखते उसने ऊपर बढ़कर सभामंडप को भी भस्मीभूत कर दिया । सभा में भगदड़ मच गयी । राजा भयभीत हो काँपने लगा। मृत्यु के भय से उसने शीघ्र ही सिद्धराज को बुलवाया । इस समाचार से शहर भर में हलचल – सी मच गयी ।

जीवा मंत्री के मरने, करंडिये में से निकलते हुए भयानक शब्द, और अग्निकांड की दुर्घटना सुनाकर राजा ने नम्रता पूर्वक महाबल से कहा – हे सत्पुरुष ! हम पर कृपाकर यह उपद्रव जल्दी शान्त करो । राजा की नम्र प्रार्थना से एवं उस अग्नि से किसी निर्दोष प्राणी के जानमाल को नुकसान न पहुँचे यह विचारकर सिद्धराज ने पानी मंगाकर मंत्र पढ़ उस करंडिये पर छिड़का । इससे महाबल की इच्छा के अधीन हुए, उस देव ने अग्नि शान्त कर दिया । महाबल ने उस करंडिये पर फिर से ढक्कन ढक दिया । फिर राजसभा में पहले – सी ही शान्ति हो गयी । परन्तु किसी भी मनुष्य की उस करंडिये के पास जाने की हिम्मत न चली । सबके दिल में यही विचार होता था कि इस भयंकर करंडिये को यहाँ से उठवा दिया जाय । लोगों के यह विचार करते हुए महाबल ने फिर से उस करंडिये को उघाड़ा और उसमें से दो चार सुन्दर फल निकाल वह राजा को देने लगा । परन्तु भयभीत हुए राजा ने उन फलों को लेने से इन्कार कर दिया । महाबल ने वे ही फल दूसरे मनुष्य के हाथ में देकर राजा को यह निश्चय करा दिया कि अब उन फलों में किसी तरह का भय नहीं है । फिर अन्य पुरुष के द्वारा राजा ने उन फलों को ग्रहण किया । मंत्री की मृत्यु से राजा को इतना दुःख हुआ मानों उसकी दहिनी भुजा टूट गयी हो । परन्तु उसकी मृत्यु में राजा और मंत्री का ही

अन्याय होने के कारण उसके शोक में अन्य मनुष्यों की तरफ से सहानुभूति तक भी न मिली । राजा ने उसी वक्त जीवा मंत्री के पुत्र को मंत्री का स्थान दे दिया।

कंदर्प – ''सिद्धराज ! तुम इस करंडिये में ऐसी क्या भयानक चीज़ लाये थे, जिसने देखते ही देखते जरासी देर में अचानक हमारे मंत्री को भस्मीभूत कर डाला ।

सिद्ध – ''राजन् ! यह तो आपके अन्याय वृक्ष का एक अंकूरा ही पैदा हुआ है, इसके बाद अब उसमें पुष्प और फलों का लगना बाकी है और उन फलों का स्वादानुभव आपको ही करना होगा । जो राजा न्यायपूर्वक प्रजापालन करते हैं वे कदापि दुःखित नहीं होते, परन्तु दुनिया में कीर्ति और अनेक प्रकार की संपत्ति को प्राप्त करते हैं । राजन् ! अब भी मेरी स्त्री सहित मुझे विदाकर आप सुख से राज्यपालन कर सकते हैं । अन्यथा इसका परिणाम आपके लिये भयंकर होगा। यह सुनकर सामन्तादि राजमान्य पुरुषोंने राजा को आग्रह पूर्वक समझाया महाराज इस सत्पुरुष सिद्धराज का वचन मानो और इसकी स्त्री देकर इसे यहाँ से बिदा करो, ऐसे समर्थ पुरुष को अन्याय के द्वारा प्रकोपित करना राज्य के लिए हितकर नहीं है ।

मलयासुन्दरी पर अत्यन्त आसक्ति रखने वाला कंदर्प सोचने लगा – यह सिद्धराज सचमुच ही सामर्थ्यवान् पुरुष है एवं मंत्रादि भी जानता है इसी कारण मैं जो कार्य बतलाता हूँ वह लीलामात्र से कर लाता है । अब कौन – सा ऐसा दुष्कर कार्य बतलाऊँ जिसके करने से यह मृत्यु को प्राप्त करे और मैं सदा के लिए मलयासुन्दरी को प्राप्त करुँ ।

जिस वक्त राजा पूर्वोक्त विचार कर रहा था उस वक्त अकस्मात् राजा की अश्वशाला में आग लग गई । देखते ही देखते वह आग इतना जोर पकड़ गयी कि अश्वशाला को जला उसकी भयंकर ज्वालायें आकाश को स्पर्श करने लगी । यह देख राजा बोला – परोपकारी सिद्धराज ! बस अब मेरा यही एक कार्य कर दो । इस जलती हुई अश्वशाला में मेरा अश्वरत्न जल रहा है उसे बाहर निकाल आओ । फिर मैं तुम्हारी स्त्री को तुम्हें सौंपकर विदा कर दूँगा ।

यह सुन जनता में खलबली मच गयी । वे एक दूसरे की तरफ इशारा कर कहने लगे । देखो, इतना होने पर भी राजा अपना खराब विचार नहीं छोड़ता। मालूम होता है इस चमत्कारी पुरुष को क्रोधित कर राजा इसीसे अपना सर्वनाश करायेगा । सिद्ध पुरुष की सहनशीलता और राजा की निर्लज्जता पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी है । क्या अभी तक भी इसके पापों का घड़ा नहीं भरा, ? महाबलकुमार के मन में भी विचार परिवर्तन हो गया था । वह अब दुःखित होकर पापी को किसी भी तरह उसके पापों का प्रायश्चित्त देना चाहता था । अतः व्यंतर देव को स्मरणकर साहस पूर्वक वह उस अग्नि में प्रवेशकर गया । इस समय राजा को बड़ा संतोष हुआ, परन्तु प्रजा में अत्यंत शोक छा गया । तथापि वह हर्ष शोक बहुत देर तक न टिक सका । थोड़ी ही देर में सिद्धराज अग्नि से बाहर निकल आया । वह घोड़े पर सवार था । उसके चेहरे पर इस समय अधिक तेज झलक रहा था । दिव्य वस्त्र और सुन्दर कीमती अलंकारो से उसका शरीर सुशोभित था । वह आते ही आश्चर्य पाये हुए लोगों के सामने बोला – महाराज! और अन्य सज्जनो ! इस समय जो अग्नि प्रज्वलित हो रहा है यह बहुत ही पवित्र है । एवं जिस जगह यह दिव्य अग्नि प्रगट हुआ है वह जगह भी मनोवांच्छित फल के देनेवाली है । उस जगह जाने से मेरे जैसी दिव्य स्थिति प्राप्त होती है। और एक सुन्दर घोड़ा मिलता है । अब से हम दोनों को किसी समय भी रोग, जरा, या मृत्यु पराभव न कर सकेगी । यदि इस समय कोई भी मनुष्य अपना इच्छित कार्य मन में धारण कर इस अग्नि में प्रवेश करेगा तो वह मेरे ही समान दिव्य रूप धारी होकर निकलेगा ।

सिद्धराज का बना हुआ प्रत्यक्ष दिव्य रूप देख वैसा ही बनने के अर्थी और मनोवांच्छित सुख के इच्छुक राजा आदि अनेक पुरुष अग्नि में प्रवेश करने के लिए तैयार हो गये । सिद्धराज बोला – सज्जनो ! आप जरा – सी देर धीरज रख्खें, यह दिव्य अग्नि सचमुच ही तीर्थभूमि सरीखा है इसलिए मैं पहले इसकी पूजा कर लूँ यों कहकर सिद्धराज ने घी प्रमुख अनेक द्रव्य पदार्थ मँगवायें और मंत्रोच्चार पूर्वक मंद पड़े हुए अग्नि में उन पदार्थो का होमकर उसे विशेष

प्रदीप्त किया । अग्नि पूजन हुए बाद पहले हम प्रवेश करते हैं इत्यादि कथन पूर्वक सिद्धराज की मायाजाल में भरमाये हुए राजा और मंत्री पुत्र ने इच्छित सुख प्राप्त करने के संकल्प से अग्नि में प्रवेश किया । राजा के समान प्रबल इच्छावाले अनेक राजपुरुष राजा के पीछे जाने लगे परन्तु राजा और मंत्री को वापिस आने दो फिर जाना यों कहकर सिद्धराज ने उन्हें वहाँ ही रोक लिया। महाबल के आदेश से वे सब वहाँ खड़े रहे क्योंकि उसके गुणों से महाबल पर तमाम प्रजा के हृदय में पूर्ण प्रेम और भक्तिभाव था । राजा और मंत्री को बहुत देर हो गयी परंतु वे वापिस न लौटे, तब राजपुरुष बोले - क्या बात है ? इतनी देर होने पर भी महाराज और मंत्रीजी वापिस नहीं आये?

महाबल - क्या कभी अग्नि में गया हुआ भी कोई वापिस आया करता है ? मैं तो व्यन्तर देव की सहाय से अग्नि में न जलकर बाहर निकल आया हुँ। यह सुनकर जनता समझ गयी कि राजा और पुत्र सहित मंत्री के पाप का घड़ा फूट गया । सिद्धराज ने अच्छे उपाय से बदला लिया। उनके प्रत्यक्ष में अन्याय के कारण राजा आदि की मृत्यु के शोक में प्रजाकीय किसी भी मनुष्य ने शोक सहानुभूति न बतलायी ।

राजा की मृत्यु से समस्त राजकीय प्रधान पुरुष मिलकर विचार करने लगे कि अब राज्य की क्या व्यवस्था करनी चाहिए ? राजा के एक भी ऐसा लायक पुत्र नहीं जो राज्य की धुरा को धारण कर सके । अधिक जनता की सम्मति सिद्धराज को ही राज्य भार सौंपने की हुई । प्रजा बहुमत से बोली - सिद्धराज सब तरह से राज्य की धुरा धारण करने में समर्थ है । वह गुणवान तथा सामर्थ्यवान है इतना ही नहीं बल्कि देवता भी उसका सहायक है । ऐसा पुरुष राज्य के लिए मिलना मुश्किल है । प्रजा मत के साथ सबकी सहानुभूति होने से बड़े समारोह के साथ महाबल का राज्याभिषेक किया गया । मलयासुन्दरी पटरानी के पद पर आरुढ़ हुई । महासंकटो में पाला हुआ उसका शीलव्रत सफल हो गया । अब सदा के लिए उसका वियोग नष्ट हो गया । अपने दुःखों का अन्त कर महाबल भी सुख से प्रजा - पालन करने लगा । उसने अपने सद्‌गुणों और

न्याय निष्टता से प्रजा को विशेष रंजित व सुखी किया । अपने प्रचण्ड बाहूबल से शत्रुराजाओं को भी उसने थोड़े ही समय में वश कर लिया । यहाँ पर महाबल सिद्धराज के ही नाम से प्रसिद्ध हुआ ।



◆ *अनंतकाल पहले ज्ञानी भगवंतों ने, जो कुछ होने वाला है, वह सभी देखा हुआ है । उस होने वाले कार्य में तिल मात्र भी रद्दोबदल करने की क्षमता-शक्ति, होने वाले तीर्थंकरों में भी नहीं, यह है निश्चय के घर की बात। क्या होने वाला है? यह जिन्हें ध्यान में नहीं, उन्हें क्या करना । तब कहा गया है कि 'हमसे वही होगा जो ज्ञानियों ने देखा होगा ।' यह लक्ष्य बिन्दु निश्चित कर हर आत्मा को शुभ कार्य प्रिय लगते हैं, अतः 'अशुभ का त्याग शुभ में प्रवृत्ति' यह है व्यवहार के घर की बात।*

- जयानंद

स्वजन - मिलाप

इधर बलसार्थवाह देशान्तरों से व्यापार द्वारा बहुत - सा द्रव्य कमाकर, बड़ी ऋद्धि - सिद्धि के साथ इतने दिनों के बाद सागर तिलक बंदर पर आ पहुँचा। क्योंकि वह वहाँ का ही रहनेवाला था । देशावर से लाये हुए माल के भरे जहाजों को बंदरगाह पर ठहराकर पुराने रीतिरिवाज के अनुसार वह बहुत - सी उत्तम वस्तुओं की भेट लेकर राजसभा में सिद्धराज से मिलने आया। राजसभा में सिद्धराज के सन्मुख भेट रख, और नमस्कारकर वह हाथ जोड़कर खड़ा रहा। इस समय महारानी मलयासुन्दरी भी राजा महाबल के पास ही सभा में बैठी थी। उसे देखते ही भय से सार्थवाह का हृदय काँप गया। क्योंकि उसने मलयासुन्दरी की कदर्थना करने में कुछ भी बाकी न रखा था। भय से व्याकुल हुआ बलसार सार्थवाह किसी कार्य के बहाने से शीघ्र ही राजसभा से बाहर निकल अपने घर पहुँचा। वह घर आकर सोचने लगा - इस औरत को मैंने बर्बर द्वीप में ले जाकर बेच दिया था। यह किस तरह वहाँ से आयी होगी? और किस तरह इसने यहाँ आकर राजा से संबंध जोड़ा होगा ? मैंने जो इसकी कदर्थनायें की हैं यदि यह उन सब बातों को राजा से कह देगी तो अवश्य ही राजा मुझे प्राण दण्ड की शिक्षा देगा ।

इधर मलयासुन्दरी पुत्र वियोग से अत्यन्त दुःख पा रही थी। इसलिए ऐसे सुख में भी वह अपने पुत्र का हरण करनेवाले बलसार व्यापारी को क्यों कर भूल सकती थी ? बलसार के बाहर चले जाने पर उसने तुरन्त ही महाबल से कहा - स्वामिन् ! यही वह बलसार सार्थवाह है जिसने मुझे अत्यन्त कष्ट दिये और मेरे पुत्र को छीन लिया है। मलयासुन्दरी के वचन सुनते ही राजा के शरीर में क्रोधाग्नि व्याप्त हो गयी। वह बोला - इसी दुष्ट सार्थवाह ने निर्दोष और निष्कारण मेरी स्त्री की कदर्थना की है ? अरे सुभटों ! क्या देखते हो ? जल्दी जाओ। इस दुष्टात्मा बलसार को कुटुम्ब सहित बांधलाओ और इसका तमाम

माल जप्त करलो । राजा की आज्ञा होते ही सहकुटुम्ब बलसार को गिरफ़्तार कर लिया गया । और उसका तमाम माल भी जप्त किया गया। राजा सिद्धराज ने सार्थवाह को लड़का ला देने को कहा, परन्तु उसने कुछ भी उत्तर न दिया । राजा ने उसका अपराध मालूमकर उसे सहकुटुम्ब कैद कर लिया ।

कैद में पड़ा हुआ सार्थवाह विचार करता है - मेरे ही किये कर्म मुझे उदय आये हैं । इस राजा के पंजे से निकलना बिलकुल असंभवित मालूम होता है, तथापि एक उपाय है । यदि वह उपाय सफल हो गया तो मेरी जान माल की कुशलता का संभव है और वह उपाय यह कि इस राजा का कट्टर दुश्मन चंद्रावती नरेश वीरधवल है । उसके साथ मेरा विशेष परिचय भी है । वह राजा इस सिद्धराज का पराजयकर मुझे छुड़ा सकता है । इस राजा ने मेरी मिलकत जप्त कर ली है, तथापि अभी तक इसे मेरी गुप्त मिलकत का पता नहीं है । इसलिए उसमें से आठ लाख सुवर्ण मोहरें और द्वीपान्तर से लाये हुए लक्षणवाले आठ हाथी अपना छुटकारा पाने की एवज में चंद्रावती नरेश वीरधवल को भेजूँ तो ठीक हो । इस प्रकार संकल्प विकल्पकर कैद में रहते हुए भी अपने विश्वासपात्र सोमचंद्र नामक एक वणिक को गुप्त संकेत से उसने यह बात मालूम की। गुप्त खजाने में से आठ लाख सुवर्ण मोहरें ले वीरधवल राजा को अपनी सहायतार्थ बुलाने के लिए सोमचंद्र को चंद्रावती जाने की आज्ञा दी ।

सोमचंद्र बलसार की आज्ञानुसार आठ लाख सुवर्ण मुहरें ले वीरधवल राजा को बुलाने के लिए चल पड़ा । जब वह रास्ते में रौद्र अटवी में पहुँचा तब उसे चंद्रावती नरेश वीरधवल और पृथ्वी स्थानपुर के राजा सूरपाल अतुल सैन्य सहित वहाँ ही सन्मुख मिल गये ।

इन दोनों राजाओं को यह खबर मिली थी कि रौद्र अटवी में दूर्गतिलक नामक पहाड़ पर भीम नामक एक पल्लीपति रहता है, उसके पास मलयासुन्दरी है । यह खबर मिलते ही पुत्र - पुत्री के वियोगी दोनों राजाओंने अपने - अपने राज्य से प्रबल सैन्य ले भीम पल्लीपति को जीतकर मलयासुन्दरी को छुड़वाने के लिए चढाई की थी । दुर्जय पल्लीपति को तो उन्होंने प्रबल सैन्यबल से लीला

मात्र में जीत लिया; परन्तु तलाश करने पर भी यहाँ पर मलयासुन्दरी का पता न लगा। निराश होकर दोनों राजा अपने नगर को वापिस लौट रहे थे, इसी समय रास्ते में उन्हें सोमचंद्र जा मिला। उसने बलसार का कहा हुआ सविस्तर संदेश राजा वीरधवल के समक्ष कह सुनाया। और साथ में लायी हुई आठ लाख सुवर्णमुद्रायें भेंट के बतौर राजा के सामने रख दीं। राजा वीरधवल ने आठ लाख मुहरों से आधा धन महाराज शूरपाल को दे सिद्धराज को पराजितकर बलसार को छुड़ाने की सम्मति दी। महाराज शूरपाल ने भी लोभ के वश हो राजा वीरधवल के विचारों से सहानुभूति प्रकट की। महाराज शूरपाल बोला - सागर तिलक नरेश के साथ तो हमारा वंश परंपरा से वैरभाव चला आ रहा है। चलो यह अवसर ठीक है। उसे पराजित कर उसका सर्वस्व ग्रहण करेंगे।

सिद्धराज कौन है ? और उसने किसलिए इतने बड़े व्यापारी बलसार को कैद किया है ? इस बात से वे दोनों ही राजा अनजान थे। इसी तरह यह मुझे कैद करने वाला सिद्धराज कौन है, और मलयासुन्दरी का वीरधवल के साथ क्या सम्बन्ध है। इस विषय में बलसार भी बिलकुल अनजान था। अज्ञानता के *कारण दोनों राजा विपुल सैन्य ले सिद्धराज पर चढ़ आये। सागरतिलक* शहर के नजीक आकर उन्होंने अपनी अनुकूलता देख एक छोटी - सी पहाड़ी पर पड़ाव डाला। सिद्धराज को चेताने के लिए शिक्षा देकर उन्होंने उसके पास एक राजदूत भेजा।

सिद्धराज की राजसभा में आकर नमस्कार कर दूत बोला - राजन्! पृथ्वीस्थानपुर से महाराज शूरपाल तथा चंद्रावती से महाराज वीरधवल अपना सैन्य लेकर यहाँ आये हुए हैं। वे आपको मालूम कराते हैं कि आपने जिस बलसार व्यापारी को कैद किया है वह हमारा मित्र है। हम उसकी कदापि उपेक्षा नहीं कर सकते। इसलिए यदि आप अपना भला चाहते हैं तो उसका सत्कार कर उसे छोड़ दें। अगर उसने आपका कुछ अपराध भी किया हो तथापि आप उसका एक अपराध सहन कर लें। राजन्! आप स्वयं यद्यपि शूरवीर हैं तथापि आपके पास सेनाबल बहुत कम है। हमारे राजाओं के पास असंख्य सेना बल है, अतः आपको इन तमाम बातों पर विचारकर हमारे स्वामी की आज्ञानुसार

बलसार सार्थवाह को छोड़ देना चाहिए । अगर आपको यह बात मंजूर न हो तो हमारे राजाओं का अन्तिम संदेश है कि आप युद्ध के लिए तैयार हो जायें । वे आपसे बलपूर्वक बलसार को छुडायेंगे और आप को भी शिक्षा करेंगे ।

सिद्धराज ने उस दूत के वचन शांतिपूर्वक सुने । वह अपने पिता और स्वसुर को सन्मुख आया जानकर बहुत ही खुश हुआ । परन्तु कुछ सोच - विचारकर वह बनावटी क्रोध धारणकर दूत से बोला - तुम्हारे दोनों स्वामी बहुत बड़ी सेना लेकर आये हैं तो हम क्या चूड़ियाँ पहनकर बैठे हैं ? या हमारी भुजायें नहीं हैं ? या हम मिट्टी के ही पुतले हैं ? तुम्हारे स्वामी क्या यह नहीं जानते कि अकेला सूर्य ही असंख्य ताराओं के तेज को नष्ट कर डालता है ? एक ही केशरी अनेक मदोन्मत्त हाथियों के मद को ठंडा कर देता है, क्या वे इस बात को भूल गये हैं ? बलसार बडा व्यापारी होने से तुम्हारे राजाओं का मित्र है इससे हमें क्या ? बड़ा हो या छोटा, अपराधी मनुष्य शिक्षा का पात्र बनता है । सज्जनों का सम्मान करना और दुर्जनों - अपराधियों को दंड देना यह न्यायवान राजाओं का कर्तव्य है। बलसार गुन्हेगार है, अतः उसे शिक्षा करना न्याय है अन्याय नहीं । तुम्हारे स्वामी अपराधी का पक्ष लेकर आये हैं, इसलिए मैं उनसे बिलकुल नहीं डरता । तुम्हें याद रखना चाहिए कि उल्लू को आश्रय देनेवाले अन्धकार की सूर्य के सामने जो दशा होती है, वही दशा अन्यायी को आश्रय देनेवाले की भी होगी । इतने नीति निपुण होने पर भी अपराधी का पक्ष लेकर मुझ पर इतनी बड़ी सेना ले चढ़ायी करते हुए तुम्हारे स्वामियों को लज्जा न आयी? अन्याय पक्ष की पुष्टि करनेवाले चाहे जैसे बलवान हों समरभूमि में मेरे सामने टिक नहीं सकते। जाओ दूत ! तुम्हारे स्वामियों को भी मेरा यह अन्तिम संदेश सुना दो कि वे युद्ध की तैयारी करें। उनकी तमाम इच्छायें युद्ध भूमि में मेरी तलवार पूर्ण करेगी ।

सिद्धराज के वचन सुन दूत भी स्तब्ध - सा हो गया । वह सिद्धराज को नमस्कार कर वहाँ से चला गया । उसने राजा शूरपाल और वीरधवल से जाकर सिद्धराज का सारा समाचार कह सुनाया और उन्हें युद्ध के लिए तैयार होने की

सूचना दी । महाराज शूरपाल और वीरधवल की आज्ञा से उनकी सेना में समर की तैयारीयाँ होने लगीं ।

इधर महाबल राजा सभा में से उठकर राजमहल में गया । उसने बलसार को छुड़ाने के लिए अपने पिता और स्वसुरजी के आने का शुभ समाचार रानी मलयासुन्दरी को सुनाया । अपने पिता और स्वसुर के आने का समाचार सुनकर मलयासुन्दरी को अत्यन्त आनंद हुआ । महाबल बोला - प्रिये ! ऐसी परिस्थिति में संग्राम किये बिना पिताजी और ससुरजी से यों ही जा मिलना मुझे उचित मालूम नहीं होता । मैं यह समझता हूँ कि पूज्य पिता और पितातुल्य स्वसुरजी के सन्मुख युद्ध करना योग्य नहीं है, तथापि संग्राम करने की भावना से आये हुए होने के कारण उनके समक्ष जाकर "मैं आपका पुत्र हूँ । या मैं आपका जमाई हूँ" यों कहकर दीनता से मिलना क्षत्रिय पुरुषों के लिए अपमान कारक है । इसलिए संग्राम में कुछ हाथ बतलाकर फिर पिताजी और स्वसुरजी से मिलना अधिक प्रेम और आनन्द दायक होगा । तुम यहाँ रहकर निश्चिन्त हो महल पर से युद्ध देखना। मलयासुन्दरी को यों कहकर महाबल राज महल से बाहर चला गया।

दोनों सेनाओं में संग्राम की तैयारी हो रही है । अपने मालिक की आज्ञा पाकर वीरता में मत्त हो योद्धाओं में उत्साह भर रहा है । सिद्धराज स्वयं सेनापति बनकर सैन्य संचालन करेंगे यह जानकर वीर सुभटों के उत्साह का पार न रहा। आज उन्हें यह प्रथम ही अवसर मिलेगा जबकि वे अपने नवीन राजा सिद्धराज को स्वयं शत्रुसेना से लड़ता देखेंगे ।

उधर विपुल शत्रु सेना देख कायर मनुष्यों का हृदय काँपता था । इधर मुट्ठीभर सुभटों को देख सारा शहर चिन्ता सागर में डूब रहा था । दोनों महा शक्तिशाली राजाओं की असंख्य सेना के सामने सिद्धराज की सेना कुछ भी हिसाब में न थी । परन्तु फिर भी सिद्धराज का साहस देख लोगों को उसके पूर्वकृत कारनामों से विश्वास होता था कि वह जिस कार्य में सोच समझकर हाथ डालता है, उसे बिना पूर्ण किये नहीं छोड़ता । इस समय जो उसने अतुल सेना

का सामना करना मंजूर किया है तो अवश्य ही कुछ सोच - समझकर किया होगा।

सामने शत्रुसेना युद्ध के लिए तैयार खड़ी है । एक तरफ काले पहाड़ों के समान हाथियों की पंक्ति लगी खड़ी है । सैनिक उत्साह पूर्वक शत्रु के आक्रमण की राह देख खड़े हैं । घोड़े हिनहिनाट कर रहे हैं । संग्राम के बाजे बज रहे हैं। सिद्धराज के सैनिकों में भी युद्ध का अदमनीय उत्साह भरा था । वे सिद्धराज जैसे सेनापति की अध्यक्षता में यमराज से भी युद्ध करने को उत्सुक थे । रणरंग हाथी पर बैठ और अपनी अदम्य उत्साह वाली छोटी - सी सेना को साथ ले महाबल शत्रुसेना के सन्मुख आ पहुँचा । दोनों सेनाओं में मुठ भेड़ हो गयी । भयंकर युद्ध छिड़ गया । समर भूमि की उड़ी हुई धूल से आकाश में बादल से छा गये । उस भीषण संग्राम से तलवारों की चमक बिजली की भाँति मालूम होती थी ।

सिद्धराज को आगे बढ़ा देख विश्वालंकार हाथी पर बैठकर राजा शूरपाल और संग्रामतिलक नामा हाथी पर बैठ वीरधवल राजा आगे बढ़ आये और जी तोड़ कर लड़ने लगे। अपने स्वामियों को आगे बढ़ता देख दोनों सेनायें सिद्धराज की सेना पर टूट पड़ी । हाथीवाले के साथ हाथीवालों, घुड़सवारों के साथ घुड़सवारों और पदातियों के साथ पदातियों में घोर घमशान युद्ध मच गया । अनेक सुभटों के रूंडमुंड कटकर जमीन पर पड़ने लगे । सिद्धराज की सेना का संगठन टूट जाने से उसमें भगदड़ - सी मच गयी । उसके सैनिक परास्त होकर रणभूमि से भागने लगे । अपने सैनिकों को भागते देख और अपने बल से सामने का बल अजेय समझकर सिद्धराज ने अपने वशवर्ती व्यन्तर देव को याद किया। स्मरण करते ही व्यन्तर देव यहाँ पर आ पहुँचा । "मैं आपको इच्छित सहाय करुँगा, यों कहकर वह देव उसकी मदद करने लगा । अब सिद्धराज ने अपने सैन्य का उत्साह बढ़ाया और वह अपने हाथी परसे सामने की सेना पर विषम बाण वर्षा करने लगा । सिद्धराज का एक भी वार खाली न जाता था और देव सहायता के कारण सामने से आने वाले बाण निष्फल होते थे । व्यन्तर देव रास्ते

में ही आते हुए शत्रु सेना के बाणों को ग्रहणकर लेता था और उन्हीं बाणों को लाकर महाबल को दे देता था । बहुत देर तक इसी प्रकार युद्ध चलता रहने से अब सामने वाली सेना का संगठन टूट गया । बड़े - बड़े योद्धाओं का होशला परास्त हो गया । इतनी विपुल सेना छिन्न - भिन्न होती देख दोनों राजाओं के होश गुम होने लगे । *जिस तरह तेजस्वी गुरु और शुक्र को चंद्रमा निस्तेज कर डालता है* उसी तरह अकेले महाबल ने अपनी दिव्य सहायवाली बाणवृष्टि से दोनों राजाओं को निस्तेज कर दिया । महाबल के शस्त्राघात से उनके हाथ से छूटकर शस्त्र जमीन पर गिरने लगे । अब वे लज्जा से अधोमुख हो चिन्तातुर होकर सोचने लगे - अहो ! कैसा आश्चर्य है ? मुट्ठीभर सैनिकों को साथ लेकर सिद्धराज अकेला ही कैसा पराक्रम बतला रहा है ? धन्य है ऐसे वीर योद्धा को। हे प्रभो! आज इस दुर्दमनीय महायोद्धा सिद्धराज के सामने किस तरह हमारी लज्जा रहेगी ?

अपने पिता और स्वसुर को युद्धक्षेत्र में पराजित होने के कारण चिन्तित देखकर महाबल ने व्यन्तर देव को कुछ सूचनाकर प्रथम से लिखा हुआ पत्र बाण के अग्रभाग में रखकर वह बाण अपने पिता राजा शूरपाल के सामने फेंका । दिव्य प्रभाववाला सिद्धराज का छोड़ा हुआ बाण राजा शूरपाल को नमस्कार कर तमाम मनुष्यों को आश्चर्य चकित करता हुआ राजा के सामने आ पड़ा । दोनों राजा आश्चर्य पाते हुए उस बाण के पास आये और उसके अग्रभाग पर चिपकाये हुए पत्र को महाराज शूरपाल ने उठा लिया । पत्र को देख तमाम सैनिकों को बड़ा आश्चर्य हुआ । मंत्री वगैरह सेना के तमाम प्रधान पुरुष उस पत्र को सुनने के लिए उत्सुकता पूर्वक महाराज शूरपाल के पास आ खड़े हुए । महाराज शूरपाल ने भी उस पत्र को खोलकर सबके समक्ष उच्च स्वर में पढ़ना शुरु किया ।

श्रीमान, वीर शिरोमणी, रणांगण भूमि में स्थित पूज्य पिताश्री महाराज शूरपाल नरेन्द्र के चरणारविंदों में तथा श्रीमान् चंद्रावती नरेश, महाराज वीरधवल के चरणकमलों में, आप श्री के सन्मुख समरभूमि में स्थित महाबल कुमार आप सबको नमस्कारपूर्वक प्रार्थना करता है कि आपकी पवित्र कृपा से मुझे

इस राज्य का पूर्ण परिग्रह प्राप्त हुआ है । पूज्य पिताश्री के प्रमोदार्थ आपके समक्ष जो मैंने अपनी भुजाबल का विनोद किया है और उसमें आप पूज्यों का जो पराभव, अवज्ञा, या अविनय हुआ हो तो आप कृपाकटाक्ष द्वारा उसे क्षमा करें। पूज्य पिताश्री के दर्शनार्थ मैं स्वयं प्रबल उत्कंठित हो रहा था, इतने ही में पुण्योदय से अकस्मात् पूज्यों का पवित्र दर्शन प्राप्त हुआ है; इसलिए इस अद्वितीय हर्ष के स्थान में आपश्री शोकसागर में क्यो निमग्न हो रहे हैं ?

पत्र पढ़ते ही सारी सेना में हर्षध्वनि होने लगी । राजा शूरपाल और वीरधवल के जिस हृदय में कुछ ही देर पहले चिन्ता और शोकने स्थान प्राप्त किया हुआ था वही हृदय अब हर्ष और प्रमोद से पुलकित हो उठा । राजा शूरपाल आनन्द के आवेश में बोल उठा - अहो ! भाग्योदय! जिस प्रियपुत्र के दर्शनार्थ लगभग डेढ़ वर्ष से तरस रहा हूँ आज वह राज्य ऋद्धि संपन्न अपनी प्रिया सहित मिलेगा !! नरक के समान वियोग दुःख से आज हमारा उद्धार होगा । आज हमारे पिपासित नेत्र पुत्रदर्शन से तृप्त होंगे । इस प्रकार बोलता हुआ शूरपाल राजा महाराज वीरधवल के साथ उत्सुकतापूर्वक महाबल के सन्मुख चल पड़ा ।

प्रेम एक ऐसी चिकनी भावना है कि उसके सामने मान, अपमान, बड़े - छोटे की गणना या तुलना नहीं रहती । अविवेक या अविनय तो उसके अखण्ड रस के प्रवाह में विलीन हो जाता है । प्रत्युत आन्तरिक आनंद को प्रकटकर प्रेम का पोषण करता है ।

महाबल अपने पिता तथा स्वसुर को अपने सन्मुख आता देख रणरंग हाथी से नीचे कूदकर पिता के सामने दौड़ पडा । शीघ्र ही पास जाकर पिता के चरणों में मस्तक झुका दिया और आनन्द के आँसुओं से उसने दबी हुई चिरकालीन वियोग व्यथा को दूर किया । अब समरभूमि में न रहकर महाबल ने अपने पूज्य जनों को बड़े समारोह के साथ नगर में प्रवेश कराया।

राजमहल में पहुँचते ही मलयासुन्दरी ने अपने पिता तथा स्वसुर के चरणों में आकर नमस्कार किया । उन्हें देखते ही उसे अनुभूत दुःख याद आ गया ।

दुःख याद आने पर उसका हृदय उसके स्वाधीन न रहा । उसके नेत्रों से अखण्ड अश्रुप्रवाह बहने लगा और वह फूटफूट कर रोने लगी । वह आप ही नहीं रोयी बल्कि अपने स्वजनों को भी उसने खूब रुलाया । अन्त में धैर्यधारणकर उसके पिता और स्वसुर ने उसे दिलासा देकर शान्त किया । पूछने पर मलयासुन्दरी और महाबल ने अपने पिता और स्वसुर को अपना अनुभव किया हुआ आज तक का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया । मलयासुन्दरी के दुःख का वृत्तान्त सुनकर दोनों राजाओं के नेत्रों से अश्रु टपकने लगे । राजा शूरपाल के हृदय में अपनी की हुई भूल के पश्चात्ताप का पार न रहा। मलयासुन्दरी के सामने उसकी गरदन नीची हो गयी । पश्चात्ताप के दुःख से उसका हृदय गद्‌गद् हो गया । वह विनम्र भाव से बोल उठा - बेटी कुल वधु ! तुम तत्त्वज्ञा हो इस अविचारी शूरपाल को जो तुम्हारे सर्व दुःखों का कारण बना है क्षमा करो । देवी ! मैं तुम्हारे सामने मूर्ख और अपराधी हूँ । राजा वीरधवल पुत्री के मस्तक पर हाथ फेर कर बोला - बेटी! तुमने बड़ा घोर दुःख सहा! राजकुल में पैदा होकर भी तुम निष्पुन्यक भिखारी के समान रुलती फिरी ! चंद्र किरणों के समान निर्दोष और गुलाब कुसुम के समान कोमलांगी पुत्री ! तूने किस तरह ऐसे घोर दुःख सहे होंगे ! इस प्रकार दुःखित हृदय से सबने मलयासुन्दरी के दुःख में शोक समवेदना प्रकट की।

स्नान भोजनकर फिर राज्य प्राप्ति के सम्बन्ध में बातचीत शुरु हुई । शूरपाल बोला - बेटा! तेरी सहन शक्ति अगाध है । तुमने कंदर्प पर बड़ा भारी अनुग्रह किया । परन्तु फिर भी वह दुष्ट तुम्हारे अनुग्रह से कुछ लाभ न उठा सका । बेटा ! तुम्हारा साहस, तुम्हारी तीक्ष्ण बुद्धि, तुम्हारा धैर्य और तुम पर प्रजा का जो असीम प्रेम है वह सब प्रशंसा के योग्य है । इत्यादि पुत्र के गुणों की अनुमोदना करते हुए राजा शूरपाल ने पूछा - बेटा ! जंगल में पैदा होनेवाला मलयासुन्दरी का वह पुत्र कहाँ ? पापी दुष्ट बलसार ने उसकी क्या व्यवस्था की है ?

महाबल - बलसार को यहाँ बुलाकर पूछने से मालूम होगा। बलसार का शीघ्र ही जेल खाने में से राजा शूरपाल के पास बुलवाया गया। वह राज पुरुषों के पहरे में और हथकड़ी बेड़ियों से जकड़ा हुआ राज सभा में हाजिर हो उसे देखते ही राजा शूरपाल त्यौरी चढ़ाकर बोला - अरे दुष्ट ! तूंने हमारा भयंकर अपराध किया है। इस अपराध में तुझे भारी से भारी शिक्षा मिलनी चाहिए। तूं प्रथम वह तो बतला कि तूंने उस हमारे लड़के की क्या व्यवस्था की है और उसे कहाँ रक्खा है ?

शूरपाल और वीरधवल राजा को वहाँ बैठा देख बलसार के छक्के छूट गये। वह और भी अधिक घबड़ा गया। वह जिनकी सहाय से सिद्धराज के जेलखाने से छूटना चाहता था उन्हीं के ये पुत्र - पुत्री हैं जिनका उसने अपराध किया है। जिस वीरधवल राजा की सहायता से वह अपने छुटकारे की कुछ आशा रखता था, उसकी पुत्री मलयासुन्दरी की उसने घोर विटम्बना की है, इतना ही नहीं किन्तु उसे द्रव्य लेकर कारु लोगों के हाथ पशु के समान बेच दिया था। इत्यादि बातें याद आते ही उसके होश गुम हो गये। वह सोचने लगा कि मेरे सब मनोरथ गुम हो गये। वह सोचने लगा कि मेरे सब मनोरथ निष्फल हो गये। राजद्रोह और स्वामी का अपराध करनेवाले मुझको सहकुटुम्ब प्राण दण्ड की शिक्षा के सिवा अब अन्य मार्ग ही नहीं दीखता। अर्थात् मरने से बचने का अब कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार सोच - विचारकर बलसार बोला- महाराज! मैंने आपका बड़ा भयंकर अपराध किया है, इससे मैं अवश्य ही शिक्षा का पात्र हूँ तथापि यदि आप मुझे कुटुम्ब सहित को प्राण दान देवें तब ही मैं आपके उस पुत्र को बतला सकता हूँ। अन्यथा मुझे यों भी मरना है और यों भी।

शूरपाल राजा - खैर यदि तूं हमारे जीवित पुत्र को ला दे तो हम तुझे तेरी इच्छानुसार जीवित दान देते हैं। यों कहकर राजा ने बलसार के बतलाये हुए गुप्त स्थान पर राज पुरुषों को भेजा और वे वहाँ हिफाजत से रहे हुए उस बालक को राज सभा में ले आये। जिस तरह वर्षाऋतु में मेघागमन से आनन्दित हो मयूर

कुटुम्ब नृत्य करता है; वैसे ही पुत्र को देखकर सारा राजकुटुम्ब हर्षित हो उठा। शूरपाल राजा ने बलसार ने पूछा - इस कुमार का तुमने क्या नाम रख्खा है ? बलसार ने कहा - महाराज ! इसका नाम बल रखा है । राजा ने पुत्र को अपनी गोद में ले लिया, उस समय उसके हाथ में सौ सुवर्ण मुहरें थीं । उन स्वर्ण मोहरों की थैली को बालक ने अपने हाथ से पकड़कर खींच लिया यह देख राजा ने उसका नाम सतबल रखा । शूरपाल राजा ने बलसार सार्थवाह का सर्वस्व लूटकर उसे सकुटुम्ब जीवन दान दे देश से बाहर निकाल दिया ।

स्वजन सम्बन्धियों का मिलाप होने के कारण राजकुटुम्ब और सारे राज्यभर में आज के दिन आनन्दोत्सव मनाया गया । बहुत से समय से पुत्र और पुत्री के विरह से संतप्त दोनों राजा आज शान्ति का अनुभव कर रहे थे । सिद्धराज सूरपाल राजा का महाबल कुमार नामक पुत्र है, यह जानकर प्रजा में और भी आनन्द छा गया । अपने भुजाबल से पैदा किया हुआ राज्य महाबल कुमार ने अपने पिता को समर्पण किया । परस्पर परमस्नेह में निमग्न होकर दोनों राजकुटुम्ब सानन्द समय व्यतीत करने लगे ।

अनेक प्रकार के पार्थिव वैभवों का अनुभव करता हुआ महाबल का राजकुटुम्ब इष्ट संयोग के सम्बन्ध से पूर्व अनुभूत असह्य दुःखों को सर्वथा भूल गया था । पूर्वोपार्जित प्रबल पुण्य का सूर्योदय पराकाष्टा को पहुँचा मालूम होता था । इस समय आन्तर सुखशांति प्राप्त करने के लिए उन्हें किसी ज्ञानवान् विरक्तात्मा सद्गुरु के समागम की आवश्यकता थी । मानो वह पूर्ण करने के लिए ही उनके पुण्य से प्रेरित हो पार्श्वनाथ प्रभु के शिष्य महात्मा "चंद्रयशा केवली, विचरते हुए और भव्य जीवों को उपदेश करते हुए वहाँ पर आ पधारें ।"



- नर में से नारायण बनने वालों ने ही नर जन्म को सार्थक किया है ।
- मोह की सेना को हराना सहज सुलभ नहीं परन्तु समकित सेनापति के कथनानुसार युद्ध करने वाला मोह पर विजय प्राप्त कर लेता है।
- अन्त दुःख का नहीं, सुख का अन्त करने हेतु प्रयत्न करना है । राग सुख है, द्वेष दुःख है । बस प्रथम राग का अन्त करना है । द्वेष का अंत स्वयं हो जायगा
- जिन वही जो राग का विजेता है ।
- तलवार का घाव उतना घातक नहीं, जितना घातक है जबान का घाव।
- नामना की कामना पामरता की पहचान ।
- थाक भव भ्रमण का जिसे लगे वही धर्मी ।
- यंत्र, तंत्र, मंत्र से भी बढ़कर है उत्साह, जो सर्वोपरी है ।

- जयानंद

पूर्वभव वृत्तान्त

सागर तिलक नगर के बाह्योद्यान में आज बहुत से नगर निवासियों का जमघट लगा हुआ है । शहर के बड़े - बड़े आदमी उत्साह और भक्ति - भाव से प्रेरित हो उधर को जा रहे हैं । इस समय राजसभा में आकर एक बागवान ने राजा से प्रार्थना की - महाराज ! आज शहर के बाहर महातपस्वी और कैवल्य ज्ञानधारी एक चंद्रयशा नामक महात्मा पधारे हैं । यह समाचार सुनते ही सारा राजकुटुम्ब इस प्रकार प्रसन्न हो उठा जिस तरह सूर्य के आगमन से कमल समुदाय विकसित हो उठता है । उन्होंने जरा भी विलम्ब न किया, सारे ही राज कुटुम्ब को साथ लेकर गुरुमहाराज को वन्दन करने के लिए उनके दर्शनार्थ महाराज शूरपाल, महाराज वीरधवल वहाँ आ पहुँचे । राजा आदि तमाम जनता के उपस्थित होने पर कृपा के समुद्र ज्ञानभानु - महात्मा चंद्रयशा केवली भगवान ने जगतजनों पर करुणा लाकर संसार के जन्म - जरा - मरण के बन्धनों को छेदन करनेवाली और आत्मा का वास्तविक स्वरूप बतलाने वाली वैराग्य गर्भितधर्म देशना प्रारंभ की ।

सुखप्राप्ति की इच्छा रखनेवाले सज्जनों ! आपको यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि संसार के तमाम सुख निमित्तजन्य होने के कारण विनश्वर हैं। आत्मा का असली स्वरूप प्राप्त किये बिना मनुष्य को सच्चा सुख प्राप्त नहीं होता । उस सुख को प्राप्त करने के लिए ज्ञानवान पुरुषों ने दो मार्ग बतलाये हैं। एक सन्यस्त मार्ग और दूसरा गृहस्थ है । जिस मनुष्य में उस सुख को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा और उत्सुकता प्राप्त हुई हो वह मनुष्य आत्मा के साथ कर्मबन्धन करानेवाले तमाम भावों का सर्वथा परित्यागकर प्रबल पुरुषार्थ द्वारा संन्यस्त मार्ग से उसे प्राप्त कर सकता है । जिसमें उतना त्याग करने का प्रबल पुरुषार्थ न हो वह मनुष्य गृहस्थ धर्म में रहकर उसके योग्य नियमों को धारणकर धीरे धीरे आत्मस्वरूप की ओर गमन करते हुए उस सुख के नजदीक पहुँच जाता

है । गृहस्थ धर्म के योग्य ज्ञानी पुरुषों ने मुख्यतया व्यवहार और निश्चय नय से बारह नियम बतलाये हैं ।

(१) दूसरे प्राणी को अपने समान समझ कर उसकी हिंसा न करे । उसे किसी भी प्रकार की पीड़ा न पहुँचावे, इसे व्यवहार नय से प्रथम व्रत या नियम कहते हैं । और यह प्राणी अन्य प्राणियों की हिंसा द्वारा कर्म बन्धनकर के दुःख का भागी बनता है । इसलिए आत्मा के साथ लगे हुए कर्मो को दूर करना योग्य हैं । तथा यह आत्मा अनेक स्वाभाविक गुणवाली है । अतः हिंसादिकद्वारा कर्म ग्रहण करने का इसका स्वाभाविक धर्म नहीं है । इस प्रकार की ज्ञानबुद्धि से हिंसा के त्यागरूप आत्मगुण को ग्रहण करना या ग्रहण करने का निश्चय करना इसे निश्चय नय की अपेक्षा प्रथम व्रत कहते हैं ।

(२) लोक निन्दित असत्य भाषण से निवृत्त होना यह व्यवहार से दूसरा व्रत कहलाता है । त्रिकाल ज्ञानी सर्वज्ञ देव के कथन किये हुए जीव अजीव के स्वरूप को अज्ञानतावश विपरीत कथन करना और पौद्‌गलिक परवस्तु को आत्मीय कहना यह सरासर मृषावाद है । अतः इस प्रकार के मृषावाद से निवृत्त होना इसे निश्चय की अपेक्षा दूसरा व्रत कहा है । इस पूर्वोक्त व्रत के सिवा अन्य व्रतों की यदि विराधना भी हो जाय तो उसका चारित्र नष्ट हो जाता है । किन्तु ज्ञान और दर्शन ये दोनों कायम रहते है । पर उपरोक्त दूसरे व्रत की विराधना होने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये तीनों ही जो आत्मीय सुख की प्राप्ति कराते हैं नष्ट हो जाते हैं ।

(३) किसीकी मालकियत की वस्तु मालिक के दिये बिना या उसकी आज्ञा विना ग्रहण न करना इसे व्यवहार नय से तीसरा व्रत कहते हैं । परन्तु द्रव्य से पर वस्तु ग्रहण न करने के उपरान्त अन्तःकरण में पुण्य तत्त्व के बैतालिस भेद प्राप्त करने की इच्छा से धर्म कार्य करता हुआ और पाँचों इन्दियों के तेईस विषय तथा कर्म की आठ वर्गणायें, वगैरह अनात्मीय परवस्तु ग्रहण करने की इच्छा तक भी न करना इसे निश्चय नय की अपेक्षा तीसरा व्रत कहते हैं ।

(४) गृहस्थ धर्म में स्वदारा संतोष और परस्त्री का त्याग, तथा साधु मुनिराज के लिए सर्वस्त्री मात्र का परित्याग करना यह व्यवहार से चतुर्थ व्रत कहलाता है । परन्तु विषय की इच्छा का, ममत्व और तृष्णा का परित्याग रूप निश्चय से चतुर्थ व्रत होता है ।

(५) गृहस्थ धर्म में नव प्रकार के परिग्रह का परिमाण करना और संन्यस्त मार्ग में सर्व प्रकार के परिग्रह का त्याग करना, यह व्यवहार से पांचवाँ व्रत कहलाता है । भाव कर्म जो राग द्वेष, अज्ञान तथा आठ प्रकार के द्रव्यकर्म और देह की मूर्च्छा एवं पाँचों इन्द्रियों के विषयों के परित्याग को ज्ञानवान् पुरुषों ने निश्चय नय से पाँचवां व्रत कथन किया है ।

(६) दिशाओं में आने – जाने का परिमाण करना यह व्यवहार से छट्ठा व्रत कहलाता है। और नरकादि चतुर्गति रूप कर्म के परिणाम को जानकर उस ओर उदासीन भाव रखना तथा सिद्ध अवस्था की तरफ उपादेय भाव रखना इसे निश्चय नय से छट्ठा व्रत कहते हैं ।

(७) भोगोपभोग व्रत में सर्व भोग्य वस्तुओं का परिमाण करना यह व्यवहार से सातवाँ व्रत कहलाता है । व्यवहार नय से कर्म का कर्त्ता तथा भोक्ता आत्मा ही है । और निश्चय नय से कर्म का कर्तापन कर्म को ही कहा है, क्योंकि मन, वचन और शरीर का योग ही कर्म का आकर्षण करता है । एवं भोक्तापन भी योग में ही रहा हुआ है । अज्ञानता के कारण आत्मा का उपयोग मिथ्यात्वादि कर्म ग्रहण करने के साधन में मिल जाता है । परन्तु परमार्थ वृत्ति से आत्मा कर्म पुद्गलों से भिन्न ही है । आत्मा ज्ञानादि गुणों का आविष्कर्ता और भोक्ता है । संसार में जितने पौद्गलिक पदार्थ हैं वे जगतवासी अनेक जीवों के भोगे हुए हैं । अत एव विश्वभर के तमाम पदार्थ उच्छिष्ठ भोजन के समान होने के कारण उन पुद्गुलों को भोगोपभोग रूप से ग्रहण करने का आत्मीय धर्म नहीं है । इस प्रकार के चिंतन को निश्चय नय से सातवाँ व्रत कहते हैं ।

(८) विना प्रयोजन पापकारी आरम्भ से निवृत्त होना इसे व्यवहार से आठवाँ अनर्थदण्ड विरमण व्रत कहते हैं । मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और मन, वचन, शरीर के योग इन चारों के उत्तर भेद सत्तावन होते हैं । आत्मा को मलीनकर अपने स्वरूप से वंचित करनेवाले कर्म का आगमन इन पूर्वोक्त हेतुओं से ही होता है और कर्मों के द्वारा ही आत्मा विभाव दशा को प्राप्त होती है । अतः पूर्वोक्त कर्मबन्धन के हेतुओं को त्यागना इसे निश्चय नय से अनर्थदण्ड विरमण नामक आठवाँ व्रत कहा है ।

(९) आरम्भ कार्य को त्यागकर जो सामायिक किया जाता है उसे व्यवहार से नवम व्रत कहते हैं । परन्तु ज्ञानादि गुणों की मुख्य सत्ता धर्म के द्वारा सर्वजीवों को समान समझकर उन पर समता परिणाम रखने को निश्चय नय से नवम सामायिक व्रत कहते हैं ।

(१०) नियमित स्थान में स्थिति करना यह व्यवहार से दशवाँ व्रत कहलाता है । परन्तु ज्ञान के द्वारा छह द्रव्यों का स्वरूप समझकर, पाँच द्रव्यों में त्याग बुद्धि रख ज्ञान से आत्मा का ध्यान करना इसे निश्चय से दशवाँ देशावकाशिक व्रत कहते हैं ।

(११) रातदिन के आरंभ समारंभ या पापकारी व्यापार का परित्याग करके ज्ञान, ध्यान में प्रवृत्त होना व्यवहार से ग्यारहवाँ व्रत कहलाता है । परन्तु ज्ञानध्यानादि के द्वारा आत्मीय गुणों का पोषण करना इसे निश्चय से ग्यारहवाँ पौषध व्रत कहते हैं ।

(१२) पौषध पारकर या पूर्वोक्त नियमों को धारण करने वाले गृहस्थ के लिए सदैव साधु मुनिराज को या किसी विशिष्ट गुणवान् श्रावक को अतिथिसंविभाग करके भोजन करना, इसे व्यवहार से अतिथि संविभाग व्रत कहते हैं । परन्तु अपनी आत्मा को तथा अन्य को ज्ञानदान करना, पठन, पाठन, श्रवण, श्रावण, वगैरह को निश्चय से बारहवाँ अतिथि संविभाग नामक व्रत कहते हैं ।

पूर्वोक्त निश्चय और व्यवहार भेदों सहित ये बारह प्रकार के नियम गृहस्थ

धर्म को मुक्ति मंदिर की तरफ ले जाते हैं । केवल व्यवहार से ही धारण किये ये व्रत आत्मा को देवलोकादि का सुख प्राप्त कराते हैं ।

महानुभावो ! आत्मीय सुख प्राप्ति का उद्देश्य किये बिना सांसारिक सुख की लालसा में अमूल्य जीवन की कदर्थना करना मूर्खता है, क्या यह कीमती जीवन विषय वासनाओं के प्रवाह में बहा देने के लिए प्राप्त हुआ है ? या उस क्षणिक सुख के साधनों को एकत्रित करने के लिए ही दुर्लभ मानव जन्म पाया है जो बादल की छाया के समान कुछ देर आकर नष्ट हो जाता है ? संसार परिवर्तन शील है, उसमें मनुष्य अपनी जीवन नौका को वहन करता है । यदि वह पतवार को छोड़ हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाय तो वह नौका काल के प्रवाह में बह जाय । परिवर्तनशील संसार में रहनेवाले हर एक समझदार मनुष्य को अपने बहुमूल्य मानव जीवन का लक्ष्य कायमकर सदैव उसकी ओर ध्यान रखना चाहिए । बहुत से मनुष्य आत्मीय सुख की ओर दुर्लक्ष्यकर शारीरिक सुख को अधिक महत्त्व देते हैं । वे सवार की अपेक्षा घोड़े को ही कीमती समझते हैं ।

राजन् ! परम सुख प्राप्त करने का मुख्य साधन शरीर अस्थिर है । सुख की भ्रांति करानेवाली लक्ष्मी विजली के चमत्कार की तरह चपल है । संयोग वियोग वाले हैं । प्राणीमात्र के सिर पर मृत्यु का नाच हो रहा है, न जाने किस समय और किस पर उसकी तान टूट जाय । संसार के तमाम सुख स्वप्न के सरीखे हैं । संकट के समय धर्म के सिवा कोई भी सहाय नहीं कर सकता । देव देवेन्द्र, राजा रंक, स्त्री - पुरुष और बाल वृद्ध आदि सबको एक समय मृत्यु का ग्रास बनना है । इसलिए हे भव्यात्माओ ! आलस्य की घोर निद्रा को त्यागो । सावधान होकर परम शान्ति के मार्ग में प्रयत्न करो । निरन्तर सुख की इच्छावाले मनुष्य को कभी न कभी अवश्य ही इस मार्ग का आश्रय लेना पड़ेगा। अमूल्य जीवन का एक भी क्षण निरर्थक न जाने दो । ये क्षण बड़े ही कीमती हैं। विपुल संपत्ति खर्च ने पर भी गया क्षण हाथ नहीं आता और पुण्योदय से प्राप्त हुई यह सर्व सामग्री बार - बार नहीं मिलती ।

इस धर्म देशना को सुनकर अनेक मनुष्यों को बोध प्राप्त हुआ । महात्मा के वचनों से राजकुटुम्ब को बड़ी शान्ति प्राप्त हुई । ज्ञान पिपासु और धर्म जिज्ञासु मनुष्यों के आनन्द का पार न रहा । सारी सभा में शान्ति का साम्राज्य छा गया । समय पाकर राजा शूरपाल हाथ जोड़कर बोला – ज्ञान दिवाकर भगवन् ! मेरे मन में एक आश्चर्य जनक शंका है, कृपाकर आप उत्तर देकर कृतार्थ करें । प्रभो ! समुद्र में पड़ी मलयासुन्दरी को उस मगर मच्छ ने कुछ भी इजा न पहुँचाकर इसे सुखपूर्वक समुद्र तट पर क्यों कर ला उतारी ? उसमें ऐसा कौन–सा ज्ञान था ? जिससे वह इसे समुद्रकिनारे पर उतारकर बार – बार प्रेम भरी नजर से इसकी ओर देखता हुआ वापिस चला गया।

केवली महात्मा – राजन् ! मलयासुन्दरी की धायमाता वेगवती अन्त समय में आर्त्त ध्यान से मरकर इसी समुद्र में मगरमच्छ के जन्म में पैदा हुई है। जिस समय मलयासुन्दरी भारंडपक्षी के पंजों से निकलकर समुद्र में पड़ी उस समय दैववशात् वह मगरमच्छ उसी जगह पानी पर तैरता था । पुण्य के योग से मलया उसकी पीठ पर आ पड़ी । मलयासुन्दरी उस वक्त अपना अन्तिम समय समझकर परमेष्ठी मंत्र का उच्चारण कर रही थी । इसके शब्द उसके कान में पड़ते ही उसने इसकी ओर देखा । मलया को देख ताजे संस्कार होने से उसे अपने पूर्वभव का जाति स्मरण ज्ञान हो गया । उस ज्ञान के कारण उसने मलयासुन्दरी को पहचान लिया । इससे वह विचारने लगी कि – अहो ! राजमहलों में रहनेवाली इस मेरी पुत्री पर अवश्य कोई भयंकर संकट पड़ा है जिससे यह ऐसे अगाध समुद्र में आ पड़ी हैं । मैं ऐसी तिर्यंच की अधम स्थिति में इसे किस प्रकार सहायता करुँ ? जलचर पशु की गति में पैदा होने के कारण मैं इस निराधार लड़की को अन्य किसी भी तरह की सहाय नहीं कर सकती तथापि इसे अपनी पीठ पर बैठी हुई को किसी मनुष्य की वसतीवाले स्थल प्रदेश तक तो पहुँचा सकती हूँ । उसके बाद यह किसी भी प्रकार से अपने सगे – सम्बन्धियों से जा मिलेगी ।

पूर्वोक्त विचारकर उस मगरमच्छ ने अगाध समुद्र से सुखपूर्वक मलयासुन्दरी को समुद्र तट पर ला छोड़ा । पुत्रीपन के स्नेह से गर्दन पीछेकर

बार - बार उसे देखता हुआ वह वापिस समुद्र में चला गया ।

केवली - राजन् ! जाति स्मरण ज्ञान होने के बाद वह वेगवती का जीव निरन्तर निर्दोष आहार करता है और महामंत्र परमेष्ठीमंत्र का ध्यान स्मरण करता रहता है । वह अपने मच्छ भवसम्बन्धी आयुष्य को पूर्णकर पूर्वकृत कर्मों का पश्चात्ताप, महामंत्र नवकार का स्मरण और शुभ भाव की सहाय से देवगति को प्राप्त होगा । चंद्रयशाकेवली महात्मा के मुख से मलयासुन्दरी की धायमाता वेगवती का भवान्तर सुनकर राजा आदि तमाम मनुष्य आपस में बोलने लगे - ''सचमुच ही उसने इस पशुभव में भी माता के शरीर का ही प्रेम बतलाया है। ऐसे तिर्यच के भव में भी वह अपने कर्तव्य को नहीं भूली ।

सूरपाल - ''भगवन् ! इस मेरे पुत्र महाबल और मलयासुन्दरी ने पूर्व जन्म में ऐसे क्या कर्म किये हैं कि जिनसे इन्हें ऐसे सुखसंपन्न कुल में पैदा होकर भी घोर दुःखों का अनुभव करना पड़ा ?

महात्मा - ''राजन् ! आप सावधान होकर सुनें मैं इनका पूर्वजन्म वृत्तान्त सुनाता हूँ । पृथ्वीस्थानपुर में पहले एक प्रियमित्र नामक जमीनदार रहता था । वह बड़ा समृद्धिवान था । परन्तु उसके पुत्रादि सन्तति न थी । प्रियमित्र के भद्रा, रुद्रा और प्रियसुन्दरी नामकी तीन स्त्रियाँ थीं । रुद्रा और भद्रा दोनों सगी बहनें थीं । अतः उन दोनों में परस्पर अच्छा प्रेमभाव रहता था। किन्तु प्रियमित्र का उन दोनों पर प्रेम न था । उसका प्रियसुन्दरी पर ही पूर्ण प्रेम था । बस इसी कारण प्रियमित्र और प्रियसुन्दरी के साथ रुद्रा एवं भद्रा का क्लेश रहता था । यह क्लेश उसके घर में निरन्तर होता था । प्रियमित्र का एक मदनप्रिय नामक मित्र था । वह प्रियसुन्दरी को प्रेम की नजर से देखता था । सदैव आनेजाने के विशेष परिचय से वह प्रियसुन्दरी पर आसक्त हो गया। हमेशा वह प्रियसुन्दरी के साथ बड़े प्रेम से वार्तालाप करता । एक दिन एकान्त में रही हुई प्रियसुन्दरी के रूप में मुग्ध होकर मदनप्रिय ने उसे अपनी विषय वासना पूरी करने का अभिप्राय जनाया । सुन्दरी का हृदय सरल और पवित्र था । वह पति पर पूर्ण प्रेम और भक्ति रखती थी, त्योंही उसके पति का भी उस पर अनन्य प्रेम था । सुन्दरी

ने मदनप्रिय के अभिप्राय को तिरस्कार का भाव बतलाकर ठुकरा दिया और फिर से मेरे समक्ष आप ऐसा अभिप्राय प्रकट न करें। यह भी उसे साम्यभाव से समझा दिया। परन्तु मदनप्रिय मदन के अधीन होने से अपने अभिप्राय से पीछे न हटा। वह जब कभी समय पाता तब सुन्दरी से वही बात छेड़ता। सुन्दरी उसे समझाने का प्रयत्न करती, परन्तु मदन की आतुरता में और भी वृद्धि होती थी।

एक दिन प्रियसुन्दरी के सिवा घर में अन्य कोई न था। मदन आकर सुंदरी से फिर वही प्रार्थना करने लगा। सुंदरी उसे साम दामादि नीति के वचनों से समझा रही थी। दैव वशात् उसी समय बाहर से वहाँ पर अकस्मात् प्रियमित्र आ पहुँचा। उसने दोनों का बोल सुनकर एकान्त में छिपकर उसकी बातें सुन ली। क्रोधातुर होकर प्रियमित्र ने यह सर्व वृत्तान्त मदनप्रिय के कुटुम्बियों से कहा। कुलीन होने के कारण उन लोगों को बड़ा शर्मिन्दा होना पड़ा। उन्होंने मदन को बुलाकर उसका बड़ा तिरस्कार किया और कह दिया कि यदि तूं कुलीन है और कुछ शरम रखता है तो हमें मुँह न दिखाना।

महात्मा चंद्रयशा केवली के मुखारविन्द से पूर्वोक्त बातें सुनकर सभा में बैठे कई एक वृद्ध मनुष्य बोल उठे "गुरुदेव ! आप बिल्कुल सत्य फरमाते हैं। हम स्वयं पृथवीस्थानपुर के ही रहनेवाले हैं। हम खुद इस बात को जानते हैं। यह घटना हमारे स्मरण में है। मदनप्रिय आजतक अपने घर नहीं आया प्रियमित्र का घर अभी तक उसके नाम से पहचाना जाता है। उस घर में आज भी उसके निकट सम्बन्धी रहते हैं। अहो ! ज्ञान की कैसी महिमा है ! ज्ञानी पुरुष ज्ञानबल से पूर्व में बीती हुई सर्व घटना को जान सकता है।

राजा सूरपाल – शहर को छोड़े बाद मदन प्रिय की क्या दशा हुई भगवन्!

महात्माचंद्रयशा – मदनप्रिय घर से निकलकर अपने कृत्य के लिए पश्चात्ताप करता हुआ। देशान्तर को चल दिया। चलते चलते उसे दो दिन निराहर ही बीत गये, तीसरे दिन जब वह एक अटवी में जा रहा था तब वहाँ पर उसे बहुत – सी गायें चरती दिखाई दीं। क्षुधातुर मदन ने चरवाहे से दूध की प्रार्थना की। तीन दिन से भूखे मदन को देखकर चरवाहे को दया आ – गयी।

उसके गोकुल में उस समय एक बिना दूही भैंस थी, अतः उसने उस भैंस को दूहकर मदन को बहुत - सा दूध दे दिया । मदन बोला - यह नजदीक में जो तालाब दिख पड़ता है वहाँ जाकर मुँह - हाथ धोकर वहाँ ही मैं दूध पीऊँगा । चरवाहे ने खुशी से वहाँ पर दूध का घड़ा ले जाने की सम्मति दी । मदन दूध के घड़े को लेकर तालाब के किनारे आया । शुभ भावना से वह सोचने लगा मुझे आज अन्नजल ग्रहण किये दो दिन हो गये, यदि इस समय कोई अतिथि महात्मा तपस्वी आदि उत्तम पात्र मिल जाय तो उसे इस दूध में से हिस्सा देकर फिर पारणा करुँ तो मेरा जन्म सफल हो जाय । मैंने अपने जीवन में कुछ भी सुकृत नहीं किया । इसी से मेरी यह दुर्दशा हुई है। इस समय मेरे पास खाने पीने तक के लिए भी कुछ साधन नहीं । ऐसी विषम स्थिति में भी अगर कोई महात्मा दर्शन दे तो मैं इस द्रव्य में से उसे हिस्सा दे कुछ सुकृत उपार्जन करुँ ।

जिस समय मदन पूर्वोक्त प्रकार के विचार कर रहा था ठीक उसी समय उसके सद्भाग्य से वहाँ पर एक मासोपवासी तपस्वी आ पहुँचा । वह तपस्वी मासोपवास के पारणे के लिए नजीक के गाँव की तरफ जा रहा था । तपस्वी को देखकर मदन के विशुद्ध परिणाम में और भी वृद्धि हुई । वह हर्षित होकर विचारने लगा - अहो ! मेरा सद्भाग्योदय है, जिससे मनोरथ करते ही इस महापुरुष के दर्शन हो गये । मैं इन्हें दूध में से कुछ हिस्सा दूँ, यह निश्चयकर उसने मुनि के रास्ते की तरफ जाकर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर कहा - "हे महात्मन्! कृपालु मुनिराज ! यह निर्दोष दूध ग्रहण करके मेरा कल्याण करो । मदन का शुभ परिणाम देखकर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में उस द्रव्य को विशुद्ध समझकर तपस्वी ने इच्छानुसार उसमें से कुछ दूध ग्रहण किया । मदन ने भी शुभ परिणाम से उस महातपस्वी को दूध का दान देकर विशेष पुण्य उपार्जन किया।

सचमुच ही ऐसी गरीब स्थिति में और फिर दो दिन की सहन की हुई भूख - प्यास में भी खाद्य या पेय पदार्थ प्राप्तकर के अतिथि महात्मा को दान देने की जो भावना पैदा होती है यही भावी शुभ दिनों की सूचना का लक्षण हैं । ऐसी परिस्थिति में योग्यपात्र को दिया हुआ थोड़ा - सा भी दान महान् फलदायक होता है । मरे को कौन नहीं मारता, सुखी और धनाढ्यों का कौन नहीं सत्कार

करता ? परन्तु जो मुट्ठी-भर निर्दोष अन्न के लिए घर-घर फिरते हैं, उन्हें भक्तिपूर्वक दान देने में कितना महान् लाभ होता है, इस बात को समझनेवाले बहुत कम मनुष्य हैं ।

मुनिराज अन्यत्र विहार कर गये । मदन भी तपस्वी मुनि को नमस्कारकर वापिस उस तालाब की पाल पर आ गया और मुनिदान से अपने आपको कृतार्थ मानते हुए उसने शेष बचा हुआ दूध पी लिया ।

जंगल में मनुष्यों के विशेष उपयोग में न आने के कारण इस जंगली तालाब के किनारे इंटो या पत्थर से बाँधे हुए नहीं थे । एवं मदन भी अनजान होने से उस तालाब की गहराई या उसके अन्दर उतरने का सरल मार्ग न जानता था । वह उसके किनारे पर बैठकर नीचे झुककर तालाब में से पानी पीने लगा। इतने में ही उसका पैर फिसल जाने से वह तुरन्त ही तालाब में जा गिरा, तालाब के किनारों के पास ही अगाध जल था । मदन तैरना नही जानता था। अतः वह तालाब से बाहर न निकल सका । उसे निकालने वाला भी उस जंगल में नजदीक में कोई नहीं था । इसलिए बिचारे मदन को तालाब में ही अपने प्राण त्यागने पड़े।

शुभभावना पूर्वक मुनिदान के प्रभाव से मदन मृत्यु पाकर इसी सागर तिलक शहर के राजा विजय के घर पुत्र रूप में पैदा हुआ । उसका कंदर्प नाम रक्खा गया । विजय राजा की मृत्यु के बाद कंदर्प ही इस शहर का राजा बना।

इधर प्रियमित्र भी सुन्दरी के साथ विलास करता हुआ आनन्द में अपने दिन बिता रहा था । परन्तु इस विषयानन्द में उसने अपनी दूसरी रूद्रा और भद्रा दोनों पत्नियों के साथ अनेक प्रकार की दुश्मनी पैदा कर ली थी । एक दिन प्रियमित्र सुन्दरी को साथ लेकर धनंजय यक्ष के दर्शन करने जा रहा था । चलते हुए वे एक वटवृक्ष के विस्तार से अलंकृत प्रदेश के पास आये, वहाँ पर उन दोनों ने अपने सन्मुख आते हुए एक मुनि को देखा । मुनि के दर्शन से प्रियसुन्दरी के मन में अपशुकन की भावना पैदा हुई । वह सोचने लगी कि यात्रा के लिए जाते हुए हमें सबसे पहले यह नंगे सिरवाला ही मिला है इस अपशुकन से हमारी यात्रा सफल न होगी, बल्कि और भी कुछ उपद्रव होगा । इत्यादि बोलती हुई सुन्दरी

ने अपनी गाड़ी और परिवार को आगे न बढ़ने देकर वहाँ ही ठहरा लिया ।

संसार की विचित्रता का पार नहीं है । जो महापुरुष विषय कषायादि महान् अपमंगलों से दूर हैं, जिनके हृदय में से सांसारिक मलीन वासनायें निकल गयी हैं । जो सदैव ज्ञान ध्यान और आत्मिक विचार में ही लीन रहते हैं । जो विषय लंपट संसार के मनुष्यों को हितोपदेश देकर दुष्कर्म जन्य पापों से रक्षण करते हैं । जो सदा दूसरों का कल्याण करने की चिन्ता किया करते हैं । जिनके दर्शन मात्र से मनुष्यों के संकट दूर हो जाते हैं, ऐसे मंगलमय महात्मा महापुरुषों को देखकर अपशुकन या संकट आने का विचार करना यह कितनी भयंकर अज्ञानता है ? शुभकार्य के लिए घर से निकले मनुष्य को यदि सद्भाग्य से सन्मुख किसी महात्मा पुरुष का दर्शन हो जाय तो इससे बढ़कर और क्या शुभ शुकन हो सकता है ? परन्तु इतनी बात याद रखनी चाहिए कि ***शुकन को देखकर जैसी मनुष्य की भावना होती है वैसा ही उसे फल मिलता है ।***

अपशुकन की बुद्धि से मार्ग चलते रुक जाना ही सुंदरी के लिए बस न हुआ । वह अनेक प्रकार से उस महात्मा को उपसर्ग करने लगी । क्योंकि क्रोधाधीन स्त्री के लिए संसार में कोई भी कार्य अकर्तव्य नहीं होता ।

मुनि ने अपने ऊपर उपसर्ग आया देख विचार किया कि मेरी परीक्षा का समय आ गया है । जिस प्रकार ताप ताड़न द्वारा सच्चे सुवर्ण की परीक्षा होती है वैसे ही संकटों द्वारा उत्तम पुरुषों की कसौटी होती है । इन अज्ञानियों के किये हुए उपद्रव से अज्ञानता में पड़कर मुझे अपने स्वभाव या स्वरूप से विचलित न होना चाहिए । ऐसे ही समय पर अज्ञानी और ज्ञानवान का भेद मालूम पड़ता है । यदि संकट के समय ज्ञानवान मनुष्य भी अज्ञान प्राणियों के समान अपने स्वरूप को भूल जाय तो फिर उन दोनों में कुछ भी भेद नहीं रहता । उपद्रव के समय समभाव रखने से प्राचीन कर्म को भोग लेने के उपरान्त नवीन कर्मबन्ध भी नहीं होता । इसलिए मुझे अब अपने स्वभाव में रहना चाहिए । यह विचार कर मानसिक वृत्ति को निर्मल रखकर आत्मोपयोग में दत्तचित्त हो वह मुनिराज ध्यानस्थ – कायोत्सर्ग में खड़ा रहा । मुनि को सन्मुख खड़ा देख सुन्दरी का और

भी क्रोध अधिक भड़का । वह उसे अहंकारी, पाखण्डी कहकर निष्ठुर वचनों से उसकी कदर्थना करने लगी । वह अपने सुंदर नामक नौकर से बोली – सुन्दर! यह जो पास में इंटों का पँजावा पक रहा है जा वहाँ से आग ले आ मैं इस पाखण्डी वेषधारी को दाग दूंगी, जिससे इसका किया हुआ अपशकुन दूर हो जायगा और इसका अहंकार भी नष्ट हो जायगा ।

सुंदर बोला स्वामिनी ! मेरे पैरों में जूते नहीं हैं वहाँ जाने में रास्ते में कांटे बहुत हैं व्यर्थ ही कांटो में कौन जाय ! और साधु को दाग देने से तुम्हें क्या फायदा होगा ? इन निकम्मे विचारों को छोड़ो गाड़ी हाँकने दो अभी दूर जाना है ।

अपनी स्त्री के हुक्म का अनादर हुआ देख पत्नी के आदेश को सम्मति देनेवाला प्रियमित्र दूसरे नौकर की और देखकर क्रोध के आवेश में बोला – अरे ! इस सुन्दर के दोनों पैर इस वटवृक्ष की शाखा से बाँध दो जिससे इसके पैर में जमीन पर पड़े हुए काँटे न लगने पावें । अपने विचारों की पति की सहानुभूति मिल जाने पर प्रियसुंदरी को और भी जोश आ गया । अब वह गाड़ी से नीचे उतरकर बोलने लगी ''अरे पाखण्डी ! तेरे मुंडितरूप दर्शन से हमारी पतिपत्नीरूप इस जोड़ी में कदापि वियोग न हो । तेरा अपशकुन तुझे ही हानिकारक हो । तेरे बन्धुवर्ग से तेरा सदैव वियोग हो । तूं सचमुच राक्षस जैसा है, इसी कारण तुझे देखकर हमें डर लगता है । इस प्रकार अनेक विध कटु वचनों से मुनि का तिरस्कार करती हुई निष्ठुर हृदयवाली सुंदरी ने मानों अपने सुख पर प्रहार करती हो इस तरह मुनि पर तीन दफा पत्थर का प्रहार किया । इतना करने पर भी उसे दुष्कर्म से संतोष न हुआ । उसने मुनि के पास आकर उसके हाथ में से रजोहरण (जैनमुनि का चिन्ह) छीन लिया और उसे अपनी गाड़ी में रख लिया । ऐसा करने पर उसने कुछ संतोष माना, अतः नौकरों से बोली – ''चलो अब हमारा अपशकुन दूर हो गया । अब हमें कुछ भी अनिष्ट न होगा । चलो अब निर्भय होकर आगे चलो'' धनंजय यक्ष की पूजा करेंगे''। सुंदरी की आज्ञा पाकर सब आगे चल पड़े और कुछ देर के बाद धनंजय यक्ष के मंदिर के समीप आ पहुँचे ।

यक्ष की पूजाकर यात्रा सफल मानकर सकल परिवार सहित प्रियमित्र और प्रियसुन्दरी एक स्वच्छस्थान में भोजन करने के लिए बैठे । इस समय प्रियसुंदरी को प्रसन्न देख जैन धर्म में विशेष प्रेम रखनेवाली एक दासी ने अपने मालिक और मालकिन से नम्रता से कहा – ''आप लोगों ने उस क्षमाशील महाव्रत धारक और त्याग की मूर्ति महामुनि को कष्ट देकर'' तिरस्कार और कदर्थना करके महान् पाप उपार्जन किया है । संसार से विरक्त हुए महात्मा की हँसी और मजाक करनेवाला भी इस जन्म और अगले जन्म में अनेक दुःखों का अनुभव करता है । जिसमें आप लोगों ने तो उसका बहुत सा तिरस्कारकर, उसे पत्थरों से मारकर! अनेक प्रकार के क्रोध पूर्ण वचनों से कदर्थनाकर उसका रजोहरण भी छीन लिया है । इससे आप लोगों ने बड़ा भयंकर दुःख भोगने का कर्म उपार्जन कर लिया । आपको शान्तचित्त से इस पर स्वयं विचार करना चाहिए । ऐसे महात्मा अनेक प्राणियों का उद्धार करनेवाले होने के कारण संसार के प्राणियों का आधारभूत होते हैं । संसार के विषयों में तपे हुए मनुष्य समाज के लिए ऐसे महापुरुषों का समागम मेघ के समान शान्ति देनेवाला होता है । ऐसे ज्ञानीसाधु रातदिन अपने और पराये जीवों के हित चिन्तन में ही लीन रहते है । इसलिए वैराग्य और मंगलमय मूर्ति महात्मा को दुःख देना अपने सुख को नाश करने के समान है ।

दासी के उपदेशपूर्ण वचनों को सुनकर उन दोनों के हृदय में इतना पश्चात्ताप हो उठा कि वे अपने किये हुए दुष्कर्मजन्य पाप के भय से थर – थर काँपने लगे । दुर्गति के डर से वे दीन मन होकर अत्यन्त पश्चात्ताप करते हुए अपने कृत्य की निन्दा करने लगे । दुर्गति से बचानेवाला उपदेश देनेवाली उस दासी की बुद्धि की उन्होंने बहुत ही प्रशंसा की । उसे अनेक धन्यवाद दिये और स्वयं जैनधर्म समझने की जिज्ञासा प्रकट की ।

मुनि का रजोहरण वापिस देने और अपने दुष्कृत्यों की क्षमा याचना करने के आशय से वे शीघ्र ही यक्षमन्दिर से वापिस लौटे । वह मुनि भी अभी तक ध्यान मुद्रा में उसी जगह खड़ा था । उसका रजोहरण छिन जाने पर उसने यह

प्रतिज्ञा कर ली थी कि जब तक मेरा रजोहरण मुझे वापिस न मिले तब तक मैं अन्यत्र न जाकर यहाँ ही खड़ा रहूँगा ।

अब प्रियमित्र और प्रियसुन्दरी मुनि के पास आ पहुँचे सुन्दरी ने मुनि का रजोहरण वापिस दे दिया । अपने अज्ञान पूर्ण कृत्य के लिए पश्चात्ताप करते हुए उनकी आँखें भर आयी । वे क्षमायाचना करते हुए मुनि के चरणों में लेट गये और दीनतापूर्वक प्रार्थना करने लगे कि हे कृपा समुद्र ! प्रभो ! अज्ञानता से परतंत्र होकर हमने जगत पूज्य महामुनि की कदर्थना याने विराधना की है । इस मुनि विराधना के पाप से कुँभार के चाक पर चढ़े हुए मिट्टी के पिण्ड के समान हमें संसार चक्र में परिभ्रमण करना पड़ेगा । अनेक दुर्गतियों में घोर दुःख सहने पर भी हमारा इस पाप कर्म से छुटकारा न होगा । हे दया के सिन्धो ! क्षमासागर! भगवन् ! प्रसन्न होकर हम अज्ञान पामर प्राणियों को क्षमा करो । हे दीन बन्धो! करुणाकर हम अविनीतात्माओं का यह अपराध माफ करो और इस पाप से सर्वथा मुक्त होने का हमे कोई उपाय बतलाओ ।

उनके करुणाजनक और पश्चात्ताप पूर्ण वचन सुनकर मुनि ने अपना कायोत्सर्ग पूर्णकर कहा – ''हे महानुभावो ! मेरे हृदय में क्रोध नहीं है । अज्ञानता से कर्माधीन इसी भव को माननेवाले परमार्थ से परान्मुख और अपने ही कर्म से अनेक प्रकार की बिटंबना को प्राप्त हुए संसार के पामर प्राणियों पर तत्त्व को जाननेवाले मुनि कदापि क्रोध नहीं करते । यदि वैसे लब्धिगुण धारी मुनि महात्मा किसी कारण क्रोध करें तो वे जगत को भस्मीभूत कर सकते हैं । मेरा हृदय संसार के समस्त प्राणियों के लिए करुणा रस पूर्ण है । इसी कारण मैं किसी की प्रेरणा बिना ही सर्व जीवों पर क्षमाभाव रखता हूँ । तथापि महानुभावो! मुझे तुम्हें इतना जरूर कहना पड़ता है कि इस प्रकार की मूढ़ता या अज्ञानता को त्यागकर विवेकी बनना चाहिए और अज्ञानता को दूर करने वाले और आत्मस्वरूप का ज्ञान करानेवाले तुम्हें जैन धर्म को स्वीकार करना चाहिए। आत्मा की नित्यता और कर्मो की विचित्रता समझनी चाहिए । समस्त प्राणी सुख की इच्छा रखते हैं । तुम्हें खुद को सुख प्रिय लगता है और दुःख भयानक जान

पड़ता है, तब फिर दूसरे प्राणियों को वह क्यों देना चाहिए ? सुख प्राप्त करनेवाले मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरों को भी सुख ही दे । हर एक मनुष्य को अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मो का फल सुख या दुःख रूप में अवश्य भोगना पड़ता है ।

करुणा से प्रेरित हो अपकारीपर भी उपकार करनेवाले त्याग मूर्ति मुनिराज ने उन्हें अनेक प्रकार से हित शिक्षा दी । संक्षेप में द्वादश व्रतरूप गृहस्थ धर्म समझाया । उन दोनों ने मुनि का दिया हुआ हितोपदेश प्रेमपूर्वक सुना और पापकर्मो से मुक्त होने के लिए एवं भविष्य में सुख प्राप्ति की इच्छा से उन्होंने सम्यकत्वपूर्वक गृहस्थ धर्म अंगीकार किया । अब जैनधर्म को स्वीकारकर वैराग्य रंग से तरंगित हो मुनि को आहारादि के निमित्त प्रार्थनाकर वे अपने घर आये। मुनि भी कुछ देर बाद समय होने पर भिक्षा के लिए नगर में गया । अपने योग्य निर्दोष भिक्षा की गवेषणा करते हुए मुनिराज अकस्मात् स्वाभाविक ही प्रियमित्र के घर आ पहुँचे । मुनि का दर्शन करते ही अपने जन्म को सफल मानते हुए दम्पती ने बड़े हर्ष पूर्वक मुनि को विशुद्ध आहार पानी का लाभ दिया आहार लेकर मुनि अन्यत्र विहार कर गया ।

परस्पर प्रेम धारण करते हुए प्रियसुन्दरी और प्रियमित्र सम्यक् श्रद्धानपूर्वक मनुष्य जन्म के सारभूत गृहस्थ धर्म की आराधना करने लगे । आपस में स्नेह रखती हुई रूद्रा और भद्रा भी एक जुदे घर में रहकर अपने माने हुए धर्मानुसार यथाशक्ति दानादि से पुण्य उपार्जन करने लगी। परस्पर प्रेम होने पर भी एक दिन ऐसा कारण बन गया जिससे उन दोनों में भी खूब क्लेश हुआ। परन्तु कुछ देर बाद शान्त होने पर उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ, इससे वे दोनों एक जगह बैठकर विचार करने लगी कि - धिक्कार है हमारे जीवन को, जिसमें जरा भी सुख नहीं । हमारा जन्म बिलकुल निरर्थक है । इस घर में सदैव क्लेश रहता है । पति की ओर से तो हमें सर्वथा सुख नहीं; क्योंकि उसे तो सुन्दरी ने ही अपने स्वाधीन कर रखा है । वे दोनों पति - पत्नी हमारे सामने देखते तक नहीं है, प्रेम से बोलने की तो बात ही क्या ? हम दोनों में प्रेम है सही पर कभी न कभी हम में भी क्लेश हो ही जाता है । इस तरह क्लेशमय जीवन बिताने की अपेक्षा

मर जाना बेहतर है। हमसे जितना बन सका उतना दान पुण्य कर लिया है, अब देह का त्याग करना ठीक है । इस प्रकार प्राण त्याग का निश्चयकर एक मन वाली होकर किसी को मालूम न हो इस तरह दोनों ने किसी एक कुएँ में पड़कर आपघात कर लिया ।

रुद्रा मरकर जयपुर नगर में चंद्रपाल राजा के घर पुत्री रूप में पैदा हुई । उसका कनकवती नाम रक्खा गया जिसका विवाह सन्मुख बैठे हुए इस चंद्रावती नरेश वीरधवल के साथ हुआ है। प्रियमित्र की भद्रा नामकी दूसरी स्त्री मरकर परिणाम की विचित्रता से व्यन्तर जाति की देवयोनि में व्यन्तरी पैदा हुई। एक दिन वह व्यन्तरी आकाश मार्ग से पृथ्वीस्थानपुर के ऊपर होकर जा रही थी उस समय उसने प्रियमित्र और प्रियसुन्दरी को देखा, देखते ही अपने पूर्वभव की स्मृति आने से उसके हृदय में उन दोनों के प्रति वैरभाव जाग उठा । अतः जहाँ पर वे घर में शान्ति से सो रहे थे, वहाँ जाकर व्यन्तरी ने अपनी दैवी शक्ति से उन पर दीवार को गिरा दिया और फिर वह वहाँ से आगे चली गयी ।

वे स्त्री पुरुष शुभ भाव में मृत्यु प्राप्तकर प्रियमित्र का जीव राजन् ! आपके घर में महाबल पुत्र पैदा हुआ है और प्रिय सुन्दरी का जीव वहाँ से मरकर वीरधवल राजा की पुत्री मलयासुन्दरी नाम से पैदा हुई है । पूर्वभव के प्रबल प्रेम के कारण इनका इस भव में भी पति -पत्नी का सम्बन्ध कायम रहा ।

राजन् ! महाबल और मलयासुन्दरी ने पूर्वभव में रुद्रा और भद्रा के साथ जो तीव्र वैर पैदा किया था उस वैर को याद करती हुई व्यन्तरी ने फिर इस जन्म में भी महाबल को मारने का प्रयत्न किया था, किन्तु इसके पुण्य की प्रबलता से जब वह इसे मारने में सफल मनोरथ न हो सकी तब रात्रि के समय अपने महल में सोते हुए को उपद्रव करने लगी । जो चुराये गये वस्त्र और कुण्डलादि चंद्रावती नगरी के समीप वटवृक्ष की खोखर में से राजकुमार को मिले थे वे सब उस व्यन्तरी के ही हरण किये हुए थे । कुमारी मलयासुन्दरी ने महाबल के प्रथम समागम के समय अपने हृदय के समान प्रिय जो उसे लक्ष्मीपुंज हार समर्पण किया था उस हार को भी कुमार के सो जाने पर उसके पास से व्यन्तरी ने ही हरण

कर लिया था और पूर्वभव सम्बन्धि गाढ़ स्नेह होने के कारण उसने वह हार कनकवती की गोद में गिराया था ।

पूर्वोक्त अन्तिम वृत्तान्त सुनते ही आश्चर्य से चकित हो राजा वीरधवल नम्रतापूर्वक बोल उठा- भगवन् ! क्या महाबल कुमार स्वयंवर होने से पहले भी कभी मलयासुन्दरी से मिला था? यह बात तो असंभवित सी मालूम होती है। स्वयंवर के सिवा वह कभी हमारे यहाँ आया ही नहीं था । राजा वीरधवल के ये वचन सुनकर महाबल और मलयासुन्दरी मुख पर वस्त्र डालकर गुप्त रीत्या हँसने लगे । क्योंकि उनके प्रथम मिलन का समाचार उन दोनों के सिवा अन्य किसी को मालूम ही न था । राजा की शंका दूर करने के लिए ज्ञानी महात्मा ने तमाम वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया कि राजकार्य के लिए आये हुए शूरपाल राजा के सेनापतिमंडल के साथ महाबल कुमार गुप्त वेष में चंद्रावती आया था। संध्या के समय वह प्रथम कनकवती के महल में आया, उसीसे रास्ता पूछ ऊपर मलयासुन्दरी से जा मिला था । उस समय प्रथम मिलन में प्रेम बन्धन को दृढ़ करने के लिए मलयासुन्दरी ने लक्ष्मीपुंज हार महाबल के गले में डाल दिया था।

पूर्व जन्म के वैर के कारण इस बात को दूसरे रूप में बदलाकर कनकवती ने कपट भाव से आपको उलटा सीधा समझाकर मलयासुन्दरी पर आपका विशेष कोप कराया था । इत्यादि कनकवती का भी ज्ञानी गुरु ने संक्षेप से सर्व वृत्तान्त कह सुनाया जिसे सुनकर लोगों के हृदय में उसके प्रति बड़ी घृणा पैदा हुई । ज्ञानी गुरुदेव के वचन सुनकर महाबल और मलयासुन्दरी हाथ जोड़कर बोल उठे -ज्ञान दिवाकर गुरुमहाराज जो फरमाते हैं वह सर्वथा सत्य है । सर्वज्ञ के ज्ञान में कोई बात छिपी नहीं रहती । जब व्यन्तरी देवी ने कुमार को हरण किया याने जब वह उस व्यन्तरी के हाथ पर बैठकर आकाश मार्ग से जा रहा था उस समय महाबल ने उस व्यन्तरी पर जो मुष्टी प्रहार किया था उससे पीड़ित होकर वह व्यन्तरी फिर आज तक कुमार के पास नहीं आयी उसका वैरभाव वहाँ पर ही पूर्ण हो गया ।

पूर्व भव में जिस सुन्दर नामा नौकर को मुनि को दाग देने के लिए जलते

हुए पँजावे में से सुन्दरी ने आग लाने की आज्ञा की थी वह सुन्दर नौकर मरकर पृथ्वी स्थानपुर के बाहर वटवृक्ष पर व्यन्तर होकर रहा था । जब महाबल योगी की प्रेरणा से लोहखुर चोर के मृतक को लेने उस वटवृक्ष के पास गया तब उस व्यन्तर देव ने ज्ञानबल से महाबल को पहचान लिया और उसने जो प्रियमित्र के भव में अपनी पत्नी का वचन बढ़ाने के लिए उसे यह कहा था कि इसके पैर बड़ की शाखा से बाँध दो जिससे इसके पैरों में काँटे न लगे । इत्यादि बातें स्मरण होने से उसने विचारा कि इसने स्वामीपन के मद में आकर उस वक्त मेरा तिरस्कार किया था । इस समय मैं भी इसे इसके वचनानुसार कुछ चमत्कार बतलाऊं तो ठीक हो । यह सोचकर उस व्यन्तर ने मुरदे के शरीर में प्रवेश किया और मुरदे के मुख से बोला कि – ''अरे मूर्ख ! मुझे वटवृक्ष की शाखा से बँधा देखकर क्यों हँसता है, तूं खुद भी आनेवाली रात में इसी वटवृक्ष की शाखा पर बाँधा जायगा और ऊपर पैर अधो मुख होकर लटकाया जायगा । ठीक उस व्यन्तर देव के कथनानुसार ही दूसरे दिन महाबल उस वटवृक्ष की शाखा से लटकाया गया था । पूर्वजन्म में आक्रोश के वचनों द्वारा जो नौकर को दुःख दिया था, उसी अशुभ कर्म के परिणाम में वटवृक्ष की शाखा से बँधना पड़ा ।

एक दिन रुद्रा ने लोभ के वश होकर अपने पति की अंगूठी चुराली थी। उसे यह काम करते हुए सुन्दर ने देख लिया था । घर में सब जगह ढूँढने पर भी जब वह अँगूठी न मिली तब प्रियमित्र बहुत ही व्याकुल होने लगा । अपने स्वामी को व्याकुल देख और अपने पर चोरी का वहम न आवे इस कारण सुन्दर ने रुद्रा के समक्ष ही प्रियमित्र से कहा स्वामिन् ! आप किस लिए व्याकुल होते हैं ! आपकी अँगूठी रुद्रा के पास है, आप इनसे माँग लेवें । ये वाक्य सुनकर रुद्रा रोष में आकर बोल उठी ''अरे ! दुष्ट कपटी नकटे सुन्दर ! तूं झूँठ क्यों बोलता है ? मैंने कब अँगूठी ली है ? रुद्रा के तिरस्कार पूर्ण शब्द सुनकर सुन्दर को बड़ा दुःख हुआ । परन्तु पराधीन होने के कारण उसने मौन रहकर रुद्रा के वचन सहनकर लिये । असत्य उत्तर देनेवाली अपनी स्वामिनी को वह और क्या कह सकता था ? यह आप अपने किये का फल भोगेगी यह समझकर वह चुप रह गया । प्रियमित्र ने शाम दाम आदि नीति से रुद्रा के पास से अपनी अँगूठी निकाल

ली और फिर उसकी खूब कदर्थना की । नौकर को असत्य और कटु वचन बोलकर रुद्रा ने रौद्र - भयानक कर्म उपार्जन कर लिया ।

पूर्व भव की अपनी मालकिन रुद्रा को कनकवती के रूप में देख अपने ऊपर तिरस्कारपूर्ण बोले हुए दुर्वचन यादकर व्यन्तर जाति में पैदा हुए सुन्दर के जीव ने चोर के मृतक शरीर में प्रवेश कर कनकवती की नाक काट ली ।

मदन का पूर्वजन्म में सुन्दरी पर जो अनुराग था वह प्रबल होने के कारण इस भव में भी मलयासुन्दरी को देख मदन के जीव कन्दर्प के हृदय में उस पर आसक्ति हुई थी । मनुष्य के हृदय में जो पहले भवों के संस्कार के कारण वासनायें पैदा होती है वे विना भोग के या प्रबल ज्ञान की सहायता के सिवा कभी शान्त नहीं होती । पहले भव में मलयासुन्दरी और महाबल ने बारह व्रत अंगीकारपूर्वक गृहस्थ धर्म की आराधना की थी और मुनि को दान दिया था । उस शुभ कर्म के प्रभाव से इस जन्म में इन्होंने उत्तम कुल में पैदा होकर सुख की सामग्री आदि प्राप्त की है। मलयासुन्दरी ने प्रिय सुन्दरी के भव में मुनि को आक्रोश पूर्वक तिरस्कार के वचन बोलते हुए कहा था कि "अरे ! पाखण्डी मुनि ! तेरे सगे सम्बन्धियों से तेरा सदैव वियोग हो, तूं राक्षस के समान भयानक मालूम होता है" एवं क्रोधित होकर मुनि पर तीन दफा पत्थरों का प्रहार किया था । महाबल के जीव प्रियमित्र ने भी मौन रहकर अपनी पत्नी के कृत्य की अनुमोदना की थी, उस अकृत्य के द्वारा इन दोनों ने घोर पातक उपार्जन किया था । परन्तु बाद में अपनी भूल मालूम होने से इन्होंने खूब पश्चात्ताप किया और मुनि के पास जाकर अपने अपराध की क्षमा याचना करते हुए बहुत - सा पाप कर्म क्षय कर दिया था । किन्तु क्षय करने पर भी जो दुष्कर्म बाकी रह गया था, उसके प्रभाव से इस भव में इन्हें अपने सगे सम्बन्धियों से तीन दफा संकट पूर्ण वियोग सहना पड़ा है और मलयासुन्दरी को कारुक - रँगरेज तथा कंदर्प की अधीनता में अनेक प्रहार सहने पड़े हैं । मुनि को राक्षस कहने के कर्म परिणाम में निर्दोष होते हुए भी मलयासुन्दरी को वैर सम्बन्ध से कनकवती की ओर से राक्षसी का कलंक प्राप्त हुआ । इस प्रकार राजकुल में पैदा होकर भी इन दोनों ने अपने पहले जन्म में किये हुए पापकर्मो के कारण यहाँ पर ऐसे घोर दुःख प्राप्त किये हैं । प्रिय सुन्दरी ने कुपित होकर मुनि के हाथ में से उसका रजोहरण छीन

लिया था । उस रजोहरण को छीनते समय उसके क्लिष्ट अध्यवसाय के प्रमाण से वैसे ही विषम फल स्वरूप में बलसार द्वारा छीना जाने पर मलयासुन्दरी को भी अपने निर्वासित जीवन काल में अपने पुत्र का वियोग दुःख सहना पड़ा । जिस मुनि को इन दोनों स्त्री – पुरुषों ने उपसर्ग किया था और बाद में अपनी भूल मालूम होने से जिसके पास उन्होंने पश्चात्ताप पूर्वक गृहस्थ धर्म अंगीकार किया था वही मुनि इस समय केवल ज्ञानी की अवस्था में विचरता है और मैं स्वयं ही वह मुनि हूँ । महाब्रल और मलयासुन्दरी का यह दूसरा जन्म है परन्तु मैं तो अभीतक उसी भव में विचर रहा हूँ ।

शूरपाल – भगवन् ! महाबल कुमार और मलयासुन्दरी को कनकवती अब फिरतो उपसर्ग नहीं करेगी ?

ज्ञानी महात्मा – राजन् ! कनकवती की ओर से मलयासुन्दरी को नहीं परन्तु महाबल को अवश्य एक दफा भय उपस्थित होगा । वह फिरती हुई यहाँ ही आयगी और इसी नगर के बाहर एक दफा महाबल कुमार को भयंकर उपद्रव करेगी और उसी पापकर्म के कारण वह संसार चक्र में पड़कर नीचादि योनियों में पैदा हो अनेक प्रकार के घोर दुःख सहन करेगी ।

अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सुनकर असह्य यातनाओं से बचने के लिए योग्यतानुसार महाबल और मलयासुन्दरी ने गृहस्थ धर्म अंगीकार किया और इस जन्म के दुःखों का कारण भूतपूर्व जन्म में विराधित मुनिपद की आराधना करने का विशेष अभिग्रह धारण किया । इन दोनों के पूर्वभव सम्बन्धि वैराग्य गर्भित चरित्र को सुनकर अनेक मनुष्यों ने वैराग्य प्राप्तकर संयम लेने की उत्सुकता बतलायी । कितनेक भद्रिक परिणामी मनुष्यों ने गृहस्थ धर्म स्वीकार किया और बहुत से क्रूर मनुष्यों के हृदय पिघलकर कोमल बन गये । अपने पुत्र और पुत्री का विचित्र और बोध जनक वृत्तान्त सुनकर संसार दुःख से भयभीत हो सूरपाल और वीरधवल राजा चारित्र ग्रहण करने को तैयार हो गये । वे हाथ जोड़कर ज्ञानीगुरु से बोले भगवन् ! अपने राज्यभार की व्यवस्था करके हम आपके चरणों में संयम ग्रहण करेंगे । गुरुजी ने कहा – ''महानुभावो ! ऐसे कार्य में विशेष विलम्ब न करना चाहिए ।

गुरुमहाराज का वचन स्वीकारकर उन्हें भक्तिभाव से नमस्कारकर दोनों राजा शहर में आये। महाबल वहाँ पर ही होने के कारण शूरपाल राजा को राज्य की व्यवस्था करने के लिए पृथ्वीस्थानपुर जाने की आवश्यकता न पड़ी। उसने वहाँ पर ही रहकर महाबल को पृथ्वीस्थानपुर का राज्यभार सुपूर्द कर दिया और संसार से निश्चन्त हो सहकुटुम्ब दीक्षा लेने को तैयार हो गया। ***विचारक धर्मार्थी मनुष्य वस्तु के सत्य स्वरूप को समझने के बाद उसे ग्रहण करने और असत्य समझने पर परित्याग करने में कदापि विलम्ब नहीं करते।***

संयम ग्रहण करने की सूरपाल राजा की अति उत्सुकता देखकर वीरधवल राजा ने भी चंद्रावती न जाकर वहाँ पर ही अपने पुत्र मलयकेतु को बुला भेजा और उसके आ जाने पर वीरधवल राजा ने समस्त राज्य कार्यभार उसे सौंप दिया। बस अब शेष कुछ न करना था। दोनों राजाओं ने वहाँ पर ही अपनी रानियों सहित ज्ञानी गुरुदेव महाराज के पास जाकर संयम ग्रहण कर लिया। गुरु महाराज भी कुछ दिन वहाँ रहकर उन दोनों राजर्षि शिष्यों को साथ ले अन्यत्र विहार कर गये। कितनेक समय तक संयम पालकर और दुष्कर तपाचरणकर अन्त में आराधना पूर्वक कालकर के वे दोनों राजर्षि स्वर्ग सिधार गये। वहाँ से आयु पूर्णकर महाविदेह में जन्म लेकर पुनः संयम द्वारा कर्मक्षयकर के मोक्ष प्राप्त करेंगे।

वैराग्य और संयम

महाबल राजा ने सागर तिलक की राजधानी पर अपने कुमार शतबल को स्थापित कर दिया और वहाँ पर अपने प्रधान सेनापति को रखकर एवं शतबल कुमार को साथ ले वह अपनी मुख्य राजधानी पृथ्वीस्थानपुर में आ रहा । वहाँ पर रहकर दुर्जय शत्रुओं पर जय प्राप्तकर निष्कंटक राज्य पालन करने लगा । ज्ञानीगुरुदेव महाराज के उपदेश से उसके हृदय में सदैव धर्म भावना जागृत रहती है, अतः व्यन्तर देव की सहाय से वह विशेष प्रकार से धर्म और प्रजा की उन्नति करने लगा । जहाँ पर धार्मिक, साधनों की आवश्यकता मालूम होती वहाँ पर राज्य की ओर से वे साधन तैयार कराये जाते थे ।अनेक स्थानों पर राज्य की तरफ से दान शालायें खोली गयी । विशेषतः वह अपने पूर्वजन्म को यादकर मुनि महात्माओं की सेवा भक्ति करने लगा । गृहस्थधर्म को पालन करते हुए कुछ समय बाद मलयासुन्दरी ने अपने कुल की धूरा को धारण करनेवाले एक सद्गुणी पुत्र को जन्म दिया । जन्मोस्तव पूर्वक राजा महाबल ने उस दूसरे पुत्र का नाम सहस्त्रबल रख्या ।

संसार के प्रपंच में और पाँचों इन्द्रियों के विषय सुख में दिन, महीने या अनेक वर्ष बीतने पर भी मनुष्यों को कुछ मालूम नहीं होते । अनादि काल के लम्बे अभ्यास के कारण निरोगी आयुष्य और इष्ट विषयों की प्राप्ति मनुष्य को विशेष रुचिकर होती है । पूर्व जन्मान्तरों के संस्कारों से स्वाभाविक ही मनुष्य का मन वासनाओं की तरफ आकर्षित होता रहता है । परन्तु अनादि काल से भूले हुए आत्मस्वरूप को प्राप्त करने के लिए बिना किसी सत्पुरुष की प्रेरणा के स्वतः प्रयत्न करनेवाले भाग्यशाली कितने नजर आते हैं ? जिस तरह भूखे मनुष्य को स्वयं ही अपना खाद्य पदार्थ प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । वैसे ही आत्मीय सुख की इच्छावाले मनुष्य को खुद धर्म की गवेषणा करनी चाहिए। परन्तु यदि पुण्योदय से बिना प्रयत्न किये ही धर्मोपदेशक का समागम मिल जाय तो उससे धर्म स्वरूप समझकर सच्चेसुख की प्राप्ति के लिए उसे सेवन करने में

जरा भी विलम्ब न करना चाहिए ।

मनुष्य पर जो संकट या विपत्ति आती है, वही उसे सच्चा मनुष्य बनाने, सच्चा मानव जीवन जीने का पाठ सिखाने के लिए आती है । संकट में ही मनुष्य सहनशीलता का शिक्षण प्राप्त करता है । दुःख में ही मनुष्य कर्तव्याकर्तव्य का विचार करता है । सुख में मनुष्य को कुछ भी शिक्षण नहीं मिलता इतना ही नहीं बल्कि प्रत्युत वह अपने आपको भी भूल जाता है । सांसारिक सुख एक प्रकार का नशा है, उसे कोई बिरला ही झेल सकता है । इसे प्राप्तकर अपने स्वरूप का मान रखना यह साधारण बात नहीं है । बड़े - बड़े विद्वान भी इस मृगतृष्णा के लालच में पड़कर अपने कर्तव्यमार्ग से नीचे गिर जाते हैं, जब यह दशा है तो फिर सद्‌गुणी, सुशील, सुन्दर स्त्री, गुणवान् पुत्र और विशाल राज्यवैभव प्राप्त कर महाबल क्यों न अपने आपको भूल जाता ? अपने ऐश आराम के साधन प्राप्त करते हुए भी याने सांसारिक सुख में निमग्न होकर भी उसने सुचारु राज्य व्यवस्था के कारण दूर देशों तक अपनी कीर्तिरूपी सुगन्धी फैला दी थी। जितना अच्छा हो सकता है उतना इच्छा राज्यकार्य करने में उसने कुछ भी बाकी न उठा रक्खा था। महाबल राज्यवैभव से सर्वथा धर्ममार्ग से विमुख न हुआ था, किन्तु उसे जो आत्मोद्धार का परम कर्तव्य पालन करना था उसे वह अवश्य भूल गया था । राज्यकार्य और व्यवहारिक मार्ग में प्रवेश किये उसका बहुत - सा समय व्यतीत हो गया था । एक दिन अर्धरात्रि के समय सुखशय्या में सोते हुए उसे एक त्यागमूर्ति दिखाई दी, जो उसे उद्देश्य कर रही थी - ''इतनी घोर निद्रा! अभी तक काल्पनिक सुख स्वप्न भंग नहीं हुआ ?'' बस समय हो गया, इस अमूल्य जीवन के कीमती क्षण व्यर्थ न गवाँओ, यह स्वप्नसा देखकर महाबल की निद्रा भंग हो गयी । उसने सावधान हो उठकर चारों ओर देखा पर उसे कोई भी नजर न आया । अब वह सुने हुए सारगर्भित वाक्यों पर विचार करने लगा। उस रात्रि के प्रशान्त वातावरण में तात्त्विक विचार करते हुए उसके हृदय में अपने परम कर्तव्य ज्ञान के सूर्योदय की एक किरण प्रकाशित हुई ।

"निशा विरामे परिचिन्तयामि, गेहे प्रज्वलिते किमहं स्वपामि"

यह श्लोक याद आया । *घर जल रहा है, मैं किसलिए सो रहा हूँ ?* मैं संसार की वासनाओं में फंसकर सचमुच ही अमूल्य मानव भव के कीमती क्षण व्यर्थ गवाँ रहा हूँ । क्या संसार में रहकर इससे बढ़कर और भी सुख मिल सकता है ? जिसकी आशा से मैं मृगजल को देख मृग के समान दौड़धूप कर रहा हूँ ? मैं क्यों नहीं इस तुच्छ इन्द्रियसुख लालसा के बन्धन को तोड़कर आत्मसाधना के मार्ग पर चढ़ जाता ? मुझमें इतनी कमजोरी ? अहा ! मैं कितना प्रमादी हूँ ! पूर्वभव में किये हुए सुकृत और दुष्कृत का अनुभव करने पर भी उस सच्चे सुख के मार्ग को न स्वीकारकर विनश्वर इन्द्रिय विषय सुख में लुब्ध हो रहा हूँ ? बस अब ऐसा न होगा । अब मुझे यह संसार डरावना लगता है । पिता ! प्यारे पूज्य पिता ! तुम धन्य हो ! इस तृष्णामय संसार को त्यागकर परम शान्ति के मार्ग में गमनकर अपनी आत्मा का कल्याण करनेवाले पिता ! तुम धन्य हो! हे पूज्यनीय वीरधवल राजर्षि ! आप धन्य हैं ! मैं भी अब उसी मार्ग का आश्रय लूँगा । मेरी निद्राभंग हो गयी । हे तेजोमय त्यागमूर्ति ! तुमने दर्शन देकर मुझे कीचड़ में से खींच लिया ।

पूर्वोक्त विरक्त विचारों में ही महाबल की रात बीत गयी । प्रातःकाल होने पर सुखशय्या से उठकर आवश्यकादि नित्यक्रम से निपटकर वैराग्यरस पूर्ण हृदयवान वह राजसभा में आया। मनुष्य की प्रबल इच्छाशक्ति भी जादू का काम करती है । थोड़ी ही देर के बाद राजसभा में एक वनमाली ने आकर विनम्रभाव से कहा – महाराज ! सरकारी बगीचे में ज्ञानदिवाकर और तेजोमय त्यागमूर्ति कोई एक महात्मा पुरुष पधारे हैं । यह सुनकर महाबल के हर्ष का पार न रहा। अपने मनोभाव को सिद्ध करनेवाले महापुरुष का समागम सुनकर मनोद्यान विकसीत हो उठा। "सचमुच ही मैं पुण्यवान् हूँ" मेरे विचार के साथ ही ज्ञानीगुरु महाराज का समागम हो गया। बस यही मेरे समुन्नत भविष्य की निशानी है । इच्छा होते ही साधक को उत्तर साधक सहायक की प्राप्ति होना

यही कार्य सिद्धि की सूचना है, यह विचार करते हुए राजा प्रसन्न चित्त हो सिंहासन से नीचे उतरा । उत्तरासन करके जिस दिशा में शहर से बाहर महात्मा ठहरे हुए हैं उस दिशा तरफ पाँच - सात कदम चलकर जमीन पर मस्तक लगा पंचांग नमस्कार किया । गुरु महाराज के समागम की खबर लानेवाले वनमाली को प्रीतिदान देकर विदा किया । फिर तुरन्त ही राजसभा बरखास्तकर राजा गुरुमहाराज को वन्दनार्थ जाने की तैयारी करने लगा । देर ही क्या थी, तुरन्त ही सर्व तैयारी होने पर तमाम राजकुल को साथ ले राजा गुरुमहाराज के समीप जा पहुँचा और उन्हें भक्तिभाव पूर्वक नमस्कारकर धर्मोपदेश सुनने के इरादे से गुरुमहाराज के सन्मुख बैठ गया। महात्मा ने धर्मदेशना प्रारम्भ की ।

सज्जनो ! वास्तविक सुख क्रोध, अभिमान, कपट, लोभ, लालच और विषय तृष्णाओं को कुचल डालने पर अपने ही भीतर से प्राप्त होता है । बस इसे ही आत्मशुद्धि कहते हैं । आत्मा में सुख का परम भण्डार भरा है । परन्तु पूर्वोक्त दोषों को नाश किये बिना वह प्राप्त हो नहीं सकता। आत्मशुद्धि के सिवा सच्चे सुख का लाभ होना असम्भव है । मान लो कि पानी से भरा हुआ एक विशाल कुण्ड है और उसमें एक अमूल्य रत्न पड़ा है, परन्तु उस कुण्ड का पानी गंदला है और बार - बार पवन की लहरियों से वह पानी हिलझुल रहा है । उस मलीन और हलन चलनवाले तरंगित पानी की परिस्थिति में कुण्ड में नीचे पड़े हुए अमूल्य रत्न को क्या आप देख सकेंगे ? कदापि नहीं । बस इसी प्रकार आत्मा का शुद्धरूप रत्न मनरूपी पानी में नीचे पड़ा है। वह मन रूपी पानी विषय कषाय की मलीनता से गंदला हो रहा है और अनेक प्रकार की कुत्सित विचार तरंगों से डोलायमान हो रहा है । इसलिए जब तक विषय कषाय का अभाव और मनोगत अनेक वितर्को की शान्ति न हो तब तक शुद्धात्मरत्नरूपी सच्चे सुख के दर्शन या प्राप्ति की आशा रखना व्यर्थ है । इसी कारण आत्मशुद्धि के लिए मलीन मानसिक वृत्तियों का परित्याग करना चाहिए। बाह्य उपाधियाँ जो मनोवृत्ति को मलीन करती है उनका भी त्याग करना चाहिए। ऐसा करने पर ही नित्य अविनाशी आत्मिक सुख प्राप्त होता है ।

गुरु महाराज के मुख से पूर्वोक्त धर्मदेशना सुनकर राजा महाबल

आत्मसाधन करने के लिए सावधान हो गया । पुण्योदय के कारण प्रथम से ही उसके अन्दर आत्म जागृति पैदा हो गयी थी, धर्मदेशना से उसका पूरापोषण हो गया ।

धर्मोपदेश समाप्त होने पर सपरिवार नगर में आ गया । उसने शतबल सहस्त्रबल और मलयासुन्दरी को बुलाकर उनके समक्ष अपनी संयम अंगीकार करने की आतुरता बतलायी । जब से अपना पूर्वभव वृत्तान्त सुना था मलयासुन्दरी तो तब से ही संसार से विरक्त थी । वह सिर्फ पति की इच्छा के अधीन होकर इतने समय तक गृहवास में रही थी । महाबल के विचार सुनकर उसके उत्साह में और भी वृद्धि हुई । सांसारिक स्नेह बन्धनों को तोड़कर वह पति के साथ ही संयम ग्रहण करने को तैयार हो गयी ।

सागरतिलक की राजधानी प्रथम से ही शतबल को सौंप दी गयी थी । अब पृथ्वीस्थानपुर की राजगद्दी पर सहस्त्रबल को बैठाया गया । नवीन राजा सहस्त्रबल और शतबल ने माता – पिता के संयम ग्रहण करने के अवसर पर नगर में बड़े समारोह से अष्टाह्निका महोत्सव किया । महाबल के साथ अनेक राजपुरुषों और मलयासुन्दरी के साथ अनेक राजकुल की स्त्रियों ने संयम अंगीकार किया । दीक्षा ग्रहण करने पर संयम शिक्षण के लिए मलयासुन्दरी आदि को सपरिवार महत्तरा साध्वी को सौंप दिया गया ।

राजर्षि महाबल संयमोचित शिक्षण ग्रहण करते हुए कुछ दिन पृथ्वीस्थानपुर में रहकर गुरु महाराज के साथ अन्यत्र विहार कर गया । साध्वी मलयासुन्दरी भी अपनी गुरु महत्तरा साध्वी के साथ अन्यत्र विहार कर गयी।

अब वे दोनों जुदे – जुदे स्थलों में विचरकर ज्ञानध्यान से अपनी आत्मा को कृतार्थ करते थे । कभी – कभी विचरते हुए सागरतिलक और पृथ्वीस्थान आकर दोनों पुत्रों को धर्म मार्ग में प्रेरित करते और आत्मगुण घातक व्यसनों से दूर रहने का उपदेश देते थे । वे दोनों भाई भी परस्पर प्रीतिपरायण होकर सद्गुरु के उपदेश से धर्मध्यान में एवं अपनी – अपनी प्रजा को हर एक प्रकार से सुखी बनाने में सावधान रहते थे । माता – पिता की धर्म प्रेरणा से वे दोनों राजा धर्म

में इतने दृढ़ हो गये कि दूसरे मनुष्यों को भी वे धर्ममार्ग में जोड़ने की प्रेरणा करने लगे ।

तलवार की धार के समान तीव्र तपाचरण करते हुए राजर्षि महाबल क्रम से सिद्धान्त का पारगामी हो गीतार्थ हो गया । आत्मोद्धार के लिए महान् प्रयत्न शील महामुनि महाबल को गीतार्थ होने के कारण अकेले विचरने की भी गुरुमहाराज ने आज्ञा दे दी । अपने क्लिष्ट कर्मनाश करने के लिए उसने भी समुदाय से स्वतंत्र विचरना पसन्द किया । अब वह महातपस्वी अपने साधुसमूह से पृथक् होकर जंगलो, श्मशानों, पहाड़ों और गिरिकंदराओं में निवासकर घोर तप के द्वारा आत्मोज्ज्वल करने लगा ।

अपनी मनोवृत्ति को दमन करते हुए इस महामुनि ने आत्मधर्म में मेरु पर्वत के समान निश्चलता प्राप्त की थी । उपसर्गो को सहन करने में पृथ्वी के समान सहनशीलता प्राप्त की थी। अपने श्रमणधर्म में स्थिर रहने के लिए उसे आकाश के समान किसी आलम्बन की आवश्यकता न थी । उसकी मुख मुद्रा चंद्र के समान सौम्य थी । उसका पवित्र हृदय समुद्र के समान गम्भीर था । वह वैराग्य रस में लीन होकर आत्मध्यान द्वारा कर्मशत्रुओं को निर्मूल करने में निरन्तर सावधान रहता था अपने और पराये के लिए उस महात्मा के हृदय में द्वैतभाव न रह गया था एक दिन विहार करते हुए सन्ध्या के समय परम त्याग की मूर्ति वह महामना महाबल मुनि सागर तिलक नगर के समीप बाह्योद्यान में आ पहुँचा। अपने क्लिष्ट कर्मरूपी शत्रुओं पर विजय पाकर आत्मीय शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने का ही लक्ष्यबिन्दु होने के कारण संध्या समय होने से वह वहाँ पर ही एक राजकीय बगीचे के पास कायोत्सर्ग ध्यान मुद्रा में ध्यानस्थ हो खड़ा रहा।

ठीक इसी समय उस बगीचे का माली घूमता हुआ उस महामुनि की ओर आ निकला । उसने ध्यानसमुद्र में खड़े महाबल राजर्षि को देखकर पहचान लिया । क्योंकि वह तो सरकारी ही माली था, परन्तु सागर तिलक का तो बच्चा - बच्चा भी महाबल को पहचानता था । ध्यानस्थ मुनि को नमस्कारकर वनमाली शीघ्र ही शहर में आया और उसने राजसभा में जाकर राजा शतबल

को सहर्ष यह समाचार सुनाया कि महाराज ! आपके पूज्य पिता जी महामुनि महाबल राजर्षि आज शहर से बाहर सरकारी बगीचे के पास पधारे हैं और वहाँ पर ध्यान मुद्रा में ध्यानस्थ हो खड़े हैं ।

इस खुश खबर को सुनकर राजा शतबल के हर्ष का पार न रहा । उसने अपने पूज्य पिता और धर्म गुरु का समागम समाचार देनेवाले वनमाली को बहुत - सा प्रीतिदान देकर विदा दिया। राजा ने विचार किया इस वक्त सन्ध्या समय हो गया है, रात्रि का प्रारम्भ होने आया है, इसलिए सुबह प्रातःकाल में ही सर्व परिवार के साथ जाकर पूज्य पिता श्री गुरु महाराज को वन्दन करुँगा। सचमुच ही मैं भाग्यवान हूँ, मेरे पुण्योदय से ही गुरु महाराज ने यहाँ पधारकर इस शहर को पवित्र किया है । इस तरह बोलते हुए राजा ने उस दिशा की ओर जिधर त्याग मूर्ति महाबल राजर्षि ध्यान में खड़ा था चलकर जमीन पर मस्तक लगाकर पंचाँग नमस्कार किया । सुबह होने पर पूज्य पिताजी का दर्शन होगा, उनके मुखारविन्द से धर्मोपदेश सुनूंगा और उसके उपदेशानुसार चलने का भर शक प्रयत्न करुँगा । इन्हीं विचारों की उत्सुकता में राजा ने बड़े कष्ट से रात बितायी।

निर्वाण - प्राप्ति

मलयासुन्दरी को राक्षसी का कलंक दिये बाद सन्दूक में से बाहर निकालकर सूरपाल राजा ने कनकवती की ताड़ना तर्जनाकर उसे देश निकाले की शिक्षा दी थी । स्त्री जाति होने के कारण उसे प्राण दंड की शिक्षा न दी गयी। अब वह अपने दुष्कर्मों से प्रेरित हो देश देशान्तरों में भटकती हुई दुःखित अवस्था में दैववशात् आज ही कहीं से सागर तिलक शहर में आ पहुँची है । किसी कार्य प्रसंग से वह सन्ध्या के समय शहर से बाहर उसी प्रदेश में गयी जहाँ पर महातपस्वी राजर्षि महाबल ध्यान लगाये खड़ा था । महाबल मुनि को देखते ही उसने पहचान लिया । अब वह दुष्ट हृदया स्त्री मन में विचारने लगी ''यह क्या ? यह तो शूरपाल राजा का राजकुमार महाबल मालूम होता है, क्या यह साधु बन गया है ! यह तो मेरे तमाम दुराचरणों को जानता है । यदि इसने मेरे जीवन की घटनायें यहाँ पर किसी के सामने प्रकट कर दीं तो इस शहर में भी मेरी दाल गलनी मुश्किल हो जायगी । फिर तो मुझे यहाँ रहने तक को स्थान भी न मिलेगा। लोग तिरस्कार पूर्वक मुझे शहर से बाहर निकाल देंगे । सच कहा है ''पापा सर्वत्र शंकिता'' *पापी प्राणी सब जगह अपने पाप से शंकाशील ही रहता है;* मुझे इस वक्त कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे मेरे दुश्चरित्र किसी को भी मालूम न हो सकें । इसी प्रकार के विचार करती हुई और वहाँ पर चारों ओर गौर से देखती हुई वह वापिस शहर में आ गयी ।

करीब डेढ़ पहर रात बीत चुकी है । चारों और घोर अन्धकार छाया हुआ है । सारा शहर निद्रादेवी की गोद में पड़ा सो रहा है, इसी कारण शहर भर में सन्नाटा छा रहा है । रास्ते सुन सान पड़े हैं । ऐसे मानव संचार रहित समय में एक स्त्री इधर - उधर देखती हुई हाथ में एक जलती हुई लकड़ी लिए शहर से बाहर

निकल कर उसी शून्य जंगल की तरफ जा रही है । जिधर त्याग मूर्ति राजर्षि महाबल आत्मध्यान में लीन हो खड़े हैं । सचमुच ही इस समय परम संवेग रस में निमग्न हो आत्म स्वरूप के चिंतन द्वारा वह धर्म मूर्ति महामुनि संसार में जन्म - मरण पैदा करानेवाले अपने कठिन कर्मों को नाश करने में तल्लीन हो रहा था । ठीक इसी समय वह स्त्री उस महामुनि के समीप आ पहुँची । दैवयोग से सदा वहाँ ही रहनेवाला बगीचे का माली भी आज किसी कार्यवश शहर में ही रह गया था, अतः उस भूमिभाग को जन संचार रहित देख कर वह स्त्री बड़ी प्रसन्न हुई ।

पाठक महाशय ! भ्रान्ति में न पड़े । यह अन्य कोई नहीं आपकी पूर्व परिचिता और महाबल मुनि की पूर्व भव की वैरन कनकवती ही है । आज ऐसी अवस्था में इसे महाबल से बदला चुका लेने का सूझा है । अहा कितनी नीचता! कितना क्रूर स्वभाव ! अपने पराये, शत्रु मित्र, सुवर्ण और पाषाण पर समान भाव रखनेवाले और आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए ध्यान मग्न अवस्था में खड़े हुए महामुनि को जीवित जला देने का घोर पापकर्म करने का भयंकर साहस!! हे सदय हृदय ! धिक्कार नहीं परंतु ऐसे घोर पाप कर्मकर के भावी परिणाम में नरक की भयंकर यातना भोगनेवाले प्राणियों पर तूं दया धारण कर उसी प्रदेश में किसी मनुष्य ने कोयले करने के लिए बहुत सी लकड़ियाँ डाली हुई थीं । उस दुष्टा स्त्री ने अपने पापकर्म की सिद्धि में उन लकड़ियों का उपयोग कर लिया । घोर अन्धकारवाली रात्रि में उस वक्त यहाँ पर अपना ही राज्य समझकर कनकवती ने उन लकड़ियों को उठा उठाकर ध्यानस्थ खड़े हुए मुनिराज के चारों और चिन दिया । लकड़ियाँ बहुत पड़ी थीं अतः पैर से लेकर सिर तक लकड़ियों का खूब ढेर लगा दिया जिससे कहीं से भी उसका शरीर मालूम न दे सके ।

मुनि को चारों तरफ से लकड़ियों द्वारा वेष्टितकर कनकवती ने चारों गति के अनेक प्रकार के दुःखों से अपनी आत्मा को वेष्टित कर लिया । जन्मान्तर के वैरानुबन्ध से निर्दय हो अब उसने उस जीवित चिता के चारों तरफ अग्नि सुलगा दी । मानो कनकवती के पुण्य संचय को जड़ से ही भस्मीभूत करता हो इस प्रकार

अग्नि काष्ट में प्रदीप्त हो गया । आत्म ध्यान में सावधान खड़े हुए महामुनि ने अपने पर मरणान्त उपसर्ग आया देख मनःसाक्षी आराधना कर ली । अब वह दुःसह वेदनायें सहन करता हुआ अपने आपको बोध देने लगा ।

सचमुच ऐसे समय ही आत्मा और देह की भिन्नता का स्पष्ट ज्ञान मालूम होता है । ज्ञानवान मनुष्य की सच्ची परीक्षा ऐसे ही अवसर पर हुआ करती है । ऐसे ही वक्त पर स्वभाव में स्थित रहने से कठिन कर्म नाश होते हैं और अपने सच्चे बल की परीक्षा देने का सुअवसर भी ज्ञानवान महापुरुषों को अपने जीवन में कदाचित ही प्राप्त होता है ।

अपने चारों ओर लकड़ियाँ चिन दी हैं, किसने और किसलिए ऐसा किया है ? इसका परिणाम क्या होगा ? अब अग्नि शरीर तक पहुँचनेवाला है और उससे मैं जीवित ही जल मरुँगा इन तमाम बातों से महामुनि महाबल अज्ञात न था । उसने प्रथम से ही केवल ज्ञान धारी गुरु महाराज के मुख से सुना हुआ था कि एक दफा कनकवती महाबल को फिर दुःसह उपसर्ग करेगी। एवं स्वयं भी इस समय उसे अपनी नजर से देख रहा था । यहि वह इस संकट से बचना चाहता तो खुशी से बच सकता था इतना ही नहीं किन्तु यदि वह अपने पर अत्याचार करनेवाली कनकवती को शिक्षा देना चाहता तो यह सामर्थ्य भी उसमें था ही । इस शहर का राजा भी उसी का पुत्र और परम भक्त है । यह सब कुछ होने पर भी उस महामुनि ने मरणान्त कष्ट क्यों सहन किया होगा ? यह बात साधारण पाठक के मन में आश्चर्य पैदा करनेवाली है । जिस ज्ञानवान त्यागी मुनि ने अपने शरीर के ममत्व को त्याग दिया । जिसे किसी भी प्रकार की शारीरिक मूर्च्छा नहीं है वह संसार के कारागृह से मुक्त होकर सदानन्द देनेवाले आत्म स्वरूप की प्राप्ति के मार्ग में रोड़ा अटकानेवाले शरीर ममत्व को सामने क्यों आने देगा ? विशेष कारण तो वह मुनि ही जाने हमें क्या पता लग सकता है ?

ऐसे प्रसंग पर जिस जागृति की आवश्यकता होती है, वह उस महा पुरुष में प्रथम से ही थी । अब वह मानसिक वृत्ति को आत्म स्वभाव में स्थित रखने के लिए स्वयं ही समभाव में दृढ़ होने लगा । आत्मा ! तूं जिस देह मंदिर में रहा

हुआ है, वह तुझसे जुदा है, उसके जल जाने पर तुझे जरा भी आँच न आयगी। क्योंकि तूं अमर है और अरूपी है । यह अग्नि तेरे पूर्व संचित किये कर्ममल को जलाकर तुझे विशुद्ध करती है, ।

इत्यादि प्रबल विशुद्ध भावना बल से कनकवती पर द्वेष और शरीर पर ममत्व भाव पैदा न होने देकर समभाव की सरल श्रेणी से वह महात्मा आगे बढ़ा। एकत्व भावना में लीन होने के कारण उसके शुभाशुभ कर्मो और देह ममत्व का भाव सर्वथा नष्ट हो गया । इस आत्म स्थिति में निमग्न होने से घाति कर्मो का क्षय होते ही उसके हृदयाकाश में केवलज्ञान रूपी सूर्य का उदय हो गया। ज्यों वह अग्नि जल रहा था त्यों आत्मा में शुक्लध्यान प्रज्वलित हो रहा था । इस शुक्ल ध्यानरूपी आन्तर अग्नि ने देह भस्म होने से पहले ही शेष रहे हुए अघाति कर्मों को भी भस्मीभूत कर डाला । बस अब वह सर्वकर्मों का नाश होने से कृतकार्य हो सदा के लिए जन्म, जरा मरण से मुक्त होकर शाश्वत अविनाशी निर्वाण पद को प्राप्त हो गया ।

धन्य है ऐसी पवित्रात्माओं को।

- *स्व दया का स्थान जिन शासन में सर्वोत्तम है । स्व दयापालक वास्तविक अहिंसक, दयावान् एवं ज्ञानी है ।*
- *स्व दया से युक्त मानव का आचरण पर - पीड़ा के कार्यों से रहित होगा। वह किसी का अहित चिंतन भी नहीं करेगा ।*

जयानंद

मलयासुंदरी का उपदेश

यह महापुरुषों का अटल उपदेश है कि जो शुभ कार्य करने का विचार हो उसे आज ही कर लो और जो आज करना है उसे अभी करो । श्रेष्ठ विचार आने पर उसे आचार में लाने के लिए विलंब मत करो । शुभ कार्य में विलंब करने से उसमें विघ्न बाधा पड़ते देर नहीं लगती । यदि किसी कारण मन में बुरे विचार पैदा हुए हैं तो उन्हें आचार में लाने की शीघ्रता मत करो । विलंब करने से मनुष्य बुरे कर्म से बच सकता है । परंतु शुभ विचार को आचार में लाने के लिए आलस्य या विलंब करने से मनुष्य को किसी समय महान् पश्चात्ताप करना पड़ता है ।

प्रातःकाल होते ही उत्सुकतापूर्वक सकल परिवार को साथ लेकर शतबल राजा अपने पूज्य पिता और धर्म गुरु को वंदनार्थ उद्यान में आया । परंतु वहां पर वह महामुनि कहीं पर भी दिखायी न दिया । वनमाली के बतलाये मुजब जहां पर वह महामुनि कल संध्या समय ध्यानस्थ हो खड़ा था इस वक्त वहां पर राख का ढेर लगा पड़ा है । उस राख को देखने से मालूम हुआ कि उसमें किसी मनुष्य को जलाया गया है । खूब बारीकाई से तलाश करने पर यह साबित हो गया कि किसी दुष्ट ने उस महामुनि को ही जला दिया है । दुःखद समाचार सुनते ही धर्मप्रेमी पितृभक्त शतबलराजा अकस्मात् मूर्च्छा पाकर जमीन पर गिर पड़ा । यह देख मंत्री सामंतों के सभी दुःख का पार न रहा । शीतोपचार करने पर राजा होश में आया और पश्चात्ताप करते हुए बोल उठा – ''अरे! भव भ्रमण से निर्भीक हो इस महामुनि को ऐसा घोर उपसर्ग किस दुष्टात्मा ने किया है? राख के पुंज पर दृष्टि पड़ने से पिता भक्त कोमल हृदय शतबल को फिर से मूर्च्छा ने दबा लिया। कुछ देर बाद सुध आने पर वह मुक्तकंठ से विलाप करने लगा ।

हा! हताश! शतबल! तूं इतना निर्भाग्य है! समीप आये हुए दुर्लभ पिता के चरणकमणों में नमस्कार तक भी न कर सका । इतना प्रमाद! हे पूज्यपिता!

आपकी करुणापूर्ण पवित्रदृष्टि मुझ अभागे पर पड़ न सकी । मैं अभाग्यशेखर आपकी अमृतमय उपदेशवाणी न सुन सका! एक दरिद्र मनुष्य के समान मेरे मनोरथ मन में ही विलीन हो गये! हा! मेरी ही राज्य में धर्ममुर्ति पिताश्री की यह दशा! यदि मैं संध्या समय ही यहां आया होता तो मुझे कल ही सब तरह का लाभ प्राप्त हो जाता । परंतु धिक्कार है मेरे प्रमादी जीवन को!

इस प्रकार दुःख मनाते हुए राजा ने राजपुरुषों को आज्ञा दी – सुभटो! जाओ उस दुष्टात्मा के पदचिह्न देख कर उसे जीवित ही मेरे पास ले आओ ।

राजा की आज्ञा होते ही अनेक राजसुभट चारों और दौड़ पड़े । पदचिह्न पहचानने वाले राजपुरुष उस स्त्री के पदचिह्न के अनुसार धीरे – धीरे शहर से बाहर एक खंडहर पड़े हुए मठ के पास जा पहुंचे । बस यहां पर ही वह पापात्मा कनकवती छिपकर बैठी थी । राजपुरुषों ने उसे बांध लिया और राजा के पास ला खड़ी की । राजा ने ताड़ना तर्जना द्वारा मुनिराज को भस्म करने का कारण पूछा । उसने अपना किया हुआ तमाम अकृत्य बतला दिया । राजा ने सुभटों के द्वारा अनेक प्रकार की मार से उसे जान से मरवा डाला । उसने अपने किये हुए दुष्ट कर्मों के अनुसार ही फल पाया । वह मृत्यु पाकर छट्ठी नरक में उत्पन्न हुई।

अपराधी को दण्ड देने पर भी राजा शतबल का शोक दूर न हुआ । उसके हृदय का कारी घाव न भरा । गुरु और पिता की त्रुटि पूरी न हुई । प्रधान पुरुषों के समझाने पर भी उसके हृदयाकाश से शोक के बादल नष्ट न हुए ।

इधर यह समाचार पृथ्वीस्थानपुर में पहुँचने पर राजा सहस्त्रबल के भी शोक का पार न रहा । उसके आनन्द में निरानन्द छा गया । दोनों राजाओं ने पिता के शोकसागर में निमग्न होकर अपने तमाम प्रकार के सुखों को त्याग दिया । अब रात दिन उनके सामने पिता के गुण और उनकी वह विषममृत्यु दिख पड़ती है, इससे राज्य का सर्व कार्य शिथिल होने लगा ।

इधर साध्वी मलयासुन्दरी ने निर्मल चारित्र पालन करते हुए ज्ञानाभ्यास में आगे बढ़कर क्रम से ग्यारह अंग पर्यन्त का ज्ञान प्राप्तकर लिया था । उसने तत्त्वज्ञान में बहुत गहरा प्रवेश किया था । ज्ञानोपार्जन के साथ वह तीव्र तप भी

करती थी । ज्यों क्लिष्ट कर्मो को क्षय करने में वह रातदिन सावधान रहती थी त्यों नये कर्मबन्ध से भी बचने में बड़ी सावचेत रहती थी । क्योंकि कर्म के भयंकर परिणाम का अनुभव उसने इसी भव में किया हुआ था । अभी तक वह उन दुःख के दिनों को भूल न गयी थी ।

निरन्तर ज्ञानध्यान में प्रयत्न करते हुए उस महासती को अवधिज्ञान की प्राप्ति हुई थी । गुरु महाराज ने उसकी उच्च योग्यता को देख उसे महत्तरा की (प्रवर्तनी) पदवी से विभूषित किया था । अवधिज्ञान के प्रकाश से वह मनुष्यों के संदेह दूरकर उन्हें सद्बोध देकर धर्म मार्ग में प्रेरित करती । अपने ज्ञान के प्रकाश से एक दिन उसने महामुनि महाबल का निर्वाण हुआ देखा । शतबल को पितृशोकसागर में निमग्न देख उसका उद्धार करने की भावना से महत्तरा मलयासुन्दरी अनेक साध्वी समुदाय के साथ विहारकर सागरतिलक शहर में पधारी ।

अपनी माता महत्तरा मलयासुन्दरी का आगमन सुनकर राजा शतबल को बड़ी खुशी हुई। समाचार मिलते ही वह सपरिवार तत्काल महत्तरा को वन्दना करने आया । नमस्कारकर वह धर्म शिक्षा ग्रहण करने की इच्छा से परिवार सहित उचित स्थान पर बैठ गया ।

अमृत के समान मधुर वचनों द्वारा प्रसन्नमुख से साध्वी मलयासुन्दरी ने उपदेश करते हुए कहा "शतबल ! क्या तुम शरीर की क्षणभंगुरता, आयुष्य की अल्पता और संयोगों की वियोगशीलता भूल गये ? पुत्र ! संसार में इस नश्वर देह से कौन अमर रहा है ? अनन्त बलधारक और देवदेवेन्द्रों से सेवित तीर्थकरों ने भी क्या इस देह का परित्याग नही किया ? महासत्वशाली मनुष्यों में शिरोमणि तुम्हारे पिता महामुनि महाबल उस स्त्री के किये हुए उपसर्ग के बाद केवलज्ञान प्राप्त करके उसी समय निर्वाण पद को पाये हैं ।

जिसके लिए धन, धाम, स्वजन, स्त्री पुत्रादि सर्व वस्तुओं का परित्याग किया जाता है, जिसके लिए तपश्चरण आदि दुष्कर धर्म क्रियायें कर महानदुःख सहन किये जाते हैं, वह दुर्लभ में दुर्लभ परम पद उन्होंने प्राप्त किया है । वे जन्म

जरा मृत्यु आदि संसार के दुखों से सदा के लिए मुक्त हो गये हैं। शाश्वत सुख को पानेवाले पिता के लिए तुम शोक किसलिए करते हो ?

यदि कभी किसी अपने प्रिय मित्र को महान् निधान की प्राप्ति हुई हो तो उस समय उस पर भक्ति या प्रेम का दम भरनेवाले मनुष्य को खुशी होगी या शोक ? बस वैसे ही तुम्हारे पिता को केवलज्ञानरूपी आत्मनिधान की प्राप्ति हुई है, इससे तुम्हें शोक नहीं बल्कि आनन्द होना चाहिए।

जिस तरह किसी का कोई सगा - सम्बन्धी बहुत दिनों से कैदखाने में रहा हुआ हो और किसी समय उस कैदखाने से वह सदा के लिए मुक्त हो गया हो और यह समाचार उसके किसी इष्ट जन को मिला हो तो इससे वह खुशी होगा या शोकातुर ? पुत्र ! तुम्हारे पूज्य पिता भी संसार के बन्धनों से सदा के लिए मुक्त हो गये हैं, अतः ऐसे समय तुम्हें शोक न करना चाहिए। निर्वाण समय के कष्ट को यादकर जो तुम्हें शोक होता है, इसमें भी विचार की शून्यता है। क्या संग्राम में विजय की इच्छावाले सुभट शत्रुओं के प्रहार सहन नहीं करते ? उसी प्रकार तुम्हारे पिता ने जीवन संग्राम में कर्म शत्रुओं के साथ युद्ध करते हुए शुद्धात्मा स्वभावरूपी विजय लक्ष्मी की इच्छा से जो उस समय कष्ट या उपसर्ग सहा है, वह उस विजय के सामने उनके मन कुछ हिसाब में नहीं है।

हे वत्स ! तुम्हें जो इस बात के याद आने से दुःख होता है कि मैं पिता के चरण कमलों में नमस्कार न कर पाया। यह दुःख मानना भी उचित नहीं, क्योंकि तुम सदा से ही पितृभक्त हो, पिता की सेवा भक्ति तुमने हमेशा की है और आज भी तुम्हारा उनके प्रति वही भाव है, इसलिए पिता की साक्षात् आराधना करने से जो लाभ प्राप्त हो सकता है वह तुमने अपने परिणाम की विशुद्धता से प्राप्त कर लिया है। उनके प्रति इस प्रकार के भक्ति भाव द्वारा और भी तुम्हें अधिक लाभ होगा। अतः हे पुत्र ! संसार की विचित्रता का खयालकर तुझे पिताशोक में पड़कर अपने कर्तव्य को न भूलना चाहिए। शोक में निमग्न होकर मनुष्य अपना एवं दूसरों का रक्षण नहीं कर सकता। संसार को दुःखों का घर समझो ! संसार के सम्बन्धों को स्वप्न के समान अनित्य समझो, लक्ष्मी को

बिजली चमत्कार के तुल्य चपल समझो और जीवन को पानी के बुलबुले के सदृश जानो । पुत्र ! गुरुशिक्षा ग्रहण करने में चतुर तुम्हारे जैसे विवेकी पुरुष भी जब इस तरह का शोक करेंगे तो फिर धैर्य और विवेक गुण किस का आश्रय लेंगे?

इस प्रकार महत्तरा मलयासुन्दरी ने शोक निमग्न राजा शतबल को उपदेश देकर शोक सागर से पार किया । उसके सारगर्भित और युक्तिपूर्ण वचनों का शतबल पर इतना गहरा असर हुआ कि वह शोक रहित होकर धर्मध्यान में सावधान हो गया । महत्तरा साध्वी अपने कल्प की मर्यादानुसार जितने दिन सागर तिलक शहर में रही उतने दिन निरन्तर शतबल उसका धर्मोपदेश सुनता रहा । *जिस जगह महाबल मुनि का निर्वाण हुआ था उस जगह शतबल राजा ने एक बड़ा विशाल मंदिर बनवाया और उसमें महाबल की मूर्ति स्थापन कर बड़ा भारी महोत्सव किया ।* अब महत्तरा मलयासुन्दरी राजा को धर्म में सावधान एवं स्थिर कर वहाँ से अन्यत्र विहार कर गयी ।

- *निश्चय एवं व्यवहार की व्याख्याओं को गीतार्थ गुरु भगवंतों से समझे बिना धर्मक्रियाएँ करना पूर्णरूप से फल की प्राप्ति से वंचित रहना है ।*
- *निश्चय एवं व्यवहार, ज्ञान एवं क्रिया एक - दूसरे के पूरक हैं । इन दोनों में एक - दूसरे को छोड़ना अर्थात् दो पटरी पर चलने वाली गाड़ी को एक पटरी पर चलाने का प्रयत्न करना है ।*
- *निश्चयपूर्वक व्यवहार, ज्ञानपूर्वक क्रिया द्वारा ही आत्मोद्धार होता है।*

- जयानंद

स्वर्ग गमन और उपसंहार

परोपकार प्रवीणा महत्तरा मलयासुन्दरी सागर तिलक से विहारकर अब अपने लघुपुत्र की राजधानी पृथ्वीस्थानपुर में आ पहुँची । पिता के शोक से राजा सहस्त्रबल की भी खराब दशा हो रही थी । महत्तरा ने उसे भी उपदेश देकर कर्तव्य मार्ग में स्थिर किया ।

पृथ्वीस्थानपुर में महत्तरा के आगमन का समाचार सुनकर शतबल भी उसके दर्शनों और भाई से मिलने की उत्सुकता से वहाँ आ गया । अब निरन्तर दोनों भाई धर्मपरायण होकर महत्तरा का धर्मोपदेश सुनते हैं और एकाग्रमन से धर्मसेवा करते हैं । उनकी धर्मश्रद्धा बड़ी दृढ़ थी । वे सदैव त्रिकाल जिन पूजन करते, सुपात्र दान देते, यथाशक्ति तपश्चरण करते, अनेक विध संघ की भक्ति और वात्सल्य करते थे । गरीब अनाथों के लिए जगह - जगह पर अन्नदान के क्षेत्र खोल रखे थे । जीवहिंसा या अधर्म एवं अनीति के मार्ग में गमन करनेवालों को सक्त कानून या सत्ता द्वारा रोका जाता था । उन दोनों भाइयों ने अपनी प्रजा में अनेक प्रकार के उपकारकर जैनधर्म का भी खूब प्रचार किया था । प्रजा के लिए स्वयं अपने खर्च से हर एक शहर में जैन मन्दिर निर्माण करवाये थे । धर्मात्माओं के लिए पोषधशालायें, बीमारों के लिए औषधालय, अपाहिजों के लिए अनाथालय और बेकार पशुओं के लिए पाँजरापोलें निर्माण करवायीं।

महत्तरा मलयासुन्दरी अपने दोनों पुत्रों को धर्ममार्ग में स्थिरकर वहाँ से अन्यत्र विहार कर गयी । अनेक देशदेशान्तरों में विचरकर उसने हजारों मनुष्यों को धर्म में जोड़ा । उसके सारगर्भित धर्मोपदेश में जादू - सा भरा था । उसकी शान्त और आनन्दी मुखमुद्रा दर्शकों को नमने के लिए विवश करती थी । राजतेज और तपस्तेज एकत्रित होने से उसकी धर्मदेशना का श्रोताओं पर बड़ा गहरा असर पड़ता था । उसे देखते ही कठिन हृदयवाले मनुष्य के मन में भी पूज्यभाव पैदा होता था ।

उसने अपने अंतिम दिनों में घोर तपश्चर्याकर और निरन्तर ज्ञानध्यान में ही लीन रहकर बहुत से क्लिष्ट कर्मो को नष्ट कर दिया था। यह तो हम प्रथम ही लिख चुके हैं कि उसके घोर तपश्चरण और विशुद्ध चारित्र के कारण उसे अवधिज्ञान पैदा हुआ था। एक दिन शरीर शिथिल होने पर उसने अपने ज्ञानबल से जान लिया कि अब उसका आयुष्य बहुत कम रह गया है। उसने सावधान हो समाधि मरण के लिए तैयारी करली। चारों प्रकार के आहार का परित्यागकर आराधना की। देह को वोसिराकर अरिहन्त, सिद्ध, साधु और सर्वज्ञ प्रणीत धर्म का शरण स्वीकार किया।

अन्त समय में संसार के समस्त प्राणियों से अपने से ज्ञाताज्ञात हुए अपराधों की क्षमा याचना करते और अरिहन्त, भगवान को स्मरण करते हुए इस मानवजीवन यात्रा को समाप्तकर महत्तरा मलयासुन्दरी स्वर्गसिधार गयी। उसकी आत्मा अच्युत नामक बारहवें स्वर्ग में जाकर देवता के रूप में उत्पन्न हो गयी।

पाठक ! महाशय ! बस यहाँ ही महाबल मलयासुन्दरी महासती का जीवन चरित्र समाप्त होता है। यदि आपने इसे ध्यानपूर्वक पढ़ा है तो इसमें से आपके जीवन को उन्नत बनाने वाली आपको बहुत सी शिक्षायें मिल सकती हैं। ग्रंथ पाठक के विचारानुसार ही या उसके ग्रहण करने की योग्यतानुसार ही उसे लाभप्रद हो सकता है। इस ग्रंथ में भी पाठकों को ज्ञेय, हेय और उपादेय तथा ग्रहण करने योग्य बहुत सी शिक्षायें भरी हैं। आप अपनी इच्छानुसार ग्रहण कर सकते हैं।

यह पुस्तक *श्रीयुत तिलक विजयजी पंजाबी* द्वारा अनुवादित पढ़ने में आयी और संस्था द्वारा प्रकाशित हुई।

पाठक इसे पढ़कर लाभान्वित बने यही।

– जयानंद

- *समय को पहचान कर कार्य करना हितकर है ।*
- *वर्तमान समय का सदुपयोग श्रेष्ठ धन है ।*
- *कल का भरोसा आत्म ज्ञानी ही कर सकते है ।*
- *समय को प्रमाद में व्यतीत करना महामूर्खता है ।*
- *सुख पाना हो तो आचार शुद्धि को अपनाओ ।*
- *आचार शुद्धि विचार शुद्धि का फल है ।*
- *उत्तम बनना है, उत्तम गुणों के स्वामी बनों ।*

– जयानंद



आनंद हो...मंगल हो...
सब जीवों का
कल्याण हो....

Mesco Prints
9448687449